



श्रीमद् देवचन्द्रजीकृत

चोवीशी स्वोपज्ञ बालावबोध

तथा

विहरमानवीशी-अतीत चोवीशी सहित.

छपावी प्रसिद्ध करनार

श्री. अध्यात्म ज्ञानप्रसारक मंडल. हा.

वकील-मोहनलाल हीमचंद्र-पादरा.

संवत् १९८५

::

सने १९२९

कीमत रु. ०-१२-०

आ पुस्तक सळवानुं ठेकाणुं:

वकील मोहनलाल हीमचंद-पादरा (गुजरात)

अध्यात्म ज्ञानप्रसारक मंडल-त्रांबाकांटा-मुंबई.

भावनगर-श्री आनंद प्रिन्टींग प्रेसमां पृष्ठ २१७ थी ४९२

शा. गुलाबचंद ललुभाइए छाप्यां.

अमदावाद-धी डायमंड ज्युविली प्रिन्टींग प्रेसमां टाइटल

तथा नीवेदन फक्त परीख देवीदास छगनलाले छाप्युं.

निवेदन.

आ ग्रन्थ प्रथम श्री अध्यात्मज्ञानप्रसारक मंडल तरफथी छपायेल श्रीमद् देवचंद्र भाग २ मां दाखल करेलो तेमज विजापुर निवाशी गा. सुरचंदभाइ सरूपचंद तरफथी एक आवृत्ति छपावी भेट आपेली पण ते वंन्ने ग्रन्थोनी तमाम नरुलो खपी जवाथी ने मागणी चालु रहेवाथी हालमां उक्त मंडल तरफथी छपाता श्रीमद् देवचंद्र भाग २ मांथी आ ग्रन्थ पुरती छुटी नरुलो वगारे कढावी वहार पाढवामां आवी छे जेथी ते ग्रन्थना अनुक्रम मुजव पृष्ठ २१७ थी आ ग्रन्थ शरु यतो होवाथी ते पृष्ठांक कायम राखेला छे. आ ग्रन्थनो विषय अध्यात्मज्ञान तथा द्रव्यानुयोगथी भरपुर अने गहन होवाथी ते गुरुगमपूर्वक वांचवा विचारवा विनंती छे.

ज्येष्ठ वदी जष्टमी
मंथत १९८७

} वकील. मोहनलाल हीमचंद.
पाठरा-(गुजरात)

श्रीमद् देवचंद्रजीकृत चोवीशी.

शुद्धिपत्रक.

| पृष्ठ | पक्ति. | अशुद्धि | शुद्धि |
|-------|--------|---------------|---------------|
| २१९ | १ | विभाग | विभाव |
| " | २४ | वीतराग | वीतराग |
| २२१ | २३ | पुद्गल | पुद्गल |
| २२४ | ६ | श्रुताज्ञा० | श्रुतज्ञा० |
| २२५ | १२ | परपर्यायाश्चो | परपर्यायाश्चो |
| " | २० | बीजा | बीजा |
| २२६ | ८ | कर्ता घटकार्य | कर्ता घटकार्य |
| २३६ | १८ | भाव | भान |
| २३८ | ३ | वस्तुधर्म | वस्तुधर्म |
| २४३ | ६ | तत्त्व | तत्त्व |
| " | १६ | पुद्गलनो | पुद्गलनो |
| २४४ | २२ | पुद्गला० | पुद्गला० |
| २४६ | ४ | भावे | भाव |
| २४८ | २३ | थवु | थवु |
| २४९ | ९ | सालवन | सालवन |
| २६३ | ८ | नहीं | नहीं |
| २६५ | ६ | " | " |
| २६७ | २१ | अतरग | अतरग |
| २७६ | ७ | गुणपणु | गुणपणु |
| " | ९ | छ, जे गुणने | छे, जे गुणने |
| " | १४ | धमनुं | धर्मनु |
| " | १९ | मादेव | मार्दव |
| २७८ | ३ | वीर्यादिक | वीर्यादिक |
| २७९ | ५ | विकल्परूप | विकल्परूप |
| " | २२ | प्रभुभी | प्रभुनी |
| २८२ | ६ | पटला | पटले |

| | | | |
|-----|-----|----------------|-------------------|
| ” | १६ | साधे | साधे |
| २८३ | १७ | घनधाति | घनधाति |
| २८६ | २० | अपावादें | अपवादें |
| २८८ | १ | साधन | साधन |
| २८९ | १९ | घम | धर्म |
| २९१ | ९ | आत्मागुणनी | आत्मगुणनी |
| ” | १६ | भावसेना | भावसेवना |
| २९५ | १४ | शैलेंसे | शैलेंसे |
| २९७ | ६ | जाइ | जोइ |
| २९९ | १२ | वतिराग | वीतराग |
| ” | १४ | पारेपाक | परिपाक |
| ३०० | १३ | सम्यक | सम्यक् |
| ” | १५ | परिगम्यो | परिगम्यो |
| ३०२ | ७ | अद्भुत | अद्भुत |
| ३०३ | २५ | आमा | आमां |
| ३०५ | १९ | प्रभुमुद्राने | प्रभुमुद्राने याग |
| ३०६ | २५ | क्षायोपशमि | क्षायोपशमिक |
| ३०७ | १३ | स्तवनम | स्तवनम् |
| ३०८ | ५-७ | अभिलाण्य | अभिलाप्य |
| ” | ५-६ | अनभिलाण्य | अनभिलाप्य |
| ३०९ | ७ | द्वितीय | द्वितीय |
| ३१२ | १६ | निश्चे | निश्चें |
| ३१४ | ८ | पप्पुण...सिद्ध | मप्पुण...सिद्धि |
| ३१५ | २-३ | प्राग्भावना | प्राग्भावना |
| ३१६ | १७ | मागतो | मागतो |
| ” | १८ | सर्द्धहतां | सर्द्धहतां |
| ३१८ | २३ | सूर्योभे | सूर्याभे |
| ३१९ | ३ | कर्त्ता | कर्त्ता |
| २० | १२ | कार्य | कार्य |
| | १ | देशी | देशी |
| | -- | बहुमान | बहुमान |
| | | वासपूज्य | वासुपूज्य |

| | | | |
|-----|----|-----------|------------|
| ३३९ | ६ | गाथार्थ | गाथार्थ |
| ३४० | १८ | घटादि | घटादि |
| ३४३ | २२ | ध्रम | धर्म |
| ३५० | ४ | पर्यायमा | पर्यायमा |
| ३५४ | १० | सर्व | सर्व |
| ३५६ | २ | ग्राहक | ग्राहक |
| ३६४ | ४ | पारेणम्यो | परिणम्यो |
| ३६५ | ९ | तुल्यत्व | तुल्यवत् |
| ३६७ | ० | वाघी | वाघी |
| ३७३ | १८ | पोतपोताना | पोतपोतानी |
| ३८१ | १९ | धर्मवत | धर्मवत |
| ३८२ | ५ | घटकार्य | घटकार्य |
| ३८६ | ४ | कार्यनुं | कार्यनुं |
| ३८७ | ०१ | निवारण | -निराचरण |
| ३९३ | १४ | ०लत्रनादि | ०लवनादि |
| ४०४ | २२ | सर्व | सर्व |
| ४०५ | २० | प्रागभावी | प्राग्भावी |
| ४०८ | १३ | सम्यक् | सम्यक् |
| " | १८ | प्रागभाव | प्राग्भाव |
| ४०९ | २४ | बीज | बीज |
| ४२२ | ७ | पडदो | पडहो |
| " | २० | विभाग | विभाव |
| ४२५ | ७ | की | करी |
| ४२६ | १८ | निर्धार | निर्धार |
| ४३० | १४ | ताना | ताता |
| " | १५ | धमतां | धमता |
| ४३१ | ३ | रुहेरो | कहेशे |
| ४३४ | १६ | अन । ० | अनपो |
| ४३५ | ८ | सम्यग | सम्यग् |
| " | ९ | गायघी | जाणघी |
| ४३८ | ० | पहघी | पहघी |
| ४४० | १२ | पुद्गल | पुद्गल |

| | | | |
|-----|----|------------|------------|
| ४४२ | १७ | विभावे | विभावे |
| ४४३ | १६ | सर्वे | सर्वे |
| ४४७ | १७ | ध्यावो | ध्यावो |
| " | २१ | अमोध | अमोध |
| ४४८ | १७ | पुद्गले | पुद्गले |
| ४४९ | १३ | लाधो | लाध्यो |
| ४५१ | १३ | अनुमरते | अनुसरते |
| ४५३ | १४ | अनुमवे | अनुभवे |
| ४६० | १८ | प्रभा त्री | प्रभावी |
| ४६६ | १९ | भावेम | भावमे |
| ४७६ | १२ | तं...संतोष | ते...संतोष |
| " | २२ | वोग | योग |
| ४७७ | ८ | का ण | कारण |



अनुक्रमणिका.

विषय

पृष्ठ

श्री वर्तमान चोवीठी.

- १ श्री रूपभजिन स्तवन जेमां प्रीतिनी रीत वतावी छे. २१७
- २ श्री अजितनाथ स्तवन जेमां कारण कार्य भावनी साधनता वतावी छे. २३३
- ३ श्री संभवजिन स्तवन जेमां मोक्षनु कारण क्यारे ने केयी रीते नीपजे ते दर्गाव्युं छे. २३५
- ४ श्री अभिनंदनजिन स्तवन जेमां छ द्रव्य निश्चय-नयथी कोड कोडथी मळतां नथी ते वतावेल छे २४२
- ५ श्री मुमतिजिन स्तवनमां सामान्य विशेष धर्मनुं तथा सप्तभंगीनुं स्वरूप वर्णव्युं छे. २५१
- ६ श्री पद्मप्रभजिन स्तवनमां नयना भेदवडे प्रभुदर्शन जणाव्युं छे. २६६
- ७ श्री सुपार्श्वजिन स्तवनमां ज्ञानदर्शन चारित्रादि जुदा जुदा गुणनुं लक्षणादि वर्णन छे. २७२
- ८ श्री चंद्रप्रभुना स्तवन मध्ये चार निक्षेपा तथा सात नयवडे उत्सर्ग अपवाद सेवनाना भेद वर्णव्या छे. २८४
- ९ श्री सुप्रिधिनाथ जिन स्तवनमां आत्मसमाधि आदि गुण तथा ते प्रगट करवानी रीति वतावी छे. २९९
- १० श्री शीतलनाथ जिनस्तवन मध्ये सिद्धना गुणोनी अनंतता तथा द्रव्यनुं अल्प बहुत्व तथा द्रव्यपूजा भावपूजानी अगत्य वर्णयी छे. ३०७
- ११ श्री त्रेयांसजिन स्तवनमां रूग्ण क्रियाने कार्यरूप त्रीभंगीए ज्ञानादि गुणो परिणमे छे तेनुं वर्णन छे. ३१९

- ११ श्री वासुपूज्य जिन स्तवनमां द्रव्यपूजा भावपूजानुं
चारे निक्षेपे वर्णन करी प्रशस्त भावपूजा तथा शुद्ध
भावपूजा तथा प्रशस्त रागनां लक्षण बताव्यां छे. ३२८
- १३ श्री विसळानाथजीना स्तवनमां अस्तित्ता नास्ति-
तानी अनंतता तथा लक्षण बतावेल छे. ३३८
- १४ श्री अनंतनाथजीना स्तवनमां प्रभु दर्शनथी साधक-
जीवना आत्मगुणनी पुष्टि थाय छे विगेरे कथन छे. ३४४
- १५ श्री धर्मनाथजीना स्तवनमां सामान्य स्वभाव तथा
विशेष स्वभावना भेद विस्तारथी वर्णव्या छे. ३४७
- १६ श्री शांतिनाथजीना स्तवनमां सातनये प्रभु स्थाप-
नानुं वर्णन तथा स्थापना ते मोक्षनुं निमित्त कारण
सातनये छे ते समजाव्युं छे. ३५९
- १७ श्री कुंधुनाथजीना स्तवनमां प्रभु देशनाना वर्णन
प्रसंगे अर्पित अनर्पितनयनुं तथा सप्तभंगीनुं
सकलादेशि विकलादेशि भांगा सहीत वर्णन छे. ३६८
- १८ श्री अरनाथ जिन स्तवन जेमां उपादान, अ-
साधारण, निमित्त तथा अपेक्षा कारणनुं स्वरूप तथा
ते कारणता प्रगट करवी ए कर्ताने वश छे विगेरे
वर्णन छे. ३७९
- १९ श्री मल्लिजिन स्तवनमां छ कारकनी साधकता,
बाधकता तथा शुद्धतानुं विस्तारथी वर्णन छे. ३९०
- २० श्री मुनिसुव्रत जिनस्तवनमां पुष्ट तथा अपुष्ट निमित्त-
त्तनुं स्वरूप तेमज पुष्ट निमित्तवडे सिद्धता रूप कार्य
निपजाववा प्रसंगे छ कारक केवी रीते होय तेनुं
वर्णन छे. ४०१

- २१ श्री नेमिनाथ जिन स्तवनमां प्रभु सेवाने मेघनी
उपमा घटावी छे. ४०९
- २२ श्री नेमिनाथ जिन स्तवनमां राजिमतीए प्रभु प्र-
त्येनो कामरूप अशुद्ध राग टाली प्रशस्त राग कर्षो
तेनुं वर्णन छे. ४१६
- २३ श्री पार्श्वजिन स्तवनमां परिणती तथा प्रवृत्तिनी
एकता दर्शावी पछी शुद्धता, एकता, तीक्ष्णताना
अर्थ कहा छे. ४२१
- २४ श्री महावीर जिन स्तवनमां संसार पार पामवा
विनती करी छे. ४२९
- २५ कलशरूप स्तवनमां जीन स्तुतीनुं फळ तथा कर्तानी
गुरुपरंपरा वर्णवी छे. ४३४
- २६ बीस विहरमान जिन स्तवन. ४३९
- २७ गतचोबीसी जिन स्तवन. ४५८



श्रीमद् देवचंद्रजीकृत

चोवीशी.

स्वोपज्ञ घालावबोध सहित.

तत्र प्रथम पीठिका.

ए संसारी जीव, देवतत्त्व, गुरुतत्त्व, धर्मतत्त्वनी भूलें अनादिनो संसारचक्रमाहे भमी रह्यो छे, शरीर, इंद्रियसुख, परिग्रह तेने हितकारी मान्या छे, अने पोतानु आत्मस्वरूप, अनंतानंदमय विसारी मूक्युं छे, ते संभारतोज नथी, पण संज्ञी पंचेंद्रियपणु पामीने, जो पोतानो शुद्धधर्म तथा शुद्ध धर्मना कारण सेवे नहीं, तो आत्मा, स्यात् संपदा केम पामे ? तेमाटे उपकारी, जगत् हितकारी, श्रीवीतराग, परमात्मा, परमपुरुषोत्तम एवा श्रीअरिहतनी स्तवना तथा सेवना करवी, पण राग विना प्रभुनी सेवना थाय नहीं, ते कारणथी प्रथम श्रीरूपभदेवजीनी स्तवना करता श्रीवीतराग उपर प्रीति करनी ते रीत कहे छे. प्रथम धर्मनां चार आचरण कहां छे ? प्रीति, २ भक्ति, ३ वचन, ४ असंग. तेमा प्रथम प्रीतिनुं लक्षण, षोडशकटीकाथी जाणवु “यत्रानुष्ठातुः आदरप्रयत्नातिशयोस्ति प्रीतिश्च अभिरुचि रूपाहित उदयोयस्याः सा तथा भवति कर्तुः अनुष्ठातुः शेषाणां त्यागेन च तत्काले यच्च करोति तदेकमात्रनिष्ठतया तत्प्रीत्यनुष्ठानं ज्ञेयमिति.” जिहां आचरण करवानालानु अति आदर सहित उद्यमनु अतिशयपणुं होय, ते प्रीति जाणवी, ते प्रीतिना

विलास विना चाले नहीं, माटे तेहना रुचि अभिलाषी जीवें बीजां सर्व कार्य तजीने तेहज करवुं. तथा तिहांज एक निष्ठा प्रतीति करवी, तेने प्रीतिअनुष्ठान जाणवुं ॥ इति भावार्थः ॥ ते प्रीति संसारी भावथी सर्व जीवोने छे, पण ते पलटावीने गुणीथी करवी, ते कहे छे.

॥ अथ प्रथम श्रीऋषभजिन स्तवन ॥

॥ निद्रडी बेरण हुइ रही ॥ ए देशी ॥

ऋषभ जिणंदशुं प्रीतडी,

किम कीजें हो कहो चतुर विचार ॥

प्रभुजी जइ अलगा वश्या,

तिहां कियें नवि हो को वचन उच्चार ॥ऋ० ॥ १ ॥

अर्थः—श्रीनाभिकुलधरनी भार्या, श्रीमरुदेवी स्वामिनीनी कुक्षिनेविषे उत्पन्न थईने जेणे अठार कोडा कोडी सागरोपम सुधी, निर्वाण मार्गनुं विघ्न हतुं ते निवार्युं, एवा श्रीऋषभदेव प्रथम तीर्थकर, रागद्वेष रहितताथी जिन कहियें, तथा उपकारसंपदा, अने अतिशय संपदायेंकरि विराजमानताथी जिणंद कहियें. तेनाथी प्रीतिविलास करवाना अर्थी भव्य जीव, मोक्षाभिलाषी विचारे छे जे, नीरागी ऋषभ पुरुषोत्तम साथे शी रीतें प्रीति कीजे ? ए बीतरागथी प्रीति, महारा आत्मायें पहेलां किवारें अनुभवी नथी, ते परमेश्वरथी प्रीतिनो अर्थी प्रीतिनी चाल अजाणतो पूछे छे, जे हे चतुर डाह्या ज्ञानी आचार्यादिक पुरुषों ! अथवा पोतानो आत्मा ते जातें चतुर छे, तेहने पूछे छे, के ते प्रीतिनो विचार कहों. जे नजीक होय तेथी प्रीति बने, पण प्रभुजी तो सर्व रीते अलगा रह्या

छे. प्रथम द्रव्यथी हूं अशुद्धपरिणतिविभागकर्मानुयायी, पुद्गल भावभोगी, तेथी अशुद्ध द्रव्य छुं, अने श्रीभगवान् तो शुद्ध-परिणामी, सकल निगवरणस्वभावी, निःकर्मा, अनंत अक्षय-ज्ञानादिस्वगुणभोगी, तेथी शुद्धद्रव्य छे. बीजु चेत्रेकरा हूं सं-सार चेत्री, शरीरावगाही छु, अने श्रीऋषभप्रभु तो लोकांत-चेत्रे रहा छे, अशरीरी, स्वप्रदेशावगाही छे, तेथी क्षेत्रे करी भिन्न छैयें. तेमज बीजुं काले पण भिन्न छैयें. अने भावथी हूं रागी, द्वेषी, तथा अटार पापस्थानके भयों छुं, अने श्री देवाधिदेव तो नीरागी, सर्वपापस्थानरहित छे, माटे श्रीप्रभुजी हमणां तो सर्व रीतें मुक्तथी वेगला वसे छे. वली अलगाने पण वचनादिके मलियें, पण श्रीऋषभदेव सिद्ध थया, तिहां सिद्ध अवस्थामां कोई वचननुं उच्चारवुं नथी, त्यारे प्रीति केम कराय ? इति गाथार्थः ॥१॥

कागल पण पहाँचे नहीं, नवि पहाँचे हो तिहां को परधान ॥
जे पहाँचे ते तुम समो, नवि भांखे हो कोईनुं(नो)व्यवधान ॥
ऋ० ॥ २ ॥

अर्थः—तथा एक बीजो पण प्रीति करवानो उपाय छे, जे कागल वडे प्रीति थाय छे, पण सिद्धने विषे कागल पण पहाँचे नहीं. तथा कागल नहीं पहाँचे तो कोई माणस मूकीयें, पण तिहा सिद्धावस्थाने विषे कोई प्रधान पण पहाँचे नहीं; के जेनी साथें विनति कहावियें. इहां कोई जीवने संशय उपजे के रत्नत्रयी आराधीने अनेक जीव मोचे जाय छे, तो कोई न पहाँचे एम केम कहो छो ? ते उपर कहे छे जे तिहां सिद्धावस्थाने विषे जे पहाँचे ते तुम समो, तुम जेवो प्रभुता-मय, वीत्तराग, अयोगी, असंगी, सकलज्ञायक, पण वचनरहित

अर्थात् ते पण परमपूज्य ते कोइनुं व्यवधान कहेतां आंतरो भेद कहे नहीं, माटे प्रीतिना त्रण उपाय मांहेलो कोइ उपाय दीसतो नथी, तेमाटे श्रीयुगादिदेव साथें प्रीति केम करियें ? ॥ इति ॥२॥

प्रीति करे ते रागीया, जिनवरजी हो तुमें तो वीतराग ॥

प्रीतडी जेह अरागीथी, भेळववी ते हो लोकोत्तर माग ॥ ऋ० ॥३॥

अर्थ:—हवे वळी कहे छे के संसारी जीव मुक्त सरीखा तथा सम्यग्दृष्टि प्रमुख पण जे श्रीसर्वज्ञ त्रैलोकीतिलकथी प्रीति करवा चाहे तेतो रागी राग सहित छे, अने हे जिनवरजी ! तुमें तो वीतराग छो, रागरहित छो, रागीने अनेक रीतें रीझ वीर्यें, पण जे पोते रागी नहीं, ते केम रीझ पामे ? इहां कोइ जीव कहेशे जे तेवारे वीतरागथी प्रीति न करवी ? तिहां कहे छे० जे अरागी राग रहित तेहथी जे प्रीति भेळववी, तेतो लोकोत्तर मार्ग छे, एटले एम जाणवुं जे रागीथी रागी थाय ते मले, पण कोइ रागांश जे मध्यें नथी तेहथी प्रीति करवी, ते लोकोत्तर मार्ग जाणवो, एटले अरागीथी राग करवो, ते अति आश्चर्य जाणवुं ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥ ३ ॥

प्रीति अनादिनी विष भरी, ते रीतें हो करवा मुझ भाव ॥

करवी निर्विष प्रीतडी, किण भातें हो कहो बने बनाव ॥ ऋ० ॥४॥

अर्थ — हवे संसारी जीव मध्यें प्रीतिनी परिणति अनादिनी छे, परंतु ते पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनोज्ञ-संयोग उपर इष्टता छे, ते प्रीति अग्रशस्त छे, नवा कर्मना बंधनुं कारण छे, तेथी ए अनादिनी प्रीति, विष भरी छे, जेम ऐश्वर्यादिक देखीने पुद्गल अशुद्धता उपर जे इष्टता ते राग, विषमय छे, ते राग, स्वजन, कुटुंब, परिग्रह उपर छे, ते रीतें

प्रभुजी तुम उपर राग करवानो मारो भाव छे, पण ते राग कामनो नहीं. ममकार कुलाचरें जे अरिहत उपर राग, ते मोक्षमार्गमां नहीं. श्यामाटे जे ममकारें कोण राग करतो नहीं ? ए राग, संसारहेतु छे ॥ उक्तं च ॥ जो अपसत्थो रागो वड्डइ ससारभ्रमण परिवाडी ॥ विषयाइसु सयणाइसु, इहत्त पुग्गलाइसु ॥ १ ॥ अने श्रीअरिहंतथी जे राग करवो ते प्रशस्त करवो तेनुं लक्षण केहे छे. नाणाईसु गुणोसु, अरिहंताईसु धम्मरूवेसु ॥ धम्मोवगरणसाहम्मी एसु, धम्मत्थं जो य गुणरागो ॥ २ ॥ सो सुपसत्थो रागो, धम्म संयोगकारणो गुणदो ॥ पढमं कायव्यो सो पत्तगुणे खवई तं सव्व ॥ ३ ॥ ते माटे अरिहंत उपर राग करवो, ते निर्विष करवो, जेमा विषयाभिलापपणुं नहीं, वर्णादिकनी रीझ नहीं, तथा इहलोक, परलोक, इन्द्रियसुखाभिलाप नहीं, प्रभुना ज्ञानादिक गुण छे ते मने आपे, एवी अभिलापा नहीं. एक अरूपी, अज, अविनाशी, अकृत्रिम, शुद्धज्ञानादिक गुण सकल व्यक्त थया, स्वरूपभोगी, स्वरूपपरमणी, स्वरूपाश्रित, एवा गुणनो राग, एकलो गुण प्रकट करवा वास्ते करवो ते राग, निर्विष जाणवो, ते निर्विष प्रीति करवानी मुझमां तो शक्ति नहीं, ते माटे हवे ए वनाव केम वने ? हे उपकारी पुरुषो ! ते तमे कहो ॥ इति चतुर्थगाथार्थः ॥ ४ ॥

प्रीति अनंती परथकी, जे तोडे हो ते जोडे एह ॥

परम पुरुषथी रागता, एकत्वता हो दाखी गुण गेह ॥१०॥५॥

अर्थः—हवे चतुर पुरुष, उपाय केहे छे, प्रीति कहेतां राग अनंतो परथकी एटले पुद्गलभावथी अथवा शरीरी जीवथी छे, ते सर्व जे जीव तोडे कहेता टाले, ते जीव ए गुणी

अरिहंतादिकथी प्रीति जोडे, एटले सर्व परभावथी राग तजे, ते गुणीराग करी शके. तिहां कोइ पूछशे जे गुणी अरिहंतादिकथी गुणें मले, पण राग तो पापस्थानक छे, ते शामाटे करियें ? तिहां कहे छे जे, परम पुरुष, वीतरागथी रागता कहेतां रागीपणुं ते पण गुणनुं घर कह्युं छे, अने श्रीअरिहंतादिकथी गुणें एकत्वध्यानें मलबुं, ते पण गुणनुं गेह कह्युं छे, तेमाटे प्रथम श्रीअरिहंत उपर राग करवो तेहीज वीतरागतानुं कारण छे ॥ इति पंचमगाथार्थः ॥ ५ ॥

प्रभुजीने अवलंबतां, निज प्रभुता हो प्रगटे गुणरास ॥

देवचंद्रनी सेवना, आपे मुज हो अविचल सुखवास ॥ ॠ० ॥ ६ ॥

अर्थः—ए रीतें प्रभुजीने अवलंबतां कहेतां आश्रयतां पोतानी प्रभुता अनंतगुणपर्यायरूप प्रगटे, निरावरण थाए, गुणनो राशि समूह, सर्व व्यक्त थाय, तेमाटे देव जे चार निकायना देवता अथवा नरदेवादिकमांहे चंद्रमा समान श्री अरिहंत देव, तेहनी सेवना, भक्ति, द्रव्यथी तथा भावथी करवी, ते आपे कहेतां दे, मुने अविचल सुख, अव्याबाध सुख, तेहनो वास कहेतां रहेबुं, एटले भावार्थ ए जे, श्रीपरमात्मा, परमपुरुषोत्तम अरिहंतनी सेवना असंयम आस्रवत्याग, संयम संवरूपपरिणमन, ते सेवना कहियें ॥ उक्तं च ॥ आणाकारी भक्तो आणा छेईओ सो अभक्तोत्ति ॥ इति ॥ तथा अरिहंत प्रभु पोतें तो पोतानी सेवनाना अर्थी नथी, पण सर्व जीवोने स्वहित करवा वास्ते एहीज करबुं छे, अने अरिहंत आज्ञा तें कोईनो हुकम मनाववो नथी, पण श्रीअरिहंत देवें केवल ज्ञानें दीठुं, जे सर्व जीवोने पोतानां ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ते परमानंदहेतु छे, तेमाटे जे रीतें ज्ञान, दर्शन, चारित्र नीपजे, ते

मार्ग उपदेश्यो, ते प्रमाणे वर्त्तवुं. ते अरिहंतनी सेवना करतां
निश्चय मोक्षपद, सर्व उत्तम जीव पामे, माटे प्रभुजीनी सेवा,
ते अविचल सुख आपे, ते कारणे सर्व भव्य जीवें सकल संसार
कार्य तजी सर्व परभावथी निस्पृही थईने एक परमोपकारी,
तच्चोपदेशी, धर्मनायक, श्रीअरिहंत देवनी सेवना करवी ॥६॥
इति श्रीरूपभजिनस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ द्वितीय श्रीअजितजिनस्तवनं ॥

॥ देखो गति दैवनी रे ॥ ए देशी ॥

ज्ञानादिक गुणसंपदा रे, तुज अनंत अपार ॥

ते सांभलतां ऊपनी रे, रुचि तेणें पार उतार ॥

अजित जिन तारजो रे, तारजो दीन दयाल ॥

अजित जिन तारजो रे ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीअजितनाथ स्वामीनी स्तवना करे छे.
कारण कार्यभावनी साधनता देखाडे छे, जे कारण मले ते
कार्य नीपजे, ते कारणनावे भेद छे, एक निमित्त कारण, बीजु
उपादान कारण, पण उपादान कारणनी कारणता निमित्त
मल्यां प्रगटे, ते निमित्त कारणनी पुष्टतायें थाय, अने मोक्षनुं
निमित्त कारण श्रीदेवतच छे, ते कारणे कार्य निपजे, ते
परिपाटी देखाडे छे, सकल पंचास्तिकाय गुणपर्यायादि विशेष
धर्म, प्रत्यक्ष भासन, त्रिकालावबोध, ते केवलज्ञान तथा स-
कल सामान्यग्राहक ते केवलदर्शन अने स्वरूप एकत्व ते
परमचारित्र, वली अरूपी अव्याबाध प्रमुख गुणनी संपदा,

हे प्रभुजी ! तुज कहेतां तुमारे अनंत छे, अपार छे, जेथकी सर्व द्रव्यथी सर्व द्रव्यना प्रदेश अनंत गुणा, सर्व प्रदेशथी एक द्रव्यना गुण अनंतगुणा, सर्व गुणथी अस्ति नास्तिरूप स्वपर्याय अनंत गुणा, अस्तिपर्याय ते पण वस्तुनो स्वधर्म छे, तथा नास्तिपर्याय ते पण वस्तुनो स्वधर्म छे, श्री विशेष-पावश्यकमाहे श्रुताज्ञानाधिकारे कष्टं छे.

॥ एवं उक्ते सति परः प्राह ॥ जइ ते परपञ्जाया, न तस्स अह तस्स न परपञ्जाया ॥ जं तं भिय संबद्धा, तो परपञ्जाय ववएसो ॥ १ ॥ इह स्वपर्यायाणामेव तत्पर्यायता युक्ता ये चामी परपर्यायास्ते यदि घटादीनां तर्हि नाक्षरस्य तथाक्षरस्य ते तर्हि न घटादीनां ततश्च यदि परस्य पर्यायास्तर्हि तस्य कथं ? तस्य चेत्परस्य कथमिति विरोध स्तदयुक्तमभिप्रायापरिज्ञानाद्यस्मात् कारणात् तस्मिन्कारेकाराद्यक्षरे घटादिपर्यायाअस्तित्वेनासंबद्धास्ततस्तेषां परपर्यायव्यपदेशोअन्यथा व्यावृत्तेन रूपेण तेऽपि संबद्धाएवेत्यतस्तेषामपि व्यावृत्त रूपतया पारमार्थिकपर्यायत्वं न विरुद्धयते अस्तित्वेन तु घटादिपर्याया घटादिष्वेव प्रतिबद्धा इत्यक्षरस्य ते परपर्याया व्यपदेश्यन्ते इति भावः ॥ द्विविधं हि वस्तुनः स्वरूपं, अस्तित्वं नास्तित्वं च ततो ये यत्रास्तित्वेन प्रतिबद्धास्ते तस्य स्वपर्याया उच्यते, येतु यत्र नास्तित्वेन संबद्धास्ते तस्य परपर्यायाः प्रतिपाद्यन्ते ॥ इति निमित्तभेदख्यापनपरावेव स्वपरशब्दौ, नत्वेकेषां तत्र सर्वथा संबन्धनिराकरणपरौ ॥ वत्थुसहावंपइतंपि सपरपञ्जाय-भेयत्रो भिन्नं ॥ तं जेण जीवभावो, भिन्ना इत उग्वडायाया ॥ १ ॥ वस्तुस्वभावं प्रति यथावस्थितं वस्तुस्वरूपमाश्रित्य तदपि केवलज्ञानं अकाराद्यक्षरवत् स्वपरपर्यायभेदतो भिन्नमेव

॥ ननु यथोक्तनीत्या स्वपर्यायान्वितमेवेति भावः ॥ कुतः ? इत्याह ॥ येन कारणेन तत्केवलज्ञानं जीवभावप्रतिनियतो जीवपर्यायो न घटादिस्वरूपं, तत्रापि घटादयस्तत्स्वभावाः किंतु ततो भिन्ना इति ते ज्ञायमाना अपि ते कथं तस्य स्वपर्यायाभवेयुः ? सर्वसंकरैकत्वादिप्रसगात्तस्मादमूर्त्तत्वचेतनत्पसर्ववेत्तत्वाप्रतिपाती च निरावरणत्वादयः केवलज्ञानस्य स्वपर्यायाघटादिपर्यायास्तु व्यावृत्तिमाश्रित्य परपर्यायाः ॥ अन्ये तु व्याचक्षते ॥ सर्वद्रव्यगतान् सर्वानपि पर्यायान् केवलज्ञानं जानाति येन च स्वभावेनैक पर्यायं जानाति न तेनैवापरमपि किंतु स्वभावभेदेनान्यथा सर्वं द्रव्यपर्यायैकत्वप्रसंगस्तस्मात् सर्वं द्रव्यपर्यायराशितुल्याः-स्वभावभेदलक्षणकेवलज्ञानस्य स्वपर्यायाः सर्वं द्रव्यपर्यायास्तु परपर्यायाः इत्येवं स्वपर्यायाः परपर्यायाश्चोभयेऽपि परस्परं तुल्याः केवलस्येति ॥ इत्यादि अधिकारं सर्वं माहाभाग्यथी जाणजो. ते अस्तिपर्याय ते जीवद्रव्यना सर्वथी अनंतगुणा छे, ते सर्वं प्रभुजी तुमारा निरावरण थया, ते अनंतगुणमयी परमानंदसंपदा तमारी आगममांथी सांभलतां मुझने पण ए रुचि उपनी, जे एहवी सिद्धता माहरे प्रगटे, एहवी अमिलाप उपनो तेथी कहू छुं के हे परमपुरुष ! मुझ अनाथ दीन कर्मवशे भवममताने भवममुद्रयी पार उतार, संसारथी पार उतारवानी विनति तुम विना वीजा कोण आगल कहू ? जे भवपार पाम्या ते आगल भवपार पामवानी विनति करुं ? ते भणी स्वामी ! मुझने ससार निस्तार करो ए विनति जे जीव, भवथी उद्विग्न मोचाभिलापी थयो, ते आतुर थइने कहे छे के हे अजित जिन ! मुने तारजो, ससारथी पार उतारजो तारजो हे प्रभुजी तुम दीनदयाल छो. हे स्वामी ! परमभावकरुणाना करणहार छो ॥ इति प्रथमगाथार्थः ॥ १ ॥

जे जे कारण जेहनुं रे, सामग्रीसंयोग ॥

मलतां कारज नीपजे रे, करतातणे प्रयोग ॥ अ०॥२॥

अर्थः—हवे जे कार्यनुं जे कारण छे, ते कारण तथा सामग्री ए त्रेनो संयोग मलतां कार्य नीपजे, जेम घटरूप कार्य, तेहने दंड, चक्र, चीवर, निमित्त कारण छे, तथा मृत्तिका उपादान कारण छे, अने कुंभकार कर्ता छे, जे कार्य अभेद तेहनो तेहवो कर्ता पण अभेद, जे कार्य कर्ताथी भिन्न, तेनो कर्ता पण भिन्न; एटले घटकार्य ते परवस्तु छे, तेहनो कर्ता कुंभकार पण भिन्न छे. अने सिद्धतारूप कार्य आत्माथी अभिन्न छे, तो तेहनो कर्ता आत्मा पण अभिन्न छे.

हवे आत्मा कर्ताने सकलस्वधर्मव्यक्त रूप जे सिद्धता, ते कार्य तेहने देव श्री अरिहंत देवाधिदेव तथा गुरु निर्ग्रंथादिक ते निमित्त कारण मल्यां, अने सामग्री कर्म भूमि साधर्मिकादिक संयोग मल्यां मोक्षरूप कार्य नीपजे, माटे माहरुं मोक्षरूप कार्य तेना निमित्तकारण श्री वीतराग तुमें छो, तेथी तमने आश्रयतां मोक्षरूप कार्य नीपजे, पण कारण सर्व मल्यां अने कर्ता जे आत्मा ते जो तेम प्रयोगसाधननो व्यापार न करे, तो कार्य नीपजे नहीं, केमके अरिहंतादिकना निमित्त पामीने पण अनेक जीव आत्मा साध्यावलंबी तथा साधनपरिणति थया विना मोक्षकार्य निपजाव्या विना हजी संसारमां भमता दीसे छे, ते माटे कर्ता जे आत्मा ते जो मोक्षसाधनरूप प्रयोग कहेतां व्यापार करे; तो सिद्धतारूप कार्य नीपजे ॥ इति ॥ द्वितीयगाथार्थः ॥ २ ॥

कार्य सिद्धि कर्ता वसु रे, लहि कारण संयोग ॥

निजपदकारक प्रभु मल्या रे, होए निमित्तह भोग ॥अ०॥३॥

अर्थः—माटे कार्यसिद्धतानी निष्पात्ति ते कर्त्ताने हाथ छे, जेम दंडरूप कारण तेने जो कर्त्ता घटरूप कार्य करवाने प्रवर्त्तावे तो घटरूप कार्य करे, अने तेज दंड जो घटध्वंसने प्रवर्त्तावे तो घटध्वंस करे, ते माटे निमित्तनी प्रवृत्ति ते कर्त्ता जे कार्य करवाने प्रवर्त्तावे ते कार्य करे, माटे कार्यनी सिद्धि ते कर्त्ताने हाथ छे, पण कारणनिमित्तादिक तेनो संयोग मन्था कार्य निपजे, ए पद्धति छे. माटे कोई ससारी आत्मा निज कहेतां पोतानुं आत्मिक पद परमानंद महोदयरूप तेहनो कारक कहेतां करवावंत तेने मोक्षना पुष्ट कारण प्रभुजी श्री अरिहंत मन्थां थकां अवश्य निमित्तनो भोग थाय, एटले जे जीव संसारथी उभग्यो मोक्षाभिलाषी थयो, ते मोक्षना निमित्त श्री तीर्थकर देव पामीने हर्षनो भोग आस्वादन पामे, घणो विलास उपजे, कार्योथी कारणनी पुष्टता वांछे, ए नीति छे इति ॥३॥

अजकुलगत केसरी लहे रे, निजपद सिंह निहाल ॥

तिम प्रभुभक्तें भवि लहे रे, आत्मशक्ति संमाल ॥अ०॥४॥

अर्थः—ते उपर दृष्टांत कहे छे. जेम कोई केसरी सिंह जन्मकालथी बकराना टोलामा बध्यो छे, तो ते एम जाणे जे बकरानो टोलो तेज माहेरुं कुंडुब छे, त्यां किवारें बीजा सिंह आवे, तेवारें बकरा सर्प नासे, अने पोते पण नासे, एम करतां किवारें सिंहनो आकार देखीने पोता सागुं जुए, त्यारें ते पोतानो समान आकार जोईने विचारे जे एहनुंने मारुं तो तुल्यपणुं दीसे छे, ने हु पण सिंह छुं, पछी निर्भय थाय. ए रीतें अज केतां बकरानां कुल केतां टोलामांहे गत केतां रक्षो जे सिंह, ते सिंहपणुं भूली गयो, ते बीजा सिंहने दे-

खीने पोतानुं सिंहपणुं संभारे, तिम केहतां ते रीते प्रभुनी भक्ति करतां भव्यजीव लहे कहेतां पामे, पोतानी आत्मशक्तिनी संभाल कहेतां ओलखाण पामे. जे वीतराग देव देखीने तेनी भक्ति करतां तथा सेवतां थकां उपजे जे वस्तुस्वरूप-सत्ताधर्मे हुं पण वीतराग निःकर्मा शुद्धस्वरूपी छुं, ए पण पहेलां संसारी जीवद्रव्य हता, पछी सिद्ध थया, तेम हुं पण प्रथमथी संसारी छुं, पण जो साधुं, तो सिद्धरूप थाउं. ए सर्व ओलखाण, प्रभुसेवना करतां निपजे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गार्थः ॥

कारण पद कर्त्तापणें रे, करी आरोप अभेद ॥

निज पदअर्थी प्रभुथकी रे, करे अनेक उमेद ॥अ०॥५॥

अर्थः—ते वारें कोई कहेशे जे अरिहंत देव तो अन्य जीवना मोक्षकर्त्ता नथी, तो अरिहंतदेव पासें मोक्ष मागो छो ? तेने उत्तर कहे छे, के कारणपद जे अरिहंतादिक ते प्रति पुष्टालंबन छे, माटे जे कारण तेनेज अभेद कर्त्तापणें आरोप करीने निज कहेतां पोतानुं पद जे शुद्ध सिद्धता, तेहनो अर्थी जे भव्य जीव, ते प्रभु श्रीतीर्थकर देवथी अनेक सम्यक्त्वादिक गुणनी उमेद कहेतां आशा करे, जे हे प्रभुजी ! मुजने मोक्षनां कारण तथा मोक्ष तमे आपो. एटले निमित्त कारणने कर्त्तापणें आरोप करी स्तुति करी ॥ ५ ॥

अहवां परमात्म प्रभु रे, परमानंद स्वरूप ॥

स्याद्वादसत्ता रसी रे, अमल अखंड अनूप ॥अ०॥६॥

अर्थः—हवे जे निमित्त पामीने उपादान समरे, पलटण पामे, ते रीत कहे छे, अथवा प्रभु परमात्मा तेहनुं स्वरूप

कहे छे. आत्मा प्रण प्रकारना छे, एक बहिरात्मा, बीजो अंतरात्मा, त्रीजो परमात्मा. तिहां जे शरीरादिक औदयिक-भावकर्मजनितने आत्मपणे गणे, ते बहिरात्मा कहिये, अने जे शरीरादिक औदयिकभावथी आत्मा असख्यात प्रदेशी, चेतना-लक्षणज्ञानादि अनतगुण पर्याय सहित अरूपी भिन्न एटले आत्मा अरूपी, शरीर रूपी, आत्मा सहज अकृत्रिम, शरीर संयोगी कृत्रिम, ते माटे कर्मयोगे शरीरादिमध्ये रक्षो, पण भिन्न छे, एहवो भेदज्ञानवंत संपकित गुणठाणाथी मांडी चीणमोह गुणठाणाना चरम समय पर्यंत अंतरात्मा जाणवो, तथा ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी, अंतराय, ए चार कर्म द्य ग्यां, केवलज्ञानी ते सयोगी अने अयोगी केवली तथा अष्ट-कर्ममुक्त सिद्धात्मा, ते परमात्मा जाणवो, एटले श्रीअजितनाथ अरिहत एवभूतनये परमात्मा छे, प्रभु छे, सर्व सिद्ध वस्तु-गते पोताना गुणपर्यायरूप संपदाना प्रभु छे, कोई द्रव्य, अन्यद्रव्यनुं स्वामी होयज नहीं, ज्यां सुधी जे द्रव्यना चि-तनमाहे पण परद्रव्यनु स्वामिपणुं छे, त्यां सुधी ते द्रव्य शुद्ध नहीं, ते माटे श्रीअजित अरिहत पोताना स्वभावना प्रभु छे, अने उत्तम जीव पोताने कर्मवश पड्या मोहे मृज्या जाणी, पोताने रंक समान गणे, अने अमोही स्वाधीन थया तेहने प्रभु कहे, अने अमोहीने अवलंब्यां पोते स्वसपदाना धणी थाय, ते माटे जेहना कारणपणाथी पोतानुं प्रभुत्वपणुं पामीये, तेहने प्रभु कहिये, स्तवीये, जगतमाहे पुद्गलना संयोगे जे सुख कहेवाय छे, तेतो आरोपमात्र छे, एटले जाते सुख नथी. ॥ उक्तंच विशेषावश्यके ॥ जत्तोचिय पच्चखं, सोम्म सुहं नत्थि दुःखमेवेक ॥ तप्पडियार विमत्तं, तो पुन्नफलति दुःखंति

॥ १ ॥ हे सौम्य ! 'प्रभासज्ञानावलोकनेन' ए सर्व दृश्यमान ते सुख नहीं, जे कांइ ए संसारमांहे, स्रग्चंदनअंगना संयोगथी उपनां जे सुख ते सर्व दुःखज छे. विषयनी उत्सुकताथी उपनी जे अरति, तेहनो ए प्रतिकार छे एटले दुःख तेनेज तत्त्वना अजाणपणाथी, सुखदुःखरूप भेदें वेहेंच्युं छे, पण जातें एकज दुःखरूप छे ॥ यथा ॥ श्लोक ॥ औत्सुक्य मात्रमवसादयति प्रतिष्ठा, क्लिश्नातिलब्धपरिपालनवृत्तिरेव ॥ नातिश्रमापगमनाय यथा श्रमाय, राज्यं स्वहस्तधृतदंडमित्रातपत्रम् ॥ १ ॥ जे पुण्यफल ते सर्व तत्त्वथी दुःखरूप छे ॥ उक्तं च ॥ विषयसुहं दुःखं चिय, दुःखपडिआरओ तिगच्छव्व ॥ तं सुहस्रुवचाराओ, न उवयारो विणा तत्थं ॥१॥ विषयसुख ते तत्त्वथी दुःखज छे. जेम रोगीने काथपान छेदन दंभनादि चिकित्सानी परें हित भासे छे, पण दुःखपणुं छतुं छे, मात्र उपचारें सुख भासे छे, अने जे उपचार ते तथ्य पारमार्थिक सुख नहीं, सुख ते मुक्त आत्माने निरुपचरित स्वाभाविक निःप्रतिकाररूप आत्मिक आनंद छे, तेज सुख छे, तथा शातानो उदय ते पण दुःख, अशातानो उदय ते पण दुःख, कारणके शाता ते कर्म छे, अने कर्मनो विपाक ते गुण रोधक छे, स्वगुणनो रोध तेहने सुख कोण कहे ? ॥ उक्तं च ॥ सायासायं, दुःखं, तन्विरहंमिम य सुहं जओ तेणं ॥ देहिंदिय सुदुःखं, सुखं देहिंदियाभावो ॥ इति ॥ ते माटे संसार सर्व दुःखरूप छे, अने सर्व परभावना संगर्था रहित, स्वाभाविक जे आनंद; तेने परमानंद कहीर्ये, ते परमानंद, श्रीअजितनाथनुं स्वरूप छे, जीवादि षट् द्रव्य छे, ते मध्ये पंचास्तिकाय ते परमार्थे द्रव्य छे, तथा छठो काल ते उपचारे द्रव्य छे. ए

चर्चा तत्त्वार्थ, विशेषावश्यकतया धर्मसंग्रहणी मध्येथी जोवी. ते मध्ये एक एक द्रव्यने विषे अनंता गुण, अनंता पर्याय छे, ते अनेकता जाणवी, अने एक द्रव्यने विषे एक समयें स्यान्नित्यं, स्यादनित्यं, स्यात् एकं, स्यात् अनेकं, स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् भिन्न, स्यात् अभिन्न, स्यात् वक्तव्य, स्यात् अवक्तव्य. ए सर्व स्वभाव समकालें वर्त्तता पामीयें छीयें, एटला धर्म समकाले जेमाहें वरते, ते धर्मनी अनंत प्रवृत्तिने स्याद्वावाद कहियें ॥ स्यात् इति पद अनेकांतोद्योतकं ॥ एहवी स्याद्वादमयी जे आत्मानी गुणपर्यायरूप सत्ता छे, तेना रसी कहेतां रसीया छो, एटले स्याद्वादमयी आत्मसत्ता, तेहना भोगी छो, तथा अमल कहेतां कर्ममल रहित छो, अखंड कहेतां किवारे खड न पामो, अनुप कहेतां जेहनी उपमा नथी एहवा प्रभु देखीने माहारे लाभ थयो ॥ ६ ॥

आरोपित सुख भ्रम टण्यो रे, भास्यो अव्यावाध ॥

समरथो अभिलाषीपणो रे, कर्त्ता साधन साध्य ॥अ० ॥७॥

अर्थः—एहवा प्रभुजी आत्मानंद भोगी, आत्मस्वरूप रमणी, तत्त्वविलासी, तंमने जोडने माहारे अनादि कालनुं इन्द्रियसुखने विषे जे सुखनु भासन ते आरोपितसुखभ्रम हतो, ते टण्यो, अने अव्यावाध, आत्मिकआनंद सुख ते भास्युं. जिहां सुधि विषय सुख उपर सुखबुद्धि हती, तिहां सुधि विषय सुखनो अभिलाष हतो, ते हवे तो सर्व विषय रहित, अव्यावाध सुखी श्री प्रभुजी दीठा, तेथी ते भव्य जीवने पण सुख ते अव्यावाध छे. एहवो निर्धार थयो, तेवारे अभिलाष पण अव्यावाध सुखनो थयो, माटे अभिलाषीपणुं समयुं, तेवारे स्वरूपानुयायी थयो, एटला काळ सुधी विषय सुखने

अभिलाषे, आत्मा विषयसुखनो कर्ता हतो, ते जिवारें एहने अव्याबाध सुखनो अभिलाष थयो, तेवारें कर्ता पण तेहवांज कारण मेलवे, अने साध्य पण तेहीज होय, एटले आज सुधी साध्य विषयसुखनुं हतुं, तेथी साधन पण विषयसुखनां मेलवतो हतो, हवे प्रभु श्री अजितनाथ निर्विकारी दीठा, तेवारें ते अव्याबाध सुख साध्य थयो, एटले साध्य साधन समर्थुं ॥ ७ ॥

ग्राहकता स्वामित्वता रे, व्यापक भोक्ताभाव ॥

कारणता कारजदशा रे, सकल ग्रहं निज भाव ॥अ०॥८॥

अर्थः—एटला काल सुधी ए जीव विषयसुखनो ग्राहक हतो, हवे शुद्ध अव्याबाध सुखी परमेश्वर देखीने ए जीव, अव्याबाध सुखनो ग्राहक थयो, एटला काल सुधी भूलनो वाह्यो विषयसुखनां हेतु जे धन, स्त्री, वस्त्र, आहारादिक परभाव, तेनुं स्वामिपणुं करतो हतो, हवे ज्ञानादिक अनंत गुण संपदाना स्वामी श्री देवाधिदेव देखीने ए जीवने पण अनंत ज्ञानादिक स्वसंपदानुं स्वामिपणुं थयुं, एटले ग्राहकभाव तथा स्वामित्वभाव समर्थो. एटला काल सुधि ए आत्मा विषयादिक परभावमध्ये व्यापक हतो, ते हवे आत्मानंद मध्ये तथा तेना साधनमध्ये व्यापक थयो, तथा अनादि काल सुधी परभावनो भोक्ता हतो, हवे परमप्रभु स्वभावभोगी देखीने, ए पण स्वभावनो भोक्ता थयो, एटले व्यापकता तथा भोक्तापणुं समर्थुं. एटला काल सुधि भुलें पड्यो ए आत्मा, संसारमां आठ कर्मरूप उपाधिनुं उपादान कारण हतो, हवे शुद्ध स्वरूपी, निःकर्मा, तत्त्वदेव देखीने पोताना शुद्ध स्वरूपनुं उपादान कारण थयो, एटला काल सुधि ए आत्मा आठ कर्म रूप कार्यनो कर्ता हतो, हवे परमदेवनी श्रद्धा पामीने संवर

निर्जरा रूप कार्यनो कर्त्ता थयो, माटे हे परमेश्वर ! हे जग-
दाधार ! हे दीनबंधो ! तुमारे अनुयायी मारी चेतना प्रवृत्ती
तेथी कारण तथा कार्य इत्यादि वीजी पण अनंती आत्मशक्ति,
ते सर्व समरचा लागी, एटले सर्व आत्मानी शक्ते आत्मभाव
ग्रहो, अने परभाव तजवा मांड्यो ॥८॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

श्रद्धा भासन रमणता रे, दानादिक परिणाम ॥

सकल थया सत्ता रसी रे, जिनवर दरिसण पाम ॥ अ०॥६॥

अर्थः—एटला काल सुधि उदैक पुण्य प्रकृति तेनो वि-
पाक जे शातावेदनी प्रमुख गुणरोधक तत्त्वविम्वृण तेना स्वाद,
जीवने मीठा लागता हता, तेथी ते पुण्यना उदयने सुख मान-
नतो हतो, ते हवे एवी श्रद्धा थइ जे अव्याबाध निःकर्म पद, ते-
हीज मारुं साध्य छे. तथा जे वस्तुनी यथार्थतानुं ज्ञान थयुं
ते भासन केतां जाणपणु ते पण समर्थु, अने रमण जे पुद्ग-
लना वर्णादिकमां हतुं, ते सर्वस्वरूपनुं रमण थयु, तथा १
दान, २ लाभ, ३ भोग, ४ उपभोग, ५ वीर्य-ए पांचेनो
घयोपशम ते, एटला काल सुधि दान पुद्गलनो हतो, लाभ
पण पुद्गलनो मानतो हतो, तथा भोगपण पुद्गलनो, उपभोग
पण ससारमा पुद्गलनो हतो अने वीर्य पण चालवीर्य, ते पुद्गल-
ग्रहण बंधन प्रमुख आठ करणपणे प्रवर्त्ततो हतो, ते सर्व
सत्तापणें पोताना जीवद्रव्यना मूलधर्म ज्ञानादि अनंत गुणप-
र्यायरूप तेना रमीया थया, एटले पुद्गलानुयायिता तजीने
शुद्ध स्वरूपानुयायी थया, एटले स्वसत्ता ते माहारो धर्म, ए-
हवी श्रद्धा थइ, अने स्वगुण जे पोतानो भावनिचेपो तें सार छे,
एहयुं भासन थयुं, तथा रमण ते, आत्मधर्म घमादिकमा थयु,

अने सहकाररूप ते दानगुण, गुणप्राग्भाव रूप ते लाभ, भोग स्वगुणनो थयो, उपभोग स्वपर्यायनो, वीर्य ते पंडित वीर्य थइने संवर हेतु निर्ज्जरारूप थयो. ते सर्व हे वीतरागदेव ! हे जिनवर ! तमारुं दर्शन पामीने एटले प्रभु दीठे माहारा एटला गुण समर्था ॥ ९ ॥ इति नवम माथार्थः ॥

तेणे निर्यामक माहणो रे, वैद्य गोप आधार ॥

देवचंद्र सुख सागर रे, भाव धर्म दातार ॥ अ० ॥१०॥

अर्थः—तेमाटे हे प्रभु ! तमे संसारसमुद्रनो पार पमाडनार एवं जे चारित्रधर्मरूप भ्रहाज, तेने चलावडाने निर्यामक समान छो. तथा तत्रधर्मपणे पोतें परिणम्या, तेथी द्रव्यहिंसा तथा भावहिंसार्थी रहित छो, अने परम अर्हिसक धर्मना उपदेशक छो माटे माहण छो, तथा आत्मशुद्धता रूप भाव-रोग तेनी सम्यक्ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप भावचिकित्सा, तेने देखाडवाना वैद्य छो, तथा भावथी ज्ञानादिगुण अने द्रव्यथी छकाय रूप जीवनी रक्षा करवाने परम गोप छो, वली भव-अटवीमांहे भमता प्राणीयोने हे प्रभु तमे आधार छो, सर्व देवमांहे चंद्रमा समान पोताना सुखना सागर एहवा हे श्री अजितनाथ परमेश्वर, तमे जीवद्रव्यने विषे व्यापकपणे रह्यो जे सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्ररूप भावधर्म तेना दातार छो, एटले हे प्रभु ! तुम दीठां भावधर्म सांभरे, तमे भावधर्मना उपदेशक छो, सर्व जीवने भावधर्मना दातार छो ॥१०॥ इति श्री अजितनाथस्तवनम् ॥

॥ अथ तृतीय श्रीसंभवजिन स्तवन प्रारंभः ॥

॥ घणरा ढोला ॥ ए देशी ॥

श्रीसंभव जिनराजजी रे,

ताहरु अकल स्वरूप ॥ जिनवर पूजो ॥

स्वपरप्रकाशक दिनमणि रे,

समतारसनो भूप ॥ जि० ॥ १ ॥

पूजो पूजो रे भविकजिन पूजो,

हांरे प्रभु पूज्यां परमानंद ॥ जि० ॥

अर्थः—हवे श्रीसंभवनाथ जिन कहेतां श्रुतकेवली, अष-
धिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी प्रमुखमां राजा समान, एवा हे संभव
प्रभु ! ताहरु कहेतां तमारु अकल कहेतां कोइथी कलाय
नहीं एहवुं स्वरूप छे, एहवा जिनवरने पूजो. अहो भव्यो !
तमे एहवा परम पूज्य परमेश्वरने पूजो, वली प्रभु केहना छे ?
जे स्व केता पोतानो धर्म अने पर केतां धर्मास्तिकायादिकनो
धर्म, तेने प्रकाशवाने दिनमणि कहेतां सूर्य जेवा छे, तथा
समता जे सर्वने विपे रागद्वेष रहीतपणुं, तेहना भूप केतां
राजा छे एहवा तत्प्रकाशक अरिहतने पूजो, चारवार पूजो,
भविक केतां मोक्ष योग्य मोक्षरुचि जीव, तमे पूजो, ए स्वरूप-
भोगी, निर्मलानदमयी, अज, अविनाशी, अक्षय, अणाहारी,
अशरीरी, अनंतज्ञानमयी, अनतदर्शनमयी, शुद्धस्वरूपी, देव-
तत्त्वने पूज्यां परमानंद थाय. जे पुद्गलयोगथी सुख उपजे, ते
उपचारसुख माटे ते परमानंद नहीं, अने जे आत्मानु सहज
अविनाशी, अप्रयासी, स्वरूपनु सुख अव्यानाधरूप तेने पर-
मानंद कही यें, ते सुख, अरिहंत देवने पूज्यां पामीजें. यद्यपि

अरिहंत देव, कोइ अन्य जीवना अव्यावाधादि गुणना कर्त्ता नथी, पण जे भव्यजीव, पोतानुं शुद्धपारिणामिक परमसिद्धता स्वरूप साध्य करीने वीतराग परमात्माने सेवे, अवलंबे, ते नियमा पोतानुं तच्च प्रगट करे, नियामिक कारण माटे, एहथी स्वरूप प्रगट थाय एमज धारवुं ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

अविसंवाद निमित्त छो रे,

जगत जंतु सुखकाज ॥ जि० ॥

हेतु सत्य बहुमानथी रे,

जिन सेव्यां शिवराज ॥ जि० ॥ २ ॥

अर्थः—वली हे प्रभुजी ! तमे अविसंवादि केतां विसंवाद जे निर्धार नहीं ते, अने तमें निश्चय निर्धार कार्यने करो, माटे अविसंवादनित्त कारण छो ॥ निमित्त लक्षणं ॥ कार्यभिन्नत्वे सति कर्तृत्वव्यापारत्वे सति हेतुर्निमित्तमिति । माटे हे प्रभु ! तुमें जगत्ना जीव तेना आत्मिक सुखरूप कार्य निपजाववाने प्रधान निमित्त छोजी, माटे हेतु केहेतां कारण ते सत्य केहेतां साचुं तेने बहुमान केहेतां माहामोटमपणे सेवतां जे मुज सरिखो मोहवश पड्यो, तृष्णार्थे ग्रस्यो, पुद्गलनो रागी, असंयममयी, मिथ्यात्वे भूल्यो भाव, ते निराधार, अशरण एहवो हुं, तेने श्रीतीर्थकर देव, परमतत्त्वमय, त्रैलोक्योपकारी, जेना नामथी परम कल्याण थाय, एहवा परमेश्वरनो योग मन्थो, माटे मारे ए बेला, ए घडी धन्य. एम असंख्यात प्रदेशे निःकर्मा, निःसंगी, स्वरूपभोगी देवतत्त्वनुं बहुमान करतो थको जे जिन केतां वीतरागने सेवे, ते जीव, परम कल्याणमयी पोते थाय. इहां सत्यपद बेने जोडवुं, हेतु सत्य ते अरिहंत देव आपणा मोक्षरूप कार्यना हेतु छे, तेनुं सत्य केहेतां साचुं

बहुमान करवु, एटले इहलोक, परलोक, इंद्रियसुखनी आशंसा टालीने अद्भुत वर्ण, गंध, मस्थानातिशय, वचनातिशय, प्रातिहार्य प्रमुख सर्व शुद्ध बहुमान कारण, माटे बहुमान करवा योग्य छे, ते द्रव्यबहुमान पण जे अरिहंतना शुद्ध ज्ञानादि गुण अनंतानु, मकल पुद्गलातीतपणानु, परम अरूपी अतींद्रियपणानु बहुमान ते सत्यबहुमान कहिए. एटले जिनशासनमध्ये १ नाम, २ थापना, ३ द्रव्य, ए त्रय निक्षेपा ते कारण छे; अने चौथो भावनिक्षेपो ते कार्यवस्तु छे, माटे जिहां सुधी प्रभुना अतिशयादिकना योग विकल्प तिहां सुधी द्रव्यबहुमान छे, अने जे दर्शनगुणें प्रभुतानु भासन थयाथी तत्त्वप्राग्भावनुं जे बहुमान, ते भावबहुमान कहिए. अने नामादिक त्रय निक्षेपा ते भावना कर्ता छे, अथवा भावाभिलाषी छे, तो ते पण सत्यबहुमान जाणवु ते सत्यबहुमानथी जे जिनसेवना तेज प्रभुनी आज्ञायें परभाव त्याग स्वभाव ग्रहण करतां शिवनिरुपद्रव जे सिद्धपणुं, ते राज पामीयें. एटले मांमारिक शिव ते उपचारी अल्पकाली अने मान्यतारूप छे, माटे जे निःकर्मापणें सर्वस्वरूप प्राग्भाव, ते निरुपचरित, अविनाशी शिव कहिए ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

उपादान आतम सही रे, पुष्टालंबन देव ॥ जि० ॥

उपादान कारणपणें रे, प्रगट करे प्रभु सेव ॥ जि० ॥ ३ ॥

अर्थ — हवे आत्मनिष्पत्तिविषे तो उपादान कारण मूल छे, तोपण निमित्त कारण विशेष छे, ते देखाडे छे. जे कारण तेज कार्यपणें अभेदें परिणमें ते उपादान कारण जाणवुं, अने जे कर्ताना व्यापारें कार्यने निपजावमानुं सहकारी थाय, तेने निमित्तकारण कहियें. ए निमित्तकारण ते कार्यथी भिन्न होय.

इहां कोइ पूछे जे उपादान कारणमां तथा निमित्तकारणमां जे कारण धर्म छे, ते वस्तुमां छतो पर्याय छे के अछतो उपजे छे ? तेने उत्तर कहे छे. जो कारण पर्याय वस्तुधर्म होय तो सिद्ध भगवान्मां पण उपादान कारण पाम्यो जोड़्ये ? तेतो नथी देखातुं, केम जे सिद्धमां कारणपणुं होय तो कांहीं कार्यपण निपजाव्युं जोइए ते कार्य तो संपूर्ण निपनुं छे. तथा निगोदावस्थाविषे पण उपादान कारण मानवुं पडे, ते पण संभवतुं नथी, केम जे निगोदावस्थामां उपादान कारण मानिये, तो आत्मसिद्धिरूप कार्य पण थवुं जोड़्ये. ते केम ? जे कारण, ते नियमा कार्य करे, अने कारणकाल, कार्यकाल, ते नियमा अभेद छे, ते विशेषावश्यकमां मतिज्ञानाधिकारथी जोइ लेजो. ते माटे कारणपर्याय ते उत्पन्न छे, ते कार्य संपूर्ण थये कारणतानो अभाव छे, अने जेनी सादि होय तेनोज अंत थाय, माटे कारणपर्याय ते सादि सांत छे, इहां कोइ कहेशे जे उत्पन्नपर्याय ते केवारें उपनो ? त्यां कहे छे, के जेवारें कर्ता कार्यरुचि थाय, तेवारें कारणता उपजे, एटले भव्य तथा अभव्य सर्व जीव संपूर्ण सिद्धतानां उपादान छे, पण सर्वे सिद्धता निपजावता नथी, श्या माटे ? जे कारणपणुं नथी, जो कारणपणुं प्रगटे, तो कार्य निपजे, माटे सर्व आत्मा पोतपोताना गुणप्राग्भावरूप सिद्धता कार्यना उपादान अवश्य छे, पण श्री जिनवरदेव शुद्धतत्त्वने अत्रलंबने कारणता निपजावे, माटे पुष्ट कहेतां नियामकी मोहुं आलंबन अरिहंत देव छे, जेमाटे सालंबन विना आत्मा अनादि दोषथी निवृत्तिने तत्त्वने आश्री शके नहिं, माटे अरिहंत देवनो तीर्थकर नामकर्मनो विपाक, तेहथी उपनां समवसरणादि जे आश्चर्य, तेने आलंब्यां

संसारी जीव पोतानो आत्मधर्म नजीक करे, तो जगत् जीवना आधार श्री तीर्थकरनी स्वरूप संपदाने आलंब्यां थकां आत्मधर्म अवश्य निपजे, माटे अरिहत देव, ते भव्य जीवने पोतानी शुद्धसत्ता प्राग्भावे करतां मुख्य आलंबन छे, हवे श्री वीतरागदेव पुष्टआलंबन केवी रीते छे ? तेनुं कारण कहे छे, जे आत्माने त्रिपे उपादानपणुं अनादिनु छे पण ते आत्ममिद्धतारूप कार्यने करतुं नथी, शा माटे ? जे उपादान कारणपणुं थयुं नथी, ते श्री जिनवर वीतरागनी जे सेवना, ते उपादान कारणपणु प्रगट करे छे, एटले अरिहंत देवनी द्रव्य भावथी भक्ति करता संसारी आत्मा मोक्षनो साधक थाय, तेमाटे श्रीजगद्दयाल, कर्मरोगना भाववैद्य, मिथ्यात्वरूप अधकार टालवाने सूर्यसमान, ममकाररहित, एवा गुणी प्रभुने सेवतां आत्मा मोक्षरूप कार्य निपजाववानुं कारणपणुं प्रगट करे, तेथी प्रभुजी पुष्टालंबन जाणवा ॥ ३ ॥ इति तृतीय गा० ॥

कार्यगुण कारणपणे रे, कारण कार्य अनूप ॥ जि० ॥

सकल सिद्धता ताहरी रे, माहरे साधन रूप ॥ जि० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने शरीर, इन्द्रिय, विषय, कषायरूप कार्य करतां अनतो काल गयो, ते जेवारें सम्यग्दृष्टि गुण प्रगट्यो, तेवारें रत्नत्रयी जे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक चारित्र, ते पोतानु कार्य जाण्युं. पछी श्रीअरिहंत सेवना, आगमश्रवणादि कारण सेवीने रत्नत्रयीनो क्षयोपशम प्रगट कर्यो, एटले यथार्थ तत्त्वश्रद्धान तत्त्वभासन, तत्त्वरमण, परभावतत्त्व त्यागरूप भेदरत्नत्रयी प्रगटी, ते पहेलां कार्यगुणें थयी, पछी तेज, चायिक अमेद रत्नत्रयीरूप स्वकार्य करवाने कारणपणे प्रवर्चावे, तेवारें जे कार्यपणे

हत्तुं, ते कारणरूप थाय पछी तेहीज कारणरूप भेद रत्नत्रयी ते क्षायिक भावरूप कार्यरूपे परिणमे, माटे जे कारण तेहीज कार्य थाय. ए उपादान कारण कार्यरूप पद्धति कही. हवे निमित्तपणे कहे छे. हे प्रभुजी ! तमारुं शुद्ध स्वरूप तेहीज तमारो कार्यगुण छे, पण ते भव्य मोक्षरुचि जीवने कारणपणे छे, केमके जे उपादानने तमारा शुद्ध गुण तेने कारणपणे अवलंबी तमारा जेवी सत्ता प्रगट करवी, ते कार्य छे, एटले जे कारण तेहीज करवाने संकल्पें कार्य छे, माटे हे प्रभुजी ! तुमारी सकल केतां संपूर्णसिद्धता, सकल प्रदेशे निरावरणता, सर्वस्वधर्म प्रागभावता ते माहरे साधनरूप छे, एटले तुमारी शुद्धतानुं जे साधन छे, तेने जेवारें माहरो आत्मा परम प्रभु-तारूप संपदाने अवलंबे. तेवारें परभावत्यागी थइने, स्वरूपा-वलंबी थाय, तेवारें माहरी सिद्धता निपजे, माटे तमारी सिद्धता ते माहारे साधनरूप छे, तेथी हुं जे माहरुं स्वरूप प्रगट करुं, ते उपकार तमारो छे, तेथी माहरे तो आधार, प्राण, शरण; सर्व हे देव ! तमेज छो ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

एकवार प्रभुवंदना रे, आगम रीतें थाय ॥ जि० ॥

कारणसत्यें कार्यनीरे, सिद्धि प्रतीत कराय ॥ जि० ॥ ५ ॥

अर्थः—माटे श्रीअरिहंत अनंतज्ञानी, अनंतदर्शनी; शुद्ध चारित्री, अविकारी, अकषायी, स्वरूपभोगी, स्वरूपरमणी; स्वरूपविलासी, त्रैलोक्यपूज्य, त्रैलोक्यउपकारी, चालता भावसूर्य, कर्मरोगना महावैद्य, परमेश्वर, परमोपकारी, तेने एकवार पण जे रीते आगम कहेतां सिद्धांतमां कहुं छे, ते रीतें जो वंदन थाय, एटले अनुष्ठान वर्जिने गुणवहुमानें अद्भुतता, आश्चर्यता, तद्विरहकातरतायें जो थाय तो माहरुं मोक्षरूप कार्य नि-

पजे, एहवी प्रतीत कराय. शा माटे ? जे कारणसत्तें कहेतां छते कारणें अथवा कारणसत्तें कार्यनी सिद्धि एटले निष्पत्तिनी प्रतीत कराय, अने कार्य पण निपजे. एटले श्रीप्रभु परमात्मानें विधिए वदना करता उपादान जे आत्मा, ते गुणानुयायी थयो, तो निमित्त तथा उपादान वेहु कारण साचां मन्यां थकी कार्य पण साचुं निपजे. जेम स्त्री, धन, विषयादिक अशुद्ध निमित्त मले तेवारें आत्मा अशुद्ध उपादानी थाय, तेथी संसार अशुद्धतारूप कार्य निपजे छे, तो श्रीवीतराग शुद्ध निमित्त मलेथी उपादान जे आत्मा ते शुद्ध परिणामी थाय, तेथी सुद्ध सिद्धतारूप कार्य निपजेजी अनादिकाल संसारमा भमता न आव्युं एहवुं अरिहत बहुमान ते जो एकवार आवे, तो कार्य निपजानी प्रतीति थाय ॥५॥ इति पचम गाथार्थः॥

प्रभुपणे प्रभु ओलखी रे, अमल विमल गुणगेह॥जि०॥

साध्यदृष्टि साधकपणे रे, वंदे धन्य नर तेह ॥जि०॥६॥

अर्थः—हवे शुद्धसत्ता परिणामिपणे संसार तथा परजीवनी सिद्धिना अकर्ताने सेव्यां सिद्धि प्रगटे, वली अमल कहेता राग द्वेषादि आरणादि मलथी शून्य, विमल कहेतां भाव उज्ज्वलतावत, गुणगेह कहेता ज्ञानादि गुणना घर, एवी रीते प्रभुनुं जे रूप छे, तेने ओलखीने साध्यदृष्टि एटले पोतानो आत्मा परमानंद रूप छे, तेनी सर्व संपदा प्रगटानवा रूप साध्य नजरमा राखीने एटले तत्त्वकार्य आलमनी थडने साधक पणे कहेतां पोते साधक थडने, जे पोताना ज्ञानादिक गुण चयोपशमी छे, ते सर्व गुण निर्मल करवारूप कार्य करवापणे प्रवर्त्तावतां जे शुद्धानदी, परमज्ञानी, निर्मोही देवने वादे, नमस्कार करे, ते नर धन्य, कृतपुण्य जाणवा ॥ उक्त च ॥ जे

पुण तिलोयनाहो, भक्तिभर पूरिएण हीययेण ॥ वंदंति न
मंसंति, ते धन्ना ते कयत्था य ॥ ६ ॥ इति षष्ठगाथार्थः ॥

जन्म कृतारथ तेहनो रे, दिवस सफल पण तास ॥

जगत शरण जिन चरणे रे, वंदे धरीय उल्लास ॥ जि०॥७

अर्थः— ते जीवनो जन्म कृतार्थ जाणवो, वली ते
दिवस पण तेहवोज सफल जाणवो, जगत्ना जीव, मोहे मुं-
ज्याने, भव अटवीमध्ये पड्याने, मिथ्यात्वे लुंटाताने, परमश-
रण त्राण आधारभूत एहवा श्रीजिन कहेतां वीतरागना चर-
णने जे उल्लास कहेतां हर्ष धरीने वंदे कहेतां वांदे, तेनो जन्म
कृतार्थ ॥ ७ ॥

निज सत्ता निज भावथी रे, गुण अनंतनुं ठाण ॥

देवचंद्र जिनराजजी रे. शुद्ध सिद्ध सुखखाण ॥ जि०॥८॥

अर्थः—ते प्रभु निज कहेतां पोतानी सत्ता अनंतगुण
पर्याय रूप ते निज भावथी कहेतां पोताने भाव स्वभावेथी
थया छे. एहवा जे गुणज्ञानादिक अनंत तेनुं ठाण कहेतां
ठेकाणुं छे. सर्व देवमां चंद्रमा समान जिनराज, ते कहेवा छे ?
शुद्ध सिद्ध कहेतां निष्पन्न गुणनी खाण छे ॥ ८ ॥ इति
संभवजिनस्तवनं ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थ श्रीअभिनंदनजिनस्तवनम् ॥

॥ ब्रह्मचर्यपद पूजीये ॥ ए देशी ॥

क्युं जाणुं क्युं बनी आवशे,
अभिनंदन रस रीति हो मित्त ॥

पुद्गल अनुभव त्यागथी,

करवी जसु परतीत हो मित्त ॥ क्युं० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्री अभिनंदन प्रभुनी स्तुति कहे छे. कोइ मव्य जीवने श्रीवीतरागदेवथी एकत्वपणे मलवानुं मन थयुं, पण प्रभुजीने मलवानी शक्ति पोतामां अण देखतो विचारे छे, जे एहवा परमोत्कृष्ट देवतत्त्वथी केम मिलाय ? तेनो विरहवंत थको बोले छे जे ए प्रभुजीथी शुं जाणीयें केम बनी आवशे ? ते परम वल्लमथी मलवानु मन छे, पण मलवुं दुर्लभ देखीने बोले छे, जे हे प्रभु श्रीअभिनंदन देव ! तुमथी माहरे शुं जाणीयें केम बनी आवशे ? अभिनंदन कहेतां संवर राजाना पुत्र, सिद्धार्थ राणीनी कुच्चियें उत्पन्न, गर्भे आव्याथी जिहां सुधी गर्भे रक्षा, तिहां सुधी नित्य इंद्रें आवीने सुखपृच्छा पूछी, तेथी अभिनंदन एवु नाम थयु, अथवा अति समस्तपणे आनंदमयी तेथी अभिनंदन नाम थाप्युं, ते प्रभुथी रस कहेतां रसीली एकत्वता रीति केम बने ? पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, फरसनो अनुभव कहेतां भोगवु, तेहना त्यागथी करवी, जेहनी प्रतीत एटले सर्व पुद्गलनो अनादिनो अशुद्धभोग तजीने जेवारें जे बर्त्ते. तेवारें तेने प्रभुथी मलि शकवानी प्रतीति थाय, पण पुद्गलभोगीने ते शुद्ध तत्त्वथी एकत्वता न थाय, जे स्वरूपभोगी थयो, तेहने ए रसरीत बनी, एवी प्रतीत थाय, माटे पोताना आत्माने कहे छे, जे हे मित्र ! ए कार्य केम बनशे ? ते तुं विचारी जो ॥ १ ॥ इति प्रथमगाथार्थः ॥

परमात्म परमेसरू, वस्तुगते ते अलिप्त हो मित्त ॥

द्रव्ये द्रव्य मले नहिं, भावे ते अन्य अव्याप्त हो मित्त ॥ क्युं० ॥२॥

अर्थः—प्रभु तो निःकर्मा केवली परमात्मा छे, तथा परम कहेतां उत्कृष्टा ईश्वर छे, एटले असंख्यात प्रदेशें पारिणामि-कपणे रह्या जे अनंता गुणपर्याय, तेहना ईश्वर अथवा सर्व प्रकारें स्वाधीन, निर्दोषी तेथी परमेश्वर. वली केहवा छे ? जे वस्तुगतें कहेतां मूलवस्तुधर्म अलिप्त छे. एटले सर्व जीवद्रव्य शुद्धसंग्रहनयें अलिप्त छे, पण कोई अन्यद्रव्य तथा रागादि अशुद्ध परिणतिथी लेपाय नहीं, अने अभिनंदन प्रभु तो सर्व-नयें विशुद्ध थया छे, टंकोत्कीर्णन्यायें प्राग्भावधर्मी थया छे, ते सर्व रीते परथी अलिप्त छे. एटले जे लेपाय, ते मले, पण जे लेपाय नहीं, ते केम मले ? हवे छे द्रव्य छे, तेनां नाम कहे छे. ? असंख्यात प्रदेशी, लोकप्रमाण, अरूपी अक्रिय, अचल, अचेतन, चेतन तथा जीव अने पुद्गल ए वे द्रव्य, गतिपरिणामी छे तेने गतिनो सहायी थाय, ते धर्मास्तिकाय द्रव्य जाणवुं. २ असंख्यातप्रदेशी, लोकप्रमाण, अरूपी, अचे-तन, अक्रिय, स्थितिपरिणामी, एटले जे जीवपुद्गलने स्थिर रहेवानुं सहाय आपे, ते अधर्मास्तिकाय. ३ अनंतप्रदेशी, लोकप्रमाण, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने सर्व द्रव्यना-पोतें अवगाहक परिणामी, तेने अवगाहनानुं हेतु ते आकाशा-स्तिकाय द्रव्य. ४ पुद्गलपरमाणु, अनंता, रूपी, अचेतन, सक्रिय, पूर्णगलनधर्ममयी, १ वर्ण, २ गंध, रस, ४ स्पर्शयुक्त, एक एक परमाणु, एहवा अनंत परमाणु ते सर्वलोकमाहे जाणवा, पण लोकथी बाहेर नहीं, ते पुद्गलास्तिकायद्रव्य. ५ चेतनालक्षण, १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ वीर्य. ६ उपयोग, लक्षण तथा अरूपी, स्वभावनुं कर्ता, असंख्यात प्रदेशी, एहवुं एक जीवद्रव्य, तेहवा अनंता जीव, ते जीवास्तिक-

कायद्रव्य कहिये. ए पांच द्रव्यने प्रदेशनो सर्वंध छे, माटे अस्तिकाय कहिये, ई तथा छठुं अप्रदेशी, अरूपी, वर्तनालक्षण, निश्चयनयथी पंचास्तिकायनी वर्तनारूप अने व्यवहारें उपचारथी ज्योतिश्चक्रने चारें ओलखाय, ते कालद्रव्य. ए छ द्रव्यनां नाम कह्या. तेमा १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ काल, ए चार द्रव्य, अपरिणामी कोइथी मिले नहीं, अने १ जीव, २ पुद्गल, ए वे द्रव्य परिणामी, एटले अन्यद्रव्यथी मिले. तेमाहे पुद्गलद्रव्य मांहोमांहे खघपणुं पामे, अने परानुयायी हेतुपणे परिणम्यो जे जीव, तेने प्रदेशें कर्मपणे बलगे, पण एक जीवथी बीजो जीव मले नहीं अने पुद्गल तो संसारी जीवथी मले. पण माहरा अभिनंदन परमेश्वर तो सिद्ध थया छे, मिथ्यात्वादिक हेतुथी मुक्त थया छे, तेने पुद्गल लागी शके नहीं, ए स्वरूप छे माटे द्रव्यथी द्रव्य मले नहीं, एटले शुद्ध जीव ते अशुद्ध जीवथी मले नहीं. बीजुं पण मूलनये कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यथी मले नहीं, ते द्रव्यें तो मलबु नथी, तथापि कदाचित् भावें मले तो पण भाव कहेतां वस्तुनी मूलपरिणति प्रवृत्तिरूप तेथी अन्य जीवो तथा अन्य पुद्गलनु अव्याप्तपणुं छे, एटले व्यापे नहीं. जे परव्यापकता ते उपाधिथी छे, अने प्रभु श्रीअभिनंदन देवनो भावधर्म ते परम निर्मल थयो छे, सर्वस्वभावने अनुयायी थयो छे, एटले कर्त्ता, भोक्ता, ग्राहकता, व्यापकता, आधारता, रमणता, अवस्थानता, इत्यादिक सर्व स्वरूपपणे निपना छे, ते केम अन्यद्रव्यने आपे ? तेथी प्रभुजीनां १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, सर्व शुद्ध-धर्मी छे ए द्रव्यादि चारनुं स्वरूप लखे छे ॥ गाथा ॥ द्रव्यं गुणसमुदाश्रो, खित्तं श्रोगाह वड्डणा कालो ॥ गुणपञ्जाय प-

वत्ति, भावो निश्च वत्थुधम्मो सो ॥१॥ इति आगमवचनात् ॥
 गुणपर्यायनो समुदाय ते द्रव्य तथा प्रदेशावगाहना ते क्षेत्र
 अने उत्पाद व्ययनी वर्तना, ते काल, तथा द्रव्यना पोत
 पोताना गुणपर्यायनी प्रवृत्ति ते भावे, एम द्रव्यादि चारनी
 परिणति ते वस्तुधर्म छे, माटे ते प्रभु केम मले ? ॥ २ ॥
 इति द्वितीय गाथार्थः ॥

शुद्ध सरूप सनातनो, निर्मल जे निःसंग हो मित्त ॥

आत्म विभूतं परिणम्यो, न करे ते परसंग हो मित्त ॥

॥ वयुं० ॥ ३ ॥

अर्थः—वली श्रीवीतरागदेव केहवा छे ? शुद्ध कहेतां
 सर्वदोषरहित, एहवुं स्वरूप जेहनुं सनातनो कहेतां नित्य छे,
 यद्यपि पर्यायै अनित्य छे, पण इहां कूटस्थ नित्यतायै नित्य
 छे, निर्मल ज्ञानावरणादि मल रहित, वली निस्संग कहेतां सर्व
 संग रहित, जेहनो असंख्यातप्रदेशमध्ये द्रव्यथी कोइ परमाणु
 मात्र रह्यो नथी, अने भावथी जेहनी परिणतिमाहे रागी द्वेषी-
 पणे कांइ अन्य भाव नथी, एहवो निस्संग छे ते परमेश्वर,
 वली आत्मविभूति कहेतां पोतानी शुद्धस्याद्वादरूप, अनंत,
 अज, अविनाशी, अखंड, स्वधर्मे परिणम्यो छे, एहवो जे पर-
 मेश्वर ते पर—कहेतां बीजा द्रव्यनो संग एटले संबंध करे नहीं,
 एटले सत्तायै जीवद्रव्य परसंगी नथी, विभावे परसंगी थयो छे.
 पण जे सम्यक् रत्नत्रयी रूप साधनपणे परिणामीने शुद्धरूपे
 थया ते कोइ रीते परनो संग करे नहीं, तो एहवा प्रभुथी केम
 मलाशे ? माटे हे प्रभु ! तुमने मल्या विना मुझने सुख केम
 थाशे ? ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

पण जाणुं आगम वले, मिलवुं तुम प्रभु साथ हो मित्त ॥
 प्रभु तो स्वमपत्तिमयी, शुद्ध स्वरूपनो नाथ हो मित्त ॥
 क्युं ॥ ४ ॥

अर्थः—एम विचारतां उपयोग आव्यो ते कहे छे, पण-
 जाणुं आगमवले केहेतां जे आगममाहे कहुं ते गुरुमुखें सां-
 भन्युं, तेना बलथकी जाणु छुं, जे हे भव्यजीव ! प्रभुश्री
 वीतराग साथें आपणे मलवु छे, जेहने गरज होय, ते मले.
 एटले पोतानी सपदा प्रगट करवानो रुचिवंत मले. प्रभु तो
 स्व कहेतां पोतानी संपत्ति जे स्वचेत्र असख्यात स्व प्रदेश-
 विषे व्यापकपणे रखा जे अनंतज्ञानादिक गुण, ते संपदामयी
 छे, शुद्ध स्वरूपनो नाथ कहेता घणी छे, माटे निष्पन्नपरमा-
 नंदभोगी शुद्ध स्वरूपी ते कोइथी मले नहीं ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ
 गायार्थः ॥

परपरिणामिकता अछे, जे तुझ पुद्गलयोग हो मित्त ॥

जड चल जगनी एंठनो, न घटे तुझने भोग हो मित्त ॥

क्युं ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे कोइ पुछशे जे सर्वद्रव्यमाहे परयी मल-
 वानी शक्ति नथी, तो साधकनुं जीवद्रव्य पण, वस्तुधर्मे शुद्ध
 छे, तेने प्रभुथी मलवुं, ते पण तेनी सत्तामां तो नथी, तो हवे
 केवी रीते मिले ? त्यां कहे छे. जे अनादि अतीतकाल ए
 संसारी जीवनु आत्मिक सुख सर्व अवरणु अने भोगधर्म,
 क्षयोपशमी छे, ते काईक भोगव्यो जोइयें, ते स्वरूपने अण-
 पामवे, पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, फरस, जे अभोग्य छे, तेने
 भोगवतो थको परभोगी थयो, परपरिणामी थयो. ए परपरि-

णामिकतानी चाल ते अनादिनी टेव छे, एटले कर्त्ता परनो, भोक्ता परनो, रमण परने विषे, ग्राहक परनो, एम सर्व, परभावमयी थयो छे. इहां कोई पूछशे जे शुद्ध द्रव्यधर्मी, ते परपरिणामी केम थाय ? तेने कहे छे. जे पुद्गलना योगें पुद्गलावलंबी चेतना थइ, एटले कहे छे जे हे जीव ! पुद्गलने योगें जे तारी परपरिणामिकता ते अनादिनी अशुद्धता विजातीयपणे छे, दोषरूप छे, अने आत्माने सर्व अघटित छे, केम जे पुद्गल ते जड छे, तथा चल कहेतां विनाशी छे, जगत्नी एंठ छे, ते पुद्गल द्रव्य द्रव्यें ध्रुव छे, अने पर्यायें अध्रुव छे, वर्णादिक, खंधादिक पर्याय सर्व पलटे छे, अने सर्व संसारी एकेका जीवें एकेको पुद्गलपरमाणु, तेने शरीरपणे, भाषापणे, मनपणे, आहारपणे, अनंती वार लइ लइने मूकयो छे, ते माटे ए पुद्गल ते सर्व, जीवोनी एंठ छे अने जीवद्रव्य ते स्वरूपभोगी छे, माटे हे चेतन ! तुने ए पुद्गलनो भोग घटतो नथी, केम जे हंस केवारें कचरामां चांच घाले नहीं ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

शुद्धनिमित्ती प्रभु ग्रहो, करी अशुद्ध पर हेय हो मित्त ॥

आत्मांलंबी गुण लयी, सहु साधकनो ध्येय हो मित्त ॥

क्युं० ॥ ६ ॥

अर्थः—माटे परभोगीपणुं अशुद्ध निमित्त जे पुद्गलादिक, तेने तजीने शुद्ध, निःकर्मा, पूर्णानंदरूप प्रभुने अवलंबो, एटले ए आत्माने विषे परानुयायितापणुं छे, ते टालवाने माटे प्रथम अशुद्धालंबन तजीने अरिहंतालंबनी थबुं, तेथी शुद्धनिमित्ती जे निमित्त नियामकी कारण छे, ते प्रभुने भजो,

सेवो. पण सर्व परवस्तु अशुद्ध ते हेय कहेता तजवारूप करीने एटले सर्व परभाव त्याग करीने प्रभुने भजो. ते प्रभु केहेवा छे ? जे आत्मालयी केहेतां सर्वपणे पोताना आत्माने अवलंब्या छे, एटले पोताना आत्माने विपेज तन्मय थया छे, तथा गुणलयी कहेतां गुणने विपे लय कहेतां मिश्राम जेहनो छे वली श्रीवीतरागतत्त्व केहेवु छे ? सर्वमोक्षने निपजावनारा साधक एहवा जे सम्यग्दृष्टि देशविरति, सर्व विरति, श्रेणिना वासी, ध्यानारूढ जीवो तेने ध्येय छे, एटले सर्व आत्माने श्री सिद्ध परमात्मा ध्येय छे ध्यान वे प्रकारनुं छे, एक सालंबन, बीजु निरालंबन. तेमा जे अरिहंतसिद्धनु तत्त्व स्वरूप अपलंबीने ध्यान करवु, ते सालंबन ध्यान छे. तेणे श्रीअभिनंदन प्रभु सर्वने ध्याववा योग्य छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥

जिम जिनवर आलंबनं, वधे सधे एक तान हो मित्त ॥

तेम तेम आत्मालंबनी, ग्रहे स्वरूप निदान हो मित्त ॥

क्युं ॥ ७ ॥

अर्थः—इम करतां जेम जेम साधक जे आपणो जीव, ते श्रीजिनवरदेवनी तत्त्वप्रभुताने आलंबने वधे, केहेतां सर्वज्ञयोपशमी चेतना वीर्य रमण अरिहंतनी शुद्धतामां तन्मयपणे थाय, एकतान केहेतां एकत्वपणुं सधे निपजे, एटले सकलपरभावथी टलीने एक निष्पन्न परमात्माने स्वरूपे चेतना व्याप्त थाय, तेम तेम ए साधक जीव, पोतानो आत्मा कार्यरूप तेहेने स्वरूपने आलंबे, उपादानस्मरण चिंतन ध्यानरूप थाय, तेवारें एक स्वरूपनुं निदान कहेता मूलकारण ग्रहे, अंगीकार करे ॥ इति ॥ ७ ॥

स्वस्वरूप एकत्वता, साधे पूर्णानंद हो मित्त ॥

रमे भोगवे आत्मा, रत्नत्रयी गुणवृंद हो मित्त ॥

क्युं० ॥ ८ ॥

अर्थः—ते जेवारें स्वस्वरूपएकाग्रता ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप ग्रहे, तेवारें परिणामिक परमतत्त्वने विषे एकत्वता शुद्धस्वरूपपरमण, शुद्धस्वरूपभोगी थाय, तेथी सधे कहेतां निपजे, पूर्णानंद कहेतां संपूर्ण, आत्यंतिक, एकांतिक, अनंतातिशय, अबाधक, केवलनिराबाध, स्वाधीन आत्मसुख निपजे, पछी ए आत्मा पोतानी रत्नत्रयी आदिक गुणवृंदने विषे रमे, तेहनेज भोगवे, तन्मय, तद्विलासी, स्वभावआनंदी थको रहे, सादि अनंतोकाल, स्वपरिणामिक प्रगटपणे वर्ते ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

अभिनंदन अवलंबनें, परमानंद विलास हो मित्त ॥

देवचंद्र प्रभु सेवना, करी अनुभव अभ्यास हो मित्त

॥ क्युं० ॥ ९ ॥

अर्थः—ए रीते श्रीअभिनंदन प्रभुने अवलंबनें परमानंदनो विलास थाय, सर्वदेवमांहे चंद्रमा समान जे अरिहंत देव, तेहनी सेवना, अथवा स्तुतिकर्तानुं नाम पण देवचंद्र. तेमाटे पोताने संबोधनें हे देवचंद्रप्रभु ! तमारी सेवना करे, पण अनुभवना अभ्यासथी एटले अनुभवयुक्त करे. एहीज आत्मा निपजाववानुं परम कारण छे, माटे एहने सेवो, आदरो ॥ ९ ॥ इति ॥

॥ अथ पंचम श्री सुमतिजिन स्तवनं. ॥

॥ कडखानी देशी ॥

अहो श्री सुमतिजिन शुद्धता ताहरी,
स्वगुण पर्याय परिणामरामी ॥

नित्यता एकता अस्तित्ता इतर युत,
भोग्यभोगी थको प्रभु अकामी ॥ अ० ॥ १ ॥

अर्थः—अहो इति आश्चर्ये, हे श्री सुमतिजिन ! पांचमा परमेश्वर ! ताहरी शुद्धता आश्चर्य रूप छे, ते शुद्धता केहवी छे. स्व केहतां पोताना गुण ज्ञानादिक तथा पर्याय ते १ द्रव्यपर्याय, २ गुणपर्याय, ३ द्रव्यव्यंजनपर्याय, ४ गुणव्यंजनपर्याय, ५ स्वभावपर्याय. त्यां सहभाषिकधर्म ते गुण कहिये, अने क्रमभाषि ते पर्याय कहिये, तथा श्री उत्तराध्ययन सुते ॥ गाथा ॥ गुणाणामासत्रो दन्व, एगदन्वसिषा गुणा ॥ लरकणं पञ्जराणं तु उभत्रो निस्सिषा भवे ॥ १ ॥ एहवी स्वगुणपर्यायरूप संपदामध्ये रमी रह्या छो, परभावथी निवर्तने पोताने धर्मे रम्या छो. वली ते शुद्धता केहवी छे ? जे नित्यता, तद्भावान्वय नित्यं ते नित्यता, तथा एकता, तथा अस्तित्ता, इतर केहतां बीजा भेद अनित्यता, अनेकता, नास्तित्ता, एटला धर्ममयी छे. जे नित्य तेहीज अनित्य, जे एक तेहीज अनेक जे अस्ति, तेहीज नास्ति, माटे आश्चर्य रूप छे, वली केहवो छे ? भोग्य जे पोताना गुणपर्याय, तेहनो भोगी छे, तो पण अकामी एटले स्वरूपनो भोगी पण कामना (वांच्छना) विना भोगये छे, माटे अकामी छे, एटले स्वचेतथी वेगलो जे पुद्गलनो वर्ण, गंध, रस, फरमनो भोग, ते वाञ्छो पडे,

तेने कामना कहिये, पण तेनो भोगी आत्मा नथी. आत्मा तो ज्ञानादिक गुण जे स्वक्षेत्रव्यापकपणे प्रगटभोग तेहनो भोगी छे, ते भोगवतां कामना न जोइयें, माटे कामना विना भोगी छे, ए अचरज जाणवी ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

ऊपजे व्यय लहे तहवि तेहवो रहे,

गुण प्रमुख बहुलता तहवि पिंडी ॥

आत्मभावेँ रहे अपरता नवि ग्रहे,

लोक प्रदेश मित पण अखंडी ॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थः—हवे नित्यतादिक धर्म कहि समजावे छे. सर्वद्रव्य छे छे, तेमध्ये काल ते उपचार द्रव्य छे, तथा धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्य अस्तिकाय छे, तेमां १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय. ए त्रण एकेक द्रव्य छे, जीव अनंता द्रव्य छे, पुद्गल अनंता द्रव्य छे, द्रव्यनुं अगुरुलघुपर्यायनुं षट्गुण हानिवृद्धिरूप चक्र एकहुं जलावर्तनी परें वर्ते, ते एकद्रव्य जेनुं चक्र भिन्न पडयुं ते भिन्नद्रव्य, ते सर्व द्रव्य, उत्पाद, व्यय, ध्रुवयुक्त छे, ते माटे नित्यानित्य छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यकभाष्ये ॥ तं जइ जीवो नासो, तं नासो होउ सव्वसो नत्थि ॥ जं सो उप्पायव्वय, ध्रुव धम्माणंत पज्जाओ ॥ १ ॥ पुनः ॥ सव्वंवि य पइसमयं, उप्पज्जइ नासएय निच्चं च ॥ एवं चेव य सुहदुःख बंध मोक्खाइ सभभावो ॥ २ ॥ इहां युक्तिनो समूह, माहाभाष्यथी जाणवो. एम जीवनो नित्यानित्य स्वभाव छे, ते कहे छे. अभिनवपर्याय उपजे छे, पूर्वपर्याय व्यय थाय छे, यथा एक प्रदेशे अगुरुलघुपर्याय अनंत गुणो छे, बीजे प्रदेशे तेथी अनंतभागहीन छे, त्रीजे प्रदेशें

असंख्यात गुण वधतो छे चोथे प्रदेशे संख्यात गुण वृद्धि
 छे एम असंख्यात विभाग छे, ते प्रतिसमय परावर्त्तरूप छे.
 ते जिहा अनतगुण तिहां असंख्यात गुण थाय, तेथी जे,
 प्रदेशे अनंत गुणपणु टल्हुं, ते व्यय थयो, अने असख्यात-
 पणानुं उपजवुं थयुं, ते उत्पाद थयो, तथा अगुरुलघु सत्पण्ये रह्यो
 ते ध्रुव जाणवो, तथा ज्ञेयनुं जाणवुं, ए ज्ञाननो धर्म छे ते ज्ञेयने
 पलटवे जो ज्ञान नित्य होय, तो जणाय नहीं. जे माटे विवचित
 समयने विषे केवलज्ञान अनंता अतीत धर्म थया, तेने जाणे,
 वर्त्तमाने अनंता धर्म छे तेने जाणे, तथा अनागत अनंता थाशे
 ते पण जाणे; यद्यपि थया छे थशे ए धर्म ज्ञेयना छे, पण ते
 सर्वने जाणवानो धर्म ज्ञानमाहे छे. अने परज्ञेयने जाणंगपणे
 ज्ञान परानुयायी थातु नथी “ विषयभेदात् विषयिणोऽपि भेदः
 ज्ञेयभेदात् ज्ञानभेदः, पुनः ज्ञान यावंतोहि ज्ञेयस्य पर्याया-
 स्तावंतस्तदेवभासकत्वेनास्याप्येष्टव्याइति बृहद्भाष्ये ” तथा जे
 ज्ञान वर्त्तमानपणे जाणतो, तेहने अतीतपणे जाणे, अने जे
 अनागत तेहने वर्त्तमानपणे जाणे, ए ज्ञानना पर्याय भासन-
 वेत्तादिक ते सर्व एवी रीते पलटे, तेथी पूर्वपर्यायनो व्यय,
 उत्तरपर्यायनो उत्पाद, अने ज्ञानपणे ध्रुव, एम दर्शन, चारित्र
 सर्व गुण जाणवा, माटे हे श्रीसुमतिनाथ प्रभु ! तमारी शु-
 द्धता केहवी छे ? जे समय उपजे, ते समयेज व्यय पामे
 छे, अने तहवि कहेता तो पण तेहवो रहे केतां मूलध्रुवधर्म
 न मूके, एटले उपजे, विणसे, ते अनित्यता, अने ध्रुव रहे,
 ते नित्यता. ए धे स्वभाव कहा. तथा एक आत्माने विषे
 ज्ञानगुण, दर्शनगुण, चारित्रगुण, वीर्यगुण दानगुण लाभगुण,
 भोगगुण, अरूपीगुण, अगुरुलघुगुण, अन्यानाधगुण, इत्यादिक

अनंता गुण छे, ते सर्व गुण भिन्न भिन्न छे, तेथी अनेकता छे तथा ते सर्वगुण समुदायरूप छे, पण केवारें भिन्नचेत्री न थाय, ते अनंत गुणपर्यायनो एकपिंड एहवो आत्मा छे, माटे एक रूपनो, वली प्रभुजी तमे केहवा छो ? जे स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावपणे अस्ति छो, ते अस्तिभाव कोइ वारें टलतो नथी. तेणें हे प्रभु ! तमें आत्मभावेँ रहो छो, पण कोइ वारें अपर केतां बीजा द्रव्यनो भाव केतां धर्म लेता नथी, माटे स्यात्अस्तिपणे छो, पोताना धर्म रहो छो, पर द्रव्यनो धर्म स्यात्नास्तिपणे छे, ते कोइवारें तेमें (तेमां) ते पणे परिणमता नथी, माटे स्यात्अस्तिनास्तिरूप छो. हवे इहां सप्तभंगी उपजे, ते कहे छे ? स्वद्रव्य ते पोताना गुण अने पर्यायनो समुदाय तथा स्वक्षेत्र, ते पोतानो अगुरुलघु स्वभाव विभागीकृत असंख्यातप्रदेशें, स्वकाल ते उत्पाद व्ययरूप प्रवर्तना, स्वभाव ते अनंता ज्ञानना पर्याय, अनंता दर्शनना पर्याय, अनंता चारित्रना पर्याय, अनंता अगुरुलघु पर्याय, तेणें स्यात्अस्ति ए पहलो भांगो थयो. २ परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावपणे स्यात्नास्ति ए बीजो भांगो. ३ तथा अस्ति, नास्ति, ए बे वस्तुधर्म रह्या छे, माटे स्यात्अस्ति, स्यात्नास्ति, ए त्रीजो भांगो थयो. ४ एहवो धर्म एक वस्तुमां एक समयें छे, अथवा वस्तुमध्येँ अनंता धर्म, वचनेँ गोचर नहीं एहवा अवक्तव्य छे, तेथी स्यात् कथंचित्पणे अवक्तव्यं ए चौथो भांगो थयो. ५ ते अवक्तव्यपणुं अस्ति-धर्मनुं पण छे, माटे स्यात्अस्ति अवक्तव्यं ए पांचमो भांगो थयो. ६ ते अवक्तव्यपणुं नास्तिधर्मनुं पण छे, ते माटे स्यात्-नास्ति अवक्तव्यं ए छठो भांगो. ७ एहवो वस्तुधर्म समुदाय

पर्यायपर्ये स्यात्अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यं ए पदार्थ धर्म
 छे ए सातमो भागो थयो. ए सामान्ये सप्तमंगी कही, तेमज
 नित्य तथा अनित्यनी सप्तमंगी, एक अनेकनी सप्तमंगी, व-
 क्तव्य तथा अक्तव्यनी सप्तमंगी तथा गुणपर्यायनी सप्तमंगी,
 तथा द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिकनी सप्तमंगी, एम अनंती सप्तमंगी
 वस्तुधर्म छे, ते सप्तमंगीये सर्व पदार्थ पोताना स्वभावने पल-
 टता नथी. ते कारणे हे प्रभुजी ! तुमें अस्तिनातिस्तपणे छो,
 स्वधर्मपर्ये रहो छो, परधर्म ग्रहण करता नथी. बली हे प्रभु !
 तमें केहेवा छो ? तो के चउद राजलोकना जेटला आकाशप्र-
 देश छे तेटला तमारा आत्मप्रदेश छे, पण ते असख्यात-
 प्रदेशनुं जे स्वरूप, पद्गुण हानिवृद्धिरूप, अगुरुलघुपर्यायनो
 तरतमयोग, विभागपर्ये रहेवुं. शृंखलाअवयवनी परे ज्ञानादि
 गुणोनुं अवस्थान चेत्र, चयोपशम काले कार्याभ्यासे तरतमता,
 तेहनुं स्वरूप कम्मपयडी विपे योगस्थान अधिकारें तथा
 वृहत्कल्पभाष्यमध्यं संयमश्रेणिअधिकारथी जाणजो तथाचायि-
 कभावे सर्वगुणनी सामान्यता, परंतु अगुरुलघुपर्यायनुं तारतम्य
 सदा छे, तेथी प्रदेशधर्म छे, अथवा सर्वगुण पर्याय तुल्य-
 विभागे असंख्यातप्रदेशपर्ये वेहेचाय पण कोइ वारे जूदा खं-
 डाता नथी, माटे अखंडरूप छो, एटले अमख्याता प्रदेशरूप
 अवयवता छे, पण भिन्न धाय नहीं, ते आश्चर्य जाणवुं ॥२॥
 ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

कार्यकारणपर्ये प्रणमे तहवो ध्रुव,
 कार्यभेदे करे पण अभेदी ॥
 कर्तृता परिणमे नव्यता नवि रमे,
 सकल वेत्ता थको पण अवेदी ॥ ३ ॥

अर्थः—वली उत्पादव्ययधर्म कहे छे. जीवद्रव्यने विषे जेटला गुण छे, ते सर्व पोतानुं कार्य करे छे, अने उपादानरूप कारण तेहीज कार्य थाय छे. इहां कोइ कहेशे जे पूर्वकालें कारण, पश्चात्कालें कार्य, एतो जमालीनो मत छे. जो कारणकाल, कार्यकाल भिन्न होय, तो कारणकाल विनाशें तदनंतर कार्यकालें कारण विना कार्योत्पत्ति थाय, अने कारण विना कार्य-मानतां अनेक दोष थाय, तेवारें घटें पट कार्य थाय पटें घटकार्य थाय, माटे कारण विना कार्य नथी. एटले कारणभाव, तथा कार्यभाव, ए वे एक समयें छे, ए जैननी श्रद्धा छे. श्रीविशेषावश्यकमध्ये घणुं वखाणुं छे, जो बाह्य उत्पन्न कारण कार्यविषे एक कालता छे, तो सहज अकृत्रिम कारण कार्यता एकसमयेज होय, तेमाटे जीवनो केवलज्ञानगुण, ते विशेषभाव सर्व जाणे छे. तिहां सर्वनुं जाणवुं; ते कार्य छे, अने ज्ञानगुण, जाणवा रीतें प्रवर्त्ते, ते कारण छे, तेहज समयें कारण कार्यपणे परिणमे छे. अने ज्ञानगुण पणे सदा ध्रुव छे तेम केवल दर्शनादि गुण अनंता छे, ते सर्व ए रीतें परिणमे छे, कारणता व्यय, तिहांज कार्यता उत्पाद, कार्यताव्यय, तिहांज कारणता उत्पाद, इम सर्व द्रव्यने विषे, उत्पादव्यय धर्म छे. इहां कोइ कहे छे जे उत्पादव्यय स्वतः नथी, परप्रत्ययी छे, एम कहे छे तेनी भूल छे, जे परप्रत्ययी धर्म, ते लक्षण न थाय, लक्षण ते स्वधर्मनुंज थाय, तिहां श्रीश्वेतांबरगणी तत्त्वार्थटीकाकारनी साख लखे छे ॥ अथ यौ व्याचक्ष्येते व्ययोत्पादौ न स्वतो व्योन्नः किंतु परप्रत्यया-ज्जायेतेऽवगाहकसन्निधानायत्तापुत्पादव्ययाविति तेषां कथमलोकाकाशेऽवगाहकाभावात् अर्द्धवैशसं च सतोलक्षणं लक्षणस्य

साध्याऽव्यापित्वं चेष्यते स्थित्युत्पादव्ययत्रयमिति अत्रोच्यते
य एवं महात्मानस्तर्कयति स्वबुद्धिवलेन पदार्थस्वरूपं तेऽत्र
निपुणतरमनुयोक्तव्याः कथमेतत् वयं तु विस्रसापरिणामेन
सर्ववस्तूनामुत्पादादित्रयमिच्छामः प्रयोगपरिणत्या जीवपुद्गला-
नामित्थ तावदस्मद्दर्शनमविरुद्धसिद्धांतसद्भावं अस्मदुक्तार्थानु-
गुणमेव च भाष्यकारेणाप्युच्यते ॥ ए वचन जोइ श्रद्धा यथार्थ
करवी, माटे हे प्रभुजी ! तमारा गुण, कार्यपणे परिणामे छे,
तेथी उत्पाद व्यय छे, अने गुणनो अभाव थतो नथी, ते ध्रुव-
धर्म छे, तेथी स्यात्नित्यं, स्यात्अनित्यं, ए स्वरूप छे, ते अ-
चरिज जेहवुं छे कालनी अपेक्षाये परपणो कहे तेहनें कहीये
जे कालतो पंचास्तिकायथी भिन्न नथी ते माटे परपणो श्याने
कहो छो. वली जीवद्रव्यमध्ये जेटला गुण छे, ते सर्व भिन्नपणे
पोतानुं कार्य करे छे, दर्शन ते देखवारूप कार्य करे छे, सम
कित ते निर्धारकार्य करे छे, चारित्र ते थिरतारूप कार्य करे
छे, अमूर्त्तगुण, अरूपीपणे कार्य करे छे, एम सर्व गुण पोताना
कार्यना कर्त्ता छे, एवो कार्यभेदे कहेतां जुदा जुदा पणे करे,
ते वस्तुमां अनेकता स्वभाव छे, तेथी भेद स्वभाव छे, पण
ते कार्यधर्मनुं कारण कोइ द्रव्यें तथा चेन्नं जुदुं थतुं नथी,
तेथी अभेदरूप छे. जेम सुवर्णमध्ये पीतता, गुरुता, स्निग्धता
ए कार्यभेदे त्रण धर्म पामीये छैये, परंतु केवारें भिन्न थाता
नथी. तिम जीवना अनंतगुण भिन्न भिन्न कार्य करे छे, परंतु
वस्तुधर्मे भिन्न नथी कार्य तो सर्व भेदे कहेतां भिन्नपणे करे
छे, पण अमेदी कहेता भेदरहित छे. वली प्रतिसमय कर्त्तृता-
पणे छे, एटले, पंचास्तिकायमध्ये चार अस्तिकाय ते अकर्त्ता
छे, अने एक जीवास्तिकाय स्वतंत्रकर्त्ता छे, ते स्वाधीनपणे

कारणावलंबी थइ कार्यने निपजावे, ते कर्त्ता, तथा जेम पर-
कार्य घट, तेनो कर्त्ता कुंभकार, तेम ज्ञानादि कार्यनो कर्त्ता
जीव छे, माटे कर्त्ततापणे परिणमे छे, पण कांइ नव्यपणे नथी
रमतो, एटले जे प्रतिसमयें पर्यायने करे, पण कांइ नवो नथी
करतो. अस्तिधर्म छे तेमज रहे छे, वली सकल कहेतां सर्व
द्रव्य छे तेहना गुणपर्याय, स्वभाव, तेना उत्पादरूप, व्ययरूप,
ध्रुवरूप, अतीत अनागत वर्त्तमानकाल सर्व त्रणे कालना वेत्ता
कहेतां जाण छो, ए सर्वने जाणो छो, पण अवेदी कहेतां पुरुष,
स्त्री, नपुंसकरूप वेद रहित छो, माटे वेत्ता थका पण वचनधर्म
अवेदी छो, ए अचरिज जाणबुं ॥३॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

शुद्धता बुद्धता देवपरमात्मता,
सहज निज भावभोगी अयोगी ॥
स्वपर उपयोगी तादात्म्यसत्ता रसी,
शक्ति प्रयुंजतो न प्रयोगी ॥ अ० ॥ ४ ॥

अर्थः—वली शुद्धता ते सकलपुद्गलरूप संकरता रहित,
बुद्धता कहेतां केवल ज्ञानदर्शनरूप संपूर्णबोधरूप छो, देव
कहेतां पोतानुं स्वरूप तेणें दिव्यति कहेतां रमणशील ते देव
कहियें, परमात्मता कहेतां पोतानो आत्मा ज्ञानावर्णादिकर्मथी
रहित छे, माटे परमात्मापणुं संपूर्ण भोगवो छो, परमात्मनि-
ष्पन्न जे आत्मा, ते भाव पाम्या छो, वली सहज कहेतां स्व-
भावना अकृत्रिम एवा निज कहेतां पोताना भाव ते ज्ञानादिक
अनंतधर्म तेहना भोगी कहेतां भोग आस्वादनवंत छो, वली
कहेवा छो ? के अयोगी कहेतां मन वचन कायारूप योग तेथी
रहित छो, अने क्षयोपशमी वीर्य, तेहने चलनपणे वर्त्ते, ते
योग कहियें, तिहां भाषावर्गणा, शरीरवर्गणा, तथा मनोवर्गणा,

ते जिहां अवष्टंभहेतु छे, ते द्रव्ययोग कहियें. अने जे अवष्टंभ ग्राहक वीर्यपरिणाम ते पहेलो परिणामन, बीजो अवलंबन, बीजो ग्रहणरूप, ए त्रय शक्तिने भावयोग कहियें, एहवु जे योग-परिणामन, तेथी रहित छो, कारण के योग जे छे ते आश्रव छे, अने सिद्ध आत्मा तो संपूर्ण सवरमयी छे, वली प्रभुजी तमें केहेवा छो ? जे स्व कहेतां पोतानुं आत्मतत्त्व तेहना उपयोगी कहेतां जाण तथा पर आत्मा ते बीजा अनंता जीव तथा सर्व पुद्गल, तथा धर्म, अधर्म, आकाश अने काल, ते सर्वना जाण छो, एटले स्व तथा पर ए वेना जाण पण तादात्म्य कहेतां तन्मयपणे रह्यो जे पोतानो सत्ताधर्म, तेहना रसी कहेतां रसीया छो, आस्वादी छो, एटले जाणंग स्व पर वेना छो, पण भोगी एक आत्मधर्मनाज छो. इहां कोइ कहेशे जे जाणग वेना छे तो भोगी वेना केम नथी ? तेने कहेवु जे परमाणमध्यें भोगधर्म नथी, माटे आत्मा परभावनो भोगी नथी स्वभोगीज छे, परचेत्रें रह्यो जे धर्म, ते भोगवाय नहीं, स्वचेत्री धर्म भोगवाय. वली प्रभु तमारी अनंती शक्ति छे, ते सकर्मा जीवनी सर्व शक्ति दवाणी छे, अने तमें माध्य साधक भाव करीने सर्व कर्मपडलने दलवे करीने सर्व शक्ति प्रगट करी छे, अने ते सर्व शक्तिनी भिन्न भिन्न प्रवृत्ति छे, ते सर्व शक्तिने प्रयुंजता छो, एटले सर्व कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ज्ञायकत्व, पारिणामिकत्व, ग्राहकत्व, आधारत्वादि शक्ति प्रवर्त्ते छे, पण कोइ शक्ति अणप्रवर्त्ती रहेती नथी, तथापि न प्रयोगी कहेतां शक्ति प्रवर्त्तावतां कोइ जातिनो प्रयोग कहेतां प्रयास उद्यम विकल्प करवो पडतो नथी, एटले सर्व शक्ति सहेजें प्रवर्त्ते छे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थगाथार्थः ॥

વસ્તુ નિજ પરિણતે સર્વ પરિણામિકી,
 ઇટલે કોઈ પ્રભુતા ન પામે ॥

કરે જાણે રમે અનુભવે તે પ્રભુ,

તત્ત્વસામિત્વ શુચિ તત્ત્વ ધાર્મૈ ॥ અ૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:—હવે ૧ નિત્ય, ૨ અનિત્ય, ૩ એક, ૪ અનેક, ૫ અસ્તિ, ૬ નાસ્તિ, ૭ ભેદ, ૮ અભેદ. इत्यादिक. अनंत-धर्म प्रभुमां छे, ते माटे परमेश्वरपणुं छे तेनी ऊलखाण करवाने कहे छे. जे नित्यानित्यादिक धर्म तो सर्व द्रव्यमां छे. एटले वस्तु केतां जीवादि पदार्थ ते निज परिणतिये केतां पोतानी स्याद्वाद परिणतिये सर्व केतां समस्त द्रव्य परिणामिकी केतां परिणामी छे. एटले नित्यानित्यादिक धर्मपणे सर्व द्रव्य परिणामी छे. पण तेथी कोइ परमेश्वरपणुं न पामे, सर्व द्रव्य साधारणधर्मी माटे एमां शी अधिकाइ ? एटले केतां एथी कोइ केतां हरेक द्रव्य, ते प्रभुता केतां मोटाइपणुं, न पामे केतां पामे नहीं, तो केम पामे ? ते कहे छे. करे केतां पोताना धर्मने कर्त्तापणे करे, एटले बीजा अजीवादि पांच द्रव्य ते सर्व उत्पाद व्यय ध्रुवपणे परिणामे छे, पण ते कर्त्ता नथी, अने जीवद्रव्य ते कर्त्ता छे, ते शा माटे ? जे बीजा सर्व द्रव्यना धर्म प्रतिप्रदेशें छे, अने ते प्रदेशें प्रदेशें प्रवर्त्ते छे, पण एक प्रदेशने बीजा प्रदेशनुं सहाय एम एकठुं प्रवर्त्तन नथी, अने जीवद्रव्यने प्रदेशें प्रदेशें धर्म अनंता छे, अने ते ते प्रदेशें रह्या प्रवृत्ति करे छे, पण ते सर्व प्रदेशें समुदाय मलीने एकठी प्रवृत्ति छे, माटे जीवद्रव्य कर्त्ता छे, तेथी स्व स्व धर्मने करे छे, ए कर्त्तापणुं ते ईश्वरता छे, तथा अजीवद्रव्यमध्ये पण अनंतागुण अनंतापर्याय छे, पण ते द्रव्य पोताना गुणने जाणता नथी, अने

आत्मा ज्ञानादिक अनंता आत्मगुण तथा अनंता परद्रव्य तेथी अनंतगुणा परगुण, ते सर्वने जाणे छे, माटे जाणपणुं ते असा धारण धर्म छे, तथा स्वचारित्रगुणें कगी आत्मा पोताना गुण ने विषे रमे छे, अने अजीवद्रव्य ते स्वधर्म रमी शकता नथी, तथा आत्मा स्वभाव धर्मने भोगवे छे, तेथी स्वरूपानुभवी छे, माटे जे कर्त्ता होय ते भोक्ता होय, पण जे कर्त्ता नथी, ते भोक्ता नथी, तेथी अनुभवधर्म ते आत्माने विषेज छे, माटे जे कर्त्ता ते ज्ञाता, जे चारित्री, जे भोक्ता, ते प्रभु केता तेने परमेश्वर जाणवो, एटले दर्शनांतरी परमेश्वरने अकर्त्ता कहे छे ते पण मिथ्या छे, अथवा परभावना कर्त्ता कहे ते पण मिथ्या, केम जे परमेश्वर निःकर्मा ते स्वभावना कर्त्ता, स्वभावना भोक्ता छे. हवे एम कहेतां संसारी तथा सिद्ध सर्व परमेश्वरपणुं पामे ? ते उपर कहे छे. तच्च केता वस्तुनो मूलधर्म, स्वामित्व केहेतां तेनुं स्वामिपणु ते परमेश्वरपणु, शुचि कहेता पवित्र, कर्म रहित निर्मल तच्च सिद्धतानु घाम कहेतां घर ते निष्पन्न सिद्धावस्था तेज परमेश्वरपणुं छे, वाकी सर्व संसारी जीव, सत्ताये परमगुणी छे, पण जेना गुण प्रगट थया, ते पूज्य जाणवा. माटे श्रीयशोविजयजी उपाध्यायें कह्युं छे ॥ गाथा ॥ जे जे अंशे रे निरुपाधिरुपणु, ते ते कहीयें रे धर्म ॥ सम्यगदृष्टि रे गुण-ठाणा थकी, जाव लहे शिवशर्म ॥ १ ॥ माटे जे परम पूज्य ते सिद्ध छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थ. ॥

जीव नवि पुग्गली नैपुग्गल कदा,

पुग्गलाधारं नाहीं तास रगी ॥

परतणो ईश नहि अपर ऐश्वर्यता,

वस्तुधर्म कदा न परसगी ॥ अ० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे जीवनो जे मूल धर्म छे, ते श्रीसुमतिनाथ अरिहंतने निपज्यो छे, ते कहे छे. जे जीव नवि पुगली कहेतां जीव ते कोइ वारें पुदली नथी, अनंतो काल संसारावस्थायें पुदलथी एकठो रह्यो, पण केवारें पुदलरूप थयो नहीं, तथा जीव ते पुदलनो आधार नथी, कारण जे क्षेत्रीद्रव्य तो आकाश छे, धर्म, अधर्म, जीव, पुदल, ए सर्व आकाशद्रव्य मध्ये रह्यां छे, पण जीवना प्रदेशें पुदलनुं रहेवुं, ते जीवनी भावअशुद्धताथी थयुं छे, केम जे सर्व संसारी जीवोने भोग तथा उपभोग गुणनो सदाकाल क्षयोपशम पामीयें, पण स्वभोगनी प्रगटता नथी तेथी परभोगी थयो छे, वीर्यातरायनो क्षयोपशम पामीयें ते वीर्य पण परानुयायी थयुं, तथा कर्ता, ग्राहकता, व्यापकता, भोक्तापणुं सदा निरावरण छे, अने कार्य, ग्राह्य, व्याप्य, भोग अवराणां छे, तेथी पुदलग्राह्य, पुदलानुयायी प्रवृत्ति ते कार्य, पुदलभोगपणें तेहना वर्णादिकमां व्यापक थयो, पुदलने ग्रहे छे, पछी जेने भोगव्यो तेनीज होंश उपजे, एटले पुदलनो रुचि ते फरी पुदलने ग्रहे, तथा भोगवे, तेथी आत्मप्रदेशें पुदल रह्या छे, आत्मप्रदेश ते स्वगुणपर्यायनुं क्षेत्र छे, पण परपुदलद्रव्यनुं क्षेत्र नथी, तथा मूलवस्तुधर्में पुदलनो रंगी नथी, स्वधर्मना आस्वादन विना ए पुदलनो रंगी थयो छे, पण वस्तुरीतें विचारतां एने पुदलथी श्यो संबंध छे ? वली आत्मा परभावनो स्वामी नथी, परभावे एनी ऐश्वर्यता कहेतां ठकुराई नथी, एटले वस्तुधर्में कदा कहेतां कोइ वेला परवस्तुनो संगी नथी, जीवद्रव्यनो सत्ताधर्म एहवो छे, माटे माहारो सुमतिनाथ परमेश्वर शुद्धदेव, ते पुदलनो आधार तथा रागी केम होय ? सर्व पुदलातीत छे ॥ ६ ॥

संग्रहे नहीं आपे नहीं परभणी,
 नवि करे आदरे न पर राखे ॥
 शुद्धस्याद्वाद निजभाव भोगी जिके,
 तेह परभावने केम चाखे ॥ अ० ॥ ७ ॥

अर्थ.—वली सुमतिनाथ परमात्मा केहेवा छे ? जे परभणी कहेतां परवस्तु भणी माहारापणे संग्रहे नहीं, ते परवस्तु कोइ बीजाने आपे नहीं, परवस्तुने करे नहीं, परवस्तुने आदरे नहीं, परवस्तुने परिग्रह धनपणे राखे नहीं, ए शुद्धद्रव्यनो धर्म छे. तथा शुद्ध कहेतां निर्दोष, स्याद्वाद कहेतां अनतधर्मात्मक, निज कहेतां पोतानो, भाव कहेता धर्म, अनंत ज्ञान दर्शनादिक, तेहना जे भोगी आस्वादी एटले स्वभोग्यना जे भोगी थया, ते परभाव जे रागद्वेषादिक अथवा पुद्गलवर्णादिक, तेहने निष्पन्नपरमात्मा केम चाखे कहेतां आस्वादे ? माटे परमात्मा ते परभावने चाखे नहीं, स्वरूपभोगीज होय ॥ ७ ॥ इति

ताहरी शुद्धता भास आश्चर्यथी,
 उपजे रुचि तेणें तत्त्व ईहे ॥
 तत्त्वरंगी थयो दोषथी उभग्यो,
 दोषत्यागे ढलें तत्त्व लीहे ॥ अ० ॥ ८ ॥

अर्थ:—हवे साधन धर्म कहे छे. तिहां श्रीसुमतिनाथ पोतें मुक्त थइ कृत कृत्य थया, ते परजीवनी मुक्तिना कर्त्ता नहीं, तो शा वास्ते स्तवो छो ? नमो छो ? त्या कहे छे, जे ताहरी कहेता हे प्रभु ! तुमारी शुद्धता, निःकर्मता, अनंतगुण प्रगटता, तेहनुं जेवारें भासन कहेता जाणपणुं थाय, ते जेम जेम गुणनी घोषणा करे, तेम तेम गुणनुं भासन थाय, तेथी आश्चर्यता उपजे, जे अहो प्रभुनुं ज्ञान ! त्रय लोकगत पद्द्रव्य

त्रण काल परावृत्ति सहित एक समये जाणो, तेमज अहो प्रभुनुं दर्शन ! अहो प्रभुनुं चारित्र ! सकल पुद्गल अभोगी ! अहो परमानंद ! इत्यादिक आश्चर्यथी आश्चर्य उपजे, तेथी पोताने तेहवी परमात्म दशा निपजाववानी रुचि उपजे, ईहा उपजे. पछी ते मोक्षरुचि जीव विचारे जे केवारें माहारो आत्मा कर्म-रहित थाय ? केवारें माहारो शुद्ध पारिणामिकभाव प्रगटे ? केवारें माहारा गुण हुं भोगवुं ? अने अनंता जीवोनी एंठ जे पुद्गल तेने तजी पोतानो धर्म हुं केवारें भोगवीश ? एहवी रुचि उपजे. पछी ते रुचिवंत जीव तत्त्वनी ईहा-करतां काल गमाडे, ते जेम जेम तत्त्वनी ईहा करे, तेम तेम तत्त्वनो रंग प्रगटे, जेम जेम तत्त्वनो रंगी थाय, तेम तेम राग, द्वेष, अटार पापस्थानादि दोषथी उभगे. केहेतां निवृत्ते, तेम ढले केहेतां ते पणे परिणामे, तत्त्व लीहे केहेतां तत्त्व मागें एटले स्वभावपरिणामी थाय. ए सर्व कार्य प्रभुप्रत्ये अवलंब्यां थाय ॥ ८ ॥

शुद्धमार्गे वध्यो साध्यसाधन सध्यो,

स्वामिप्रतिच्छंदें सत्ता आराधे ॥

आत्मनिष्पत्ति तेम साधना नवि टके,

वस्तु उत्सर्ग आत्म समार्धे ॥ अ० ॥ ९ ॥

अर्थः—ए रीतें पारिणामिकपणे समर्थो ए आत्मा, शुद्ध मोक्षसाधनमार्गे वध्यो, साध्य जे पोतानो परमात्मभाव, तेहना साधननो उपाय सध्यो थको स्वामी जे श्रीसुमति जिन, तेहने प्रतिच्छंदें केहेतां तेहना जेवी पोतानी सत्ता छे, तेने आराधे केहेतां निपजावे, प्रभुजी जेवी सत्ता प्रगट करे. निः-कर्मा निर्मल शुद्धानंद पद भोगवे. पछी आत्मा जेम जेम निष्पत्ति केहेतां निपजे तेम तेम साधना केहेतां कारणपणुं टके

नहीं, एटले जेम कार्य निपजे, तेम कारणता टले, कार्यान्वयी कारण छे, कारण कांह वस्तुधर्म नथी, जे वस्तु कार्यने सन्मुख थाय, ते कारणपणे परिणमे, जेम कार्य निपजे, तेम तेनी कारणता ध्वंस पामे, एम आत्मसिद्धें साधना नवि टके, जेवारें वस्तु कहेतां जीवपदार्थ, उत्सर्गरीतें सपूर्ण आत्मा पोतानी समाधि परमानंद पामे, तेवारें कारणता रहे नहीं, सिद्धपणे वस्तुनो मूलधर्म प्रगटे, तेवारें साधनपणु रहे नहीं ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

माहरी शुद्ध सत्तातणी पूर्णता,

तेहनो हेतु प्रभु तुंही साचो ॥

देवचंदें स्तव्यो मुनि गणें अनुभव्यो,

तत्त्वभक्तें भविक सकल राचो ॥ अ० ॥१०॥

अर्थः—माटे हे प्रभुजी ! माहरी शुद्ध निर्मल आत्म-सत्ता, तेहनी पूर्णता कहेतां सपूर्णता तेहनो हेतु केहेतां निमित्त कारण हे प्रभु तुंहीज साचो छो, तमारा जेवा शुद्धदेवतु निमित्त पाभ्या विना माहारो निर्मळ मोक्ष केम निपजे ? सर्व जीवनी एहीज परिणति छे, जे निमित्तावलंबी थइ, उपादानावलंबी थाय, देव जे चार निकायना, तेहमां चंद्रमासमान वडेरा तेणें स्तव्यो, तथा मुनि जे निर्ग्रथ मोक्षाभिलाषी तेणें अनुभव्यो, तेहना गुणतु आस्वादन कर्णु, एहवो जे अरिहत देव, तेनी तत्त्वरूप जे भक्ति, एटले वस्तुगत गुणनी बहुमानता, तेना उपर सर्व आत्मार्थी जीवो तमें राचो, मग थाओ ॥ १० ॥ इति दशम गाथार्थः ॥ इति श्रीसुमतिजिन स्तवनं ॥

॥ अथ षष्ठ श्री पद्मप्रभजिन स्तवनं ॥

॥ हुं तुज आगल शी कहुं केसरिया लाल ॥ ए देशी ॥

श्रीपद्मप्रभ जिन गुणनिधि रे लाल,

जगतारक जगदीश रे ॥ वालेसर ॥

जिन उपगारथकी लहे रे लाल,

भविजन सिद्धि जगीश रे ॥ वा० ॥ १ ॥

तुज दरिसण मुज वालहो रे लाल,

दरिसण शुद्ध पवित्त रे ॥ वा० ॥

दरिसण शब्द नयें करे रे लाल,

संग्रह एवंभूत रे ॥ वा० ॥ तु० ॥२॥ ए आंकणी ॥

अर्थः—हवे श्री पद्मप्रभजीनना निमित्त कारणनी कारणाता यथार्थरूपे स्तवे छे. श्रीपद्मप्रभु गुणना निधान छे, जगतारक कहेंतां जगत्ने विषें मोक्षार्थी जीव तेहना तारक छे, गुणाधिक छे, तेमाटे जगत्ना ईश कहेतां स्वामी वडेरा छे, जिन उपगारथी लहे कहेतां पामे, भव्यजीव सिद्धि कहेतां मोक्षरूप जगीश कहेतां संपदा पामे, हे प्रभु ! ताहरा दर्शनमां कारणरूप ताहरी मुद्रानुं जे देखवुं, ते उत्कृष्ट कारणरूपे तहारुं दर्शन कहेतां शासन, उपादान कारणपणे दर्शन केतां सम्यक्त्व ते मुजने वालहो केतां इष्ट छे, हे प्रभु ! ताहरुं दर्शन जे सम्यक्त्वतत्त्वरुचिरूप ते शुद्ध छे, पवित्र छे, जो आत्माने स्वरूप निर्धार, स्वरूप रुचिरूप प्रगट्यो, तो आत्मा मोहमल्लथी रहित थाय, माटे परम पवित्र छे ॥ उक्तं च ॥ सम्मत्तेणं सुद्धो सच्चसु किच्चो हवइ सिवहेऊ ॥ संवरबुड्ढी तह निजरा य, धम्ममूलं च सम्मत्तं ॥ १ ॥ मूलं दारं पइठाणं, आहारो भायणं

निहि ॥ दुसुकं साविधम्मस्स, सम्मत्त परिकित्थियं ॥ २ ॥ वली दर्शन कहेतां हे प्रभुजी । ताहरुं देखवुं अथवा शुद्धश्रद्धा ते जे जीव शब्दनये करे, ते जीवनो जे सर्वजीव संग्रहनये सिद्ध समान छे. ते जेवारें पोताना सर्व आवरणक्षय करी सपूर्ण सिद्ध थाय, तेवारें एवंभूतनये सिद्ध कहियें. ते माटे संग्रह ते एवंभूत थाय, इहां नयनु स्वरूप संचेप कहियें छैयें. “ सत्ताग्राही संग्रहः ” वस्तुनी सत्ताने ग्रहे, ते संग्रहनय कहियें अने वस्तुना नाम पदनो जे अर्थ, तेपणे परिणाम्यो, वेद्य सवेद्यपदे भावनिचेपें ते शब्दनय कहियें. वली सकलपर्यायपरिणामिकतारूप प्रगटपणे संपूर्ण वस्तु, ते एवंभूत नय कहियें. एटले ताहरुं दर्शन जे देखवुं, ते अंतरंग अरिहंतना स्वरूपभासन आस्वादन सहित प्रभुतानु अवलोकन ते शब्दनये प्रभुनुं देखवुं थयुं. १ योगनी चपलता, तथा उपयोग अन्यकार्यनो, मात्र एकलुं चक्षुइंद्रिये करी प्रभुमुद्रानुं जोवुं, ते नैगमनये प्रभु दीठा. ३ वंदन, नमन, आशातना वर्जनपणे जे प्रभुमुद्रा तथा प्रभुना शरीरनुं देखवुं, ते व्यवहारनये प्रभु दीठा. ४ योग तथा विकल्परूप उपयोग प्रभुना गुणनो, अने सर्वइंद्रिये प्रभुने जोवे, स्तवे, एकाग्र करे, चपलता मटावे, तथा हर्ष सहित प्रशस्तरागनी मुख्यताये जोवे स्तवे ते रुजुसूत्रनये प्रभु दीठा. ५ अंतरंग परिणाम परिणति चेतनानु आकर्षण तथा श्रीवीतरागनी वीतरागताये योग मर्व प्रभुमुद्रा, तथा प्रभुनुं शरीर तिहा बलग्या. अंतरंग आत्म-सत्ता प्रगट करवारूप साध्यरुचि थयो थको प्रभुतानुं तत्त्वसं पदारूप अवलोकन ते शब्दनये प्रभुजी दीठा. ए रीतें श्री प्रभुजीने देखे, ते नियमा स्वसत्ता प्रगट करे, माटे ए निमित्त कारणरूप प्रभुदर्शन जाणवुं. एम सम्यक्त्वना पण नय करीने

शब्दनयें जे शुद्ध श्रद्धारूप समकित ते संसारी जीवनी सत्ता प्राग्भावनुं कारण छे ॥ १ ॥ २ ॥

बीजें वृत्त अनंतता रे लाल,
पसरे भूजल योगरे ॥ वा० ॥

तिम मूज आतम संपदा रे लाल,
प्रगटे प्रभु संयोग रे ॥ वा ॥ तु० ३ ॥

अर्थः—हवे कारणकार्य भाव कहे छे. जेम बीज होय तेमां अनंता वृत्त उपजवानी छती छे, पण भू कहेतां माटीमां नाखे, तथा जल कहेतां पाणी सींचे, एवो संयोग मले, तेवारें ऊगे, एटले माटी तथा पाणीना संयोगें वधे, ए रीत छे, जेम उपादानधर्म ते निमित्तकारण विना प्रगटे नहीं. ए रीतें माहारी आत्मसंपदा यद्यपि सत्तारूपें छती छे पण जेवारें प्रभु श्रीवीतराग देव शुद्धस्वरूपीनो योग मले, तेवारे प्रगटे ते आलंबी तत्त्वने आलंबने वत्ते, तो ते निपजे, एम महारे आत्माविषे सत्ता सर्व छे पण श्री अरिहंतरूप निमित्त मले, तेवारें सिद्धि नीपजे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

जगतजंतु कारज रुचिं रे लाल,
साधे उदर्यें भाण रे ॥ वा० ॥

चिदानंद सुविलासता रे लाल,
वाधे जिनवर ज्ञाण रे ॥ वा० ॥ तु० ॥ ४ ॥

अर्थः—सर्व जगत्वासी जीव आहार, विषय, परिग्रह मेलववारूप कार्यना रुचि कहेतां अभिलाषी छे. एटले पोत पोताना कार्य करवा रूप परिणाम सर्व जीवोने छे, पण सूर्य उद्योतरूप निमित्त पाम्या विना कार्य करी शके नहीं. सूर्य

उद्योतरूप निमित्तकारण पाभे, तेवारें सर्वलोक कार्य करवा लागे, ए रीत प्रगट देखाय छे, तेम माहारी आत्मा चिद् कहेतां ज्ञान, आनंद कहेता अन्व्याबाधसुख अथवा सकलज्ञेय ज्ञायकता रूप जे ज्ञान तेहनो जे आनंद, तेने चिदानंद कहियें. तेनी सुविलासता कहेतां शुद्धपणे विलास एटले भोगवचुं, ते आत्मानंद भोगीपणुं ते यद्यपि सत्तानेविषे छतुं छे, तो पण जेवारें श्रीजिनराजनो वर कहेतां प्रधान अनुष्ठानदोष, तथा एकांत दोष, तथा अर्थापत्तिदोष रहित ध्यान करियें, तेवारें आत्मानंद प्रगटे, उपादान छे पण हे प्रभु ! तमारा जेवुं निमित्त मले प्रगट थाय. माटे माहारे प्रभुसमान उपकारी कोह नहीं, ते कारणें हे परमेश्वर ! ताहरु दर्शन मने व्हालुं छे, जे अनंता भव भमतां न पाभ्यो ते जो मले, तो माहरुं अंतरंगनु अनंतु अनंतु अनंता कालनुं दरिद्र जाय ॥ उक्तं च ॥ नूनं न मोह-तिमिरावृतलोचनेन, पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ॥ मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्थाः प्रोद्यत्प्रबधगतयः कथमन्य-थैते ॥ १ ॥ एटले प्रभुनुं दर्शन दुर्लभ छे, ते तेहनी प्राप्तिना अर्थी जे जीव, तेने इष्ट होय ॥ ४ ॥

लब्धि सिद्ध मंत्राक्षरें रे लाल,
उपजे साधक संग रे ॥ वा० ॥

सहज अध्यातम तत्त्वता रे लाल,
प्रगटे तत्त्वीरग रे ॥ वा० ॥ तु० ॥ ५ ॥

अर्थः—वली दृष्टांत कहे छे. जेम आकाशगमन प्रसुर लब्धियो तेनी जे सिद्धि ते विद्याशक्ति मंत्राचरमां छे, पण ते तेहवो उत्तर साधक मले, तेवारें नीपजे, तेम सहज स्व-

भावरूप जे अध्यात्म कहेतां आत्माथी तन्मयपणे रही, जे स्याद्वादरूप ज्ञानदर्शनादिक आत्मिकपरिणतिरूप तत्त्वता, ते यद्यपि वस्तुधर्मे आत्माने विषे छती छे, पण जेवारें निष्पन्न-तत्त्वी शुद्ध निर्मल, निरावरण, आत्मस्वरूपभोगी, आत्मरमणी आत्माश्रयी, असंख्यात प्रदेश पुद्गलसंश्लेषरहित, एवा शुद्ध-देवने आलंबने एक रंग करे, तेवारें ज्ञानावरणादि कर्मथी रहित निरावरणरूप प्रगट भावनुं छतापणुं नीपजे ॥ ५ ॥

लोह धातु कांचन हुवे रे लाल,

पारस फरसन पामि रे ॥ वा० ॥

प्रगट अध्यात्मदशा रे लाल,

व्यक्तगुणी गुणग्राम रे ॥ वा० ॥ तु० ॥ ६ ॥

अर्थः—त्रीजो दृष्टांत कहे छे. लोहधातुमध्ये कांचन कहेतां सुवर्ण थवानी सत्ता छे, तोपण पारस पाषाण प्रमुख बाह्य निमित्त पामीने पोतानुं सोनापणुं लहे छे. तेम भव्य जीवनी पण शुद्ध आत्मिकदशा यद्यपि सत्तारूपे छे, पण व्यक्त कहेतां प्रगट कर्मावरण रहित जे गुणी अरिहंत तेहना गुण-ग्राम करतां, स्मरण करतां आपणो आत्मा गुणानुयायी थइ, संपूर्ण गुणीपणुं पामे तेवारें सत्ता प्रगटे. इहां कोइ पूछशे जे निमित्त विनाज सिद्धपणुं केम न पामे ? तेने उत्तर कहे छे. जे आत्मा अनादिनो पुद्गलरूप परनिमित्त पामीने बंधपद्धति करे छे, ते जो पुद्गलरूप परनिमित्त मूके, तो मुक्त थाय, ते पुद्गलरूप परनिमित्त तो अरिहंतरूप शुद्ध निमित्तने अवलंब्या विना टले नहीं. माटे श्री वीतरागदेवरूप शुद्ध निमित्त पामेथी, आपणुं तत्त्व प्रगटे ॥ ६ ॥

आत्मसिद्धि कारज भयी रे लाल,

सहज नियामक हेतु रे ॥ वा० ॥

नामादिक जिनराजनां रे लाल,

भवसागर महासेतु रे ॥ वा० ॥ तु० ॥ ७ ॥

अर्थः—ते माटे आत्मसिद्धिरूप जे कार्य, ते करवाने सहज अकृत्रिम नियामक केतां निर्धार, हेतु केतां कारण जे श्रीवीतराग देव तेने पामीने निश्चै भव्य जीवने मोक्ष नीपजे, ए निर्धार थयो. नामादि केतां नामनिक्षेपादि ते अरिहत एहवुं नाम तेने श्रवणें, उच्चारणें, स्मरणें करी पण अनेक जीव गुणावलंबी थइ समकित प्रमुख गुण पामीने सिद्ध थया. तथा श्रीअरिहंतनी स्थापना जे मुद्रा समतानो समुद्र, विषयविकार रहित, अतिशयसंपन्न, एवी जिनथापना देखी योग थमें गुणीने अवलंबें, स्वगुणावलंबी थइ अनेक जीव सिद्धि पाम्या, तथा श्रीपरमप्रभुनो द्रव्य निक्षेपो ते विचारतां शरीरधारी जिनराज, तेहना विचहार उपदेश समवसरण देखी अद्भुतताने अलंबी, गुणावलंबी थइ अनेक जीव स्वधर्मसपदा वरी सिद्धि पाम्या, तथा अरिहतनो भावनिक्षेपो ते अरिहंत द्रव्यना गुण जे केवलज्ञानादि, तथा पर्याय ते अगुरुलघुतादि तेहनी अनंत परिणतिनु जे भामन, श्रद्धान तथा रमण केतां पोतानुं तच्च, तेने अवलंबतां अनेक जीव मोक्षरूप लक्ष्मी पाम्या, माटे ए श्री अरिहतना जे नामादि चार निक्षेपा छे, ते भवरूप महा समुद्रमध्ये सेतु केतां मोहोटी पाज ममान छे. माटे प्रभुना नामादि चार निक्षेपाने अवलंबीने आत्मसिद्धि करवी ॥ ७ ॥

स्थमन इन्द्रिय योगनो रे लाल,

रक्तवर्ण गुण राय रे ॥ वा० ॥

न्यस्तसमस्ताभ्यां सप्तैव भंग्यः संभवन्ति न पुनरनन्तास्तत्कथ-
मनन्तभंगीप्रसंगादिसंगतत्वं सप्तभंग्याः समुद्भाव्यते कुतस्तथैव
भंगाः संभवन्तीत्यत्राहुः । प्रतिपर्यायं प्रतिपद्य तु पर्यनुयोगानां
सप्तानामेव संभवादिति अनन्तधर्मापेक्षया सप्तभंगीनामानन्त्यं
यदा याति तदभिमतमेव ॥

एटले वस्तुविषे धर्म अनन्ता छे, इहां कोइ कहे जे धर्म
तथा गुणवस्तु जुदी छे, ते अजाण छे, केमके नाम भेद
अंशभेदपणुं तो शब्दादिक नय सर्व माने छे, घट कुंभादिकने
विषे एक वस्तुना स्वमयीपर्यायमां पण नामभेदे भेद कहे छे,
ए रीते गुणशब्द तथा धर्मशब्दनो भेदार्थ छे, पण विशेष रीते
गुण अने धर्म ए बेहु एकज छे, श्रीविशेषावश्यके “ जह सो
विसेस धम्मो, चेयण तह मया किरिया ” इहां चेतनागुणने
धर्म कही बोलाव्यो छे.

वली भाष्यने विषे । आह ननु गुणस्वभावशोरभेदेएव
तद्भेदनिबंधनधर्मभेदाभावात् ॥ इत्यादि ॥ हवे भेद गुणना
भांखीजे, तिहां अस्तिकता लहिये जी ॥ ए पाठ द्रव्यगुणपर्या
यना रासमां यशोविजयजी उपाध्याये पण अस्तिकता धर्मने
गुण कही बोलाव्यो छे. वली सिद्धांतमां पण उपयोगादिक
अव्यावाध तथा अन्नेआदिक अनेक गुण कह्या छे, तथा
तत्त्वार्थमां मुक्त आत्मा निष्क्रियः तथा क्षायिकसम्यक्त्ववीर्य-
सिद्धत्वदर्शनज्ञानैरात्यंतिकैः संयुक्तोनिर्द्वैदेनापि सुखेन तथाऽ-
स्तिकायत्वगुणवत्त्वानादित्वासंख्येयप्रदेशवत्त्वानित्यत्वादयः सं-
त्येव जीवस्य.

यद्यपि भगवती सूत्रमां सिद्धने अवीर्या तथा अचारि-
त्रीया कह्या छे. तेतो करणरूप चलवीर्यनी अपेक्षार्ये कह्या पण

तेहीज श्रीअनुयोग द्वारमां चायिकलब्धि अधिकारें तथा पन्न-
वणासूत्रमां वीर्य ते जीवलक्षण छे एम कह्यु छे. तथा चारित्र
प्रवृत्तिरूपनी ना छे, पण स्थिरतारूप चारित्र ते तो जीमनुं
स्वलक्षण छे, ते उत्तराध्ययनना अठ्यावीशमा अध्ययनथी
जोबुं, तथा वसुदेवहिंडमध्ये, वली श्रीपालचरितमध्ये सिद्ध-
स्तुति अधिकारें कह्युं छे ॥ गाथाः-जे शंत गुणा दुगुणा, इग-
तिस गुणा य अहव अट्ट गुणा ॥ सिद्धाणंत चउका, ते सिद्धा
दित्तु मे सिद्धि ॥ १ ॥ तथा बृहत्कल्पभाष्ये ॥ दब्बेण जीवद-
ब्बं, संखातीतपदे समोगाढं ॥ काले अणाइण्हणा, भावेणा-
याइया शंता ॥ १ ॥

एम द्रव्यार्णव तथा आप्तमीमांसादिक अनेक ग्रंथोमां
कह्युं छे, माटे आत्मानी जेवारें भेदव्याख्या करियें, तेवारें गुण
अनंता, एक एक गुणने विषे अविभाग अनंता, एक एक अ-
विभागने विषे अनता पर्याय, ए कम्मपयडीने विषे व्याख्या
देखाय छे, अने तेज अविभाग तथा पर्यायनुं एकपणु पण
श्रीभगवतीनी टीकामा देखाय छे, अने संक्षेप व्याख्यायें गुण-
पर्याय वेहुने एक पर्यायास्तिक कही बोलाव्या छे. एम मनि-
विभ्रम टालीने श्रद्धा राखवी, इहां श्रीपरिहंत द्रव्यने विशेषें
ओलखाववा निमित्तें गुणगुणनी जुदी जुदी व्याख्या जणाववा
माटे तथा पोतानी मत्तानी रुची प्रगट करवा माटे गुणगुणनो
जुदो जुदो धर्म कही स्तवना करियें छैयें. ए प्रशस्ति थइ.

हो सुदर तप सरिखु जग को नहीं ॥ ए देशी ॥

श्री सुपाम आनंदमें, गुण अनंतनो कंद हो ॥ जिनजी ॥
ज्ञानानंदें पूरणो, पवित्र चारित्रानंद हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थः—श्री सुपार्श्वप्रभु आनंदमयी छे. शुद्ध आनंद ते एने विषे छे, जेमांहे परनो भेल नथी, स्वरूप सुख छे, वली सुपार्श्वप्रभु केहवा छे ? के गुण जे सहभावी अथवा 'द्रव्याश्रिता गुणाः' एटले द्रव्य जे समुदाय तेहने आश्रि रखा ते गुण, पण तेमां अन्य गुणपणुं नहीं, गुणमध्ये तो पर्याय छे ॥ सव्वे सपज्जवा गुणा इति ॥ कल्पभाष्यवचनात् ॥ तथा अपज्जावे जाणणा नत्थि ॥ इति आवश्यकनिर्युक्तिवचनात् ॥ माटे गुणने विषे पर्याय छे, पण गुणने विषे अन्यगुण नथी, श्री-नयचक्रमां कहे छे, जे गुणने विषे अन्यगुण पणुं होय तो गुण ते द्रव्यपणुं पामे, ते माटे गुण ते निर्गुण छे, एटले सुपास प्रभुरूप द्रव्य छे, ते ज्ञानादिक अनंत गुणनो कंद छे एटले मूल छे, तिहां ज्ञान जे आत्मानो विशेषावबोधरूप सकल विशेष धर्म गुणपर्याय, तेहनी अनंती परिणति तेहनो ज्ञायक नित्यानित्यादिक अनंत धर्मनुं ज्ञायकत्व, वेत्तत्व, अगुरुलघुत्व, अनंतपर्यायिनो पिंड, ते ज्ञानगुण. ते लोकालोक सकल प्रत्यक्षरूप सर्वप्रदेश निरावरणरूप तेहने आनंदे करी पावनो कहेतां पवित्र छे, पूर्ण छे. वली कषाय तथा पुद्गल फल आशारूप दोष रहित एवं स्वरूप स्थिरतारूप जे चारित्र, अनंतपर्यायात्मक, अकषायता, अवेदता, असंगता, परमक्षमा, परममादेव, परमनिर्लोभतारूप, स्वरूप एकत्वरूप पास प्रभु ! ताहारे विषे छे एटले चारित्रानंदमयी छो, ते माटे पवित्र निर्मल छो ॥१॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

संरक्षण विण नाथ छो,

द्रव्य विना धनवंत हो ॥ जि० ॥

कर्त्ता पद किरिया विना,

संत अजेय अनंत हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थ—वली हे प्रभु ! तमें संरक्षण विना नाथ कहेतां धर्णी छो, एटले कोई अन्य जीवनी तथा अन्यद्रव्यनी रखवाली करता नथी, केम जे संरक्षण पणुं करवुं, ए तमारो धर्म नथी, माटे कोइना तमें रक्षक नथी, पण शरण प्राण आधाररूप छो, मोक्षना हेतु छो, तेथी नाथ छो. वली द्रव्य जे धन, कचन, परिजन, गण, मांदिरादि, सर्व परिग्रह रहित छो, तो पण ज्ञानादि स्वगुण पर्यायरूप अनंतु धन, श्रीप्रभुनी पासे छे, माटे धनवंत छो, वली हे प्रभु ! तमारे विपे कर्ता पद, कहेतां कर्तापणुं छे, पण गमन परिसर्पणादिक क्रिया विना कर्ता छो, एटले बीजाने कर्तापणुं ते क्रियाथकी होय छे, अने तमे तो अक्रिय छतां गमन परिसर्पणादिक क्रिया विना पण कर्ता छो. मुक्तआत्मानिःक्रिय. एम तत्त्वार्थ-टीकामां कहुं छे. वली हे प्रभुजी ! तमे सत छो, उच्चम छो, तप्तपरिणाम रहित छो, अजेय कहेतां रागद्वेष परीसह वैरिणं करी अजेय छो, वली कोई कालें विणसो नहीं, माटे अनंत छो, अथवा अनतपर्याय माटे अनंत छो ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

अगम अगोचर अमर तुं,

अन्वय ऋद्धि समूह हो ॥ जि० ॥

वर्ण गंध रस फरम विणु,

निजमोक्ता गुणव्यूह हो ॥ जि० ॥ ३ ॥

अर्थ—वली हे प्रभु ! तमारुं स्वरूप तुच्छ ज्ञानी जाणी शके नहीं, माटे अगम छो वली हे प्रभु ! तमें इन्द्रिय अगोचर छो. वली आयुःकर्मना क्षयथकी प्राणवियोग थाय, तेने मरण कहियें, ते तमें प्राण तथा मरण रहित छो, माटे हे प्रभु !

तमें अमर छो, वली हे प्रभु ! तमें अन्वय कहेतां जे सह-
जना व्यापक पोताना ज्ञायकादिक गुण, तेनी प्रवृत्ति सहित
जे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यादिक गुण, अन्वयी गुण कहियें,
तेहीज ऋद्धि कहेतां संपदा तेहना समूह छो, अने कषायादि
दोषने टलवे करी जे अकषायादिक गुण उपना, ते व्यतिरेक
गुण कहियें, तथा सति सद्भावो एटले जे छते पामियें, ते
अन्वयी गुण कहियें, तेहनां समूह छो. वली वर्ण, गंध, रस,
फरस ते पुद्गलधर्म छे, तेथी तमें रहित छो, अने निज कहेतां
पोतानो जे स्वरूपधर्म, तेहना भोक्ता छो, गुणना व्यूह कहेतां
समूह छो ॥ ३ ॥ इति ॥

अक्षय दान अर्चितना,

लाभ अयत्नें भोग हो ॥ जिन० ॥

वीर्य शक्ति अप्रयासता,

शुद्ध स्वगुण उपभोग हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥४॥

अर्थ—वली हे प्रभुजी ! तमारा अनंत गुणनी प्रवृत्ति
केवी रीते छे ? ते कहे छे. वीर्यगुण ते सर्वगुणने सहकार
दिये छे, तेम ज्ञान गुणना उपयोग विना वीर्य स्फूरी शके
नहीं, तेथी वीर्यने सहाय ज्ञानगुणनुं छे, तथा ज्ञानमां रमण
ते चारित्रनुं सहाय छे, अने पररमण न करे, ते चारित्रने
ज्ञाननुं सहाय छे. एम एक गुणने अनंत गुणनुं सहाय छे.
हवे जे गुण सहाय दिये छे, ते तो आत्माना गुणमां दान-
धर्म छे, एम हे प्रभुजी ! तमें प्रतिसमय अनंत स्वगुणसहाय-
रूप दान ते अनंतुं द्यो छो, पण केवारें क्षय पामो नहीं.
बीजा जगत्मां दानना आपनार केटलेक कालें थइ जाय अने
तमें सादि अनंत काल स्वाधीन पणे स्वगुणरूप पात्रने

अनंतं दान अक्षयपणे घो छो, पण केवारे चीण न थाओ
 माटे अक्षय थका दान आपो छो. एहवो दानगुण तमारे विपे
 छे, अने जे गुणनी सहायरूप शक्तिनी प्राप्ति, ते लाभ
 छे, बीजाने जे चितवे, ते लाभ थाय ते पण निर्धार नहीं,
 अने हे प्रभुजी ! तमारे विपे चित्तना विकल्परूप जे लाभार्थीपणुं ते नहीं, तो पण लाभ अनंतो छे, माटे अणुचित्या
 लाभना धणी छो, एहवो लाभगुण छे. वली हे प्रभुजी ! तमें
 पोताना पर्यायने प्रतिसमयें भोगवो छो, पण प्रयास विना
 भोगवो छो, माटे तमे यत्नविना-प्रयत्नविना भोगमयीं छो,
 जीवना सर्व गुणनी जे प्रवृत्ति तेनु सहाय जे वीर्य, ते अनंतं
 अन्यसहाय विना स्फुरी रह्यु छे, पण ते वीर्यनी स्फुरणा, विना
 प्रयासें एटले उद्यम विना वीर्य स्फुरे छे, वली शुद्ध स्वगुण
 केता स्वाभाविक जे स्वगुण तेहनो उपभोग छे, ए पाच
 अतरायनी प्रकृतिना क्षय थयाथी पाच गुण प्रगट्या छे, एटले
 हे प्रभुजी ! तमने स्वरूपनुं दान, स्वरूपनो लाभ, स्वपर्यायनो
 भोग, स्वगुणनो उपभोग, स्वसर्वपरिणति सहकार शक्ति, ते
 वीर्य, ए रीतें धर्म प्रगट थया छे ॥ ४ ॥ इति ॥

एकांतिक आत्यतिको,

सहज अकृत स्वाधीन हो ॥ जि० ॥

निरुपचरित निर्द्वंद्व सुख,

अन्य अहेतुक पीन हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥५॥

अर्थः—वली हे प्रभुभी ! तमने जे सुख प्रगट्यां छे,
 ते सुख केहवा छे ? जे एकांतिक केतां एकलु सुख, जे
 पाछो दुःख पामे नहीं, वली आत्यतिको केतां जेथी बीजु
 वधारे सुख कोइ नहीं, एटले सर्वधी अधिक ते पण सहज

केतां स्वभावतुं अकृत केतां अणकीधुं पण कोदनुं करेलुं नहीं, वली ते पोताने स्वाधीन पोताने वश पण पराधीन नहीं. वली निरुपचरित केतां जे उपचाररूप नहीं, अछता आरोपने उपचार कहिये, ते ए सुखमां कांह उपचारपणुं नथी, संसारमां शातावेदनीनुं सुख, ते उपचरित सुख छे, केमके शातामध्ये सुखधर्म नथी, पण अज्ञान भूलें, संसारी आत्मा सुख मानें छे, पण वडेरा एने सुख कहेता नथी, जे संसाराभिनंदी मोहें मूढ परमार्थने अजाणता विषयगृद्ध थका इंद्रियदेहजनित विषयसुखने सुख माने छे, ते जाते सुख नहीं ॥ यतः ॥ विषयसुहं दुखं चिय, दुःख पडियारओ तिगच्छंन्व ॥ तं सुहमुवयाराओ, न उवयारो विणा तच्च ॥ १ । इति विशेषावश्यके ॥ तथा शातानो उदय ते पण स्वधर्मरोधक छे, अने पुद्गल कर्मनो विपाक छे माटे ते सुख नहीं ॥ सायासायं दुःखं, तन्विरहंमि य सुहं जउत्तेणं ॥ देहिंदियेसु दुःखं, सुखं देहिंदिया भावो ॥ इति ॥ १ । एम औदयिक सुख, ते सुख नहीं, अने जे सिद्धनिरुपम अनंत आत्मस्वभाव प्राग्भाव भोक्तापणे तेज सुख जाणवुं, वली निर्द्वंद्व कहेतां जेमाहे अन्य जीव तथा अजीव द्रव्यनो संयोग नहीं, एटले परवस्तुनो भेल नथी. कदापि परवस्तुनुं कारण पामीने उपनुं होय ? तिहां कहे छे. जे ते सिद्धसुख कहेवुं छे, के अन्य केतां बीजां द्रव्यनुं हेतुपणुं जेमां नथी. वली पौन केतां पुष्ट छे, प्रबल छे, माटे श्रीसुपार्श्वजिननुं जे आत्मिक सुख ते महानंद छे. ॥ ५ ॥ इति पंचम० ॥

एक प्रदेशें ताहरे,

अव्याबाध समाय हो ॥ जि० ॥

तसु पर्याय अविभागता,

सर्वाकाश न माय हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥६॥

अर्थः—वली हे प्रभु ! तमारा आत्माना एक प्रदेशने विषे अनंत गुण, अनंत पर्याय छे, तेमाहे हे प्रभुजी ! ता-हारे एक प्रदेशें जे अव्याबाध गुण समाह रह्यो छे, ते अनंतो छे, ते अव्याबाध सुखना पर्याय, तेना अविभाग ते केवलीनी प्रज्ञायें जेहना एक खंडना वे सड न थाय, तेने अविभाग कहियें, ते अविभाग लोक तथा अलोकाकाशना एकेका प्रदेशें एकेको सुखनो अविभाग राखियें, तोपण सर्वाकाश कहेतां लोक अलोक रूप सर्व आकाशमा समाय नहीं, एटले आकाशना प्रदेशधी पण तमारे एक प्रदेशें रह्युं जे अव्याबाध सुख, तेना अविभाग अनंतगुणा छे ॥ यतः ॥ खित्ताओ भाव-धम्मा अणंतगुणा ॥ इति ॥ सदा चेत्रधर्मधी भावधर्म अनंत गुणा छे ॥ ६ ॥ इति ॥

एम अनंत गुणनो धणी,

गुण गुणनो आनद हो ॥ जि० ॥

भोग रमण आस्वादयुत,

प्रभु तुं परमानंद हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥७॥

अर्थ—एम केहतां ए रीतें हे प्रभुजी ! तमें अनंत गुणना धणी छो, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अव्याबाध, अमूर्चता, अगुरुलघु, दान, लाभ, भोग, उपभोग, कर्ता, भोक्ता, पारिणामिकता, अचल, अविनाशी, अनंत, अज्ञ, अनाश्रयी, अशरीरी, अणाहारी, अयोगी, अलेशी, अवेदी, अरुपायी, अमंल्यप्रदेशी, अचल, अक्रिय, शुद्धमत्ताप्राग्भावरूप, नित्य, अनित्य, एक, अनेक, सत्, असत्, भेद, अभेद, मव्यत्व,

अभव्यत्व, सामान्य, विशेष, इत्यादि अनंत गुण पर्यायरूप धर्मना धरणी छो. ते गुणनो जुदो जुदो आनंद छे, तिहां दृष्टांत कहे छे. जेम संसारी जीवने धननुं सुख भिन्न छे, रूपनुं सुख भिन्न, भोजननुं सुख भिन्न, देखवानुं सुख भिन्न, स्थानकनुं सुख भिन्न छे, तेम सिद्ध आत्माने पण गुण गुणनुं सुख भिन्न भिन्न छे, तेथी अनंतो अनंत रीतें आनंद छे, एटला सर्व गुणनो आनंद छे, तै सर्वनो भोग पण छे, केम के भोगव्या विना आनंद थतो नथी, एटले अनंता गुणना आनंदनो भोग अनंतो छे, तेमज ते सर्व गुणने विषे अनंतुं रमण पण छे, तेम अनंतो आस्वाद पण छे, केम के अनंता गुणने आस्वादीने भोगी थयो थको आनंदने विलसे छे, माटे अनंतो आस्वाद पण छे, तेथी हे प्रभु ! तमें परमानंद छो. इहां गुणगुणीनो अभेद उपचार बोलाव्यो, जे परमानंदमयी तेहीज परमानंद, एहवा परम देव छो ॥७॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

अव्याबाध रुचि थई,

साधे अव्याबाध हो ॥ जि० ॥

देवचंद्र पद ते लहे,

परमानंद समाध हो ॥ जि० ॥ श्री०॥८॥

अर्थः—एहवुं परमानंदरूप अव्याबाध सुख श्रीपरमात्म-प्रभुने विषे छे, ते में निर्धार कर्यो, तेवारे जाण्युं के जेवुं अव्याबाध सुख श्री सुपार्श्व प्रभुने विषे छे, एहवुंज सुख माहारे विषे पण छे, एहवुं जाणपणुं प्रगट्युं, तेथी भव्य जीवने उपयोग आव्यो, जे हुं पण ज्ञानादि अनंत गुणी छुं, हवे माहारो शुद्धानंद भोग केवारें प्रगटे ? एहवा उपयोगें जे जीव ज्येष्ठ महिनामां जेम बपैयो वृषातुर थइने वरसादने

अभिलाषे वरते, तेनी परे जे जीव, अव्यावाध सुखनो रुचि,
 अभिलाषी थइने पुद्गलसयोगजन्य जे सुख तेतो विपभक्षण
 समान आत्मस्वरूपनां घातक जाणीने तेथी उभग्यो थको एक
 आत्मानंद केवारे प्रगटे ? एवो थको वर्त्ते, पछी तेहना साधक
 जे मुनिराज तेना चरण मेवतां उदासीन थइने साधे, केहता
 निपजावे, आत्मिक अव्यावाध सुख प्रत्ये एटले उत्तम जीव
 स्याद्वाद आगम श्रवण करी, पांच आश्रवथी विरमी, शुद्धसयमी
 थइ, देहनिस्पृही थको मोक्षने साधे ॥ उक्तं च ॥ यतः ॥
 पंचासव प्रिरत्ता, त्रिपय विजुत्ता समाहि सपत्ता ॥ राग दोष
 विमुत्ता, मुण्णियो साहंति परमत्थ ॥ १ ॥ आउस्स खीणमाण,
 सुप्पाणणियोगेवि जे समाहिपया ॥ सावय दड्ढवयावि हु, मु-
 ण्णियो साहति परमत्थं ॥ २ ॥ एहवा मुनिराज त्रिकाल विप-
 यना श्रवांछक, तत्तगवेपी, तत्त्वरसिया, तत्तानंदरुचि, पोतानुं
 तत्त अनादिनु कर्मसंगे दवाणुं ते प्रगट करवा माटे सकल
 पुद्गलभावथी विरक्त थइने जे आत्मा निपजावे छे ते जीव,
 निमित्तावलंबनी थइ स्वरूपावलंबन करतां स्वरूपमध्ये एकत्व
 पामीने क्षपकश्रेणि आरोहण करी घनघाति कर्म खपावीने
 सयोगी केवली थइ, पछी शैलेशीकरण करी निःकर्मा थइने
 देव जे धर्मदेव मुनिराज, तेमांहे चंद्रमा समान एहवुं अरिहत
 पद तेने ते जीव पामे, जेमां परमानंदनी समाधि छे, अने
 सकर्मरूप अवस्था ते महाव्याधि छे, माटे निरावरण निःकर्मा-
 वस्था ते परम समाधिरूप छे, ते अवस्था श्रीसुपार्श्व परमा-
 त्माने अवलंबतां जीव पामे. माटे श्रीसुपार्श्व प्रभुनी सदा
 सेवना करवी. एहीज आधार, त्राण, शरण छे ॥ ८ ॥

॥ अथ अष्टम श्री चंद्रप्रभजिनस्तवन ॥

॥ श्री श्रेयांसजिन अंतरजामी ॥ ए देशी ॥

श्रीचंद्रप्रभ जिनपद सेवा,
हेवार्ये जे हलिया जी ॥

आतमगुण अनुभवथी मलिया,
ते भवभयथी टलिया जी ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीचंद्रप्रभ भगवान्नी स्तवना कहे छे, अने सेवना पण ओलखावे छे, ते श्रीचंद्रप्रभनामा आठमा प्रभुनी पद केतां चरणनी सेवा अथवा अरिहंत पदनी सेवना, तेहनी हेवा केतां चाल-रीत, तेहमां जे हलिया केहतां तेवी टेवें पडया छे, तेहने प्रभुसेवन विना काल जाय नहीं, जेहने असंख्यात प्रदेशें श्रीप्रभु परमात्मा परमपूज्यनुं आराध्यपणुं छे, ते जीव आत्मा चेतनालक्षण असंख्यात प्रदेशें स्वधर्मना कर्ता, स्वधर्मना भोक्ता, पोताना गुण ज्ञानदर्शनादिक तेहनो अनुभव केहतां भोगववुं तेहथी मल्या छे, एटले आत्मगुणभोगी थया छे, तेज जीव भव केतां चार गतिरूप संसार तेहनो जे भय, जन्म मरण स्वरूपरोधक कर्माधीनतारूप, तेहथी टल्या छे, एटले यथार्थ रीतें जे परमात्माने सेवे, ते अवश्य असंसारी थाय. ते माटे टलवा योग्य थया ते टल्या. ए न्यार्ये, हर्षनुं वचन छे, जो कारण मळे, तो कार्य नीपजे, तेम उत्तम जीव अरिहंत सेवन परिणाम्या प्रभु मल्याना हर्षें संसार समुद्रने गोपदसमान माने छे ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

द्रव्यसेव वंदन नमनादिक,
अर्चन बली गुणग्रामो जी ॥

भाव अभेद ध्यातानी ईहा,
परमावै निःकामो जी ॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थः—ते सेवना चार प्रकारनी छे. १ नामसेवना, २ स्थापनासेवना, ३ द्रव्यसेवना, ४ भावसेवना. तेमां नाम तथा स्थापना, ए वे सेवना तो सुगम छे, अने द्रव्य निक्षेपाना बे भेद छे एक आगमथी द्रव्यनिक्षेपो, अने बीजो नोआगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तिहां जे आगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तेतो जे सेवना-पदनो अर्थ विधि जाणे, पण ते कालें ते अर्थनो उपयोग नथी, ते आगमथी द्रव्यनिक्षेपो कहियें । अणुवओगो द्रव्यं । इति अनुयोगद्वारवचनात् ” हवे बीजो नोआगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तेहना वली त्रण भेद छे. एक ज्ञशरीर, बीजु भव्यशरीर, त्रीजुं तद्रव्यतिरिक्त शरीर. तिहां जे जे सेवना भावरूपें परिणम्या हता, पण प्राणमुक्त थया, तेहनां शरीर, ते ज्ञशरीर द्रव्य-निक्षेपे छे. ए पहेलां भेद. तथा जे जीव हमणां तो सेवना-पणे परिणम्या नथी, पण अनागतकालें भावसेवनापणे परिण-मशे, ते भव्यशरीर द्रव्यनिक्षेपो कहियें, ए सर्व द्रव्यनिक्षेपो ते नैगमनयने मत्तें छे, ते बीजो भेद. तथा जे सेवनानी प्रवृत्ति अंतरंग भावसेवनाने कारणपणे चरते, ते तद्रव्यतिरिक्त द्रव्य-निक्षेपे सेवना कहियें. ए त्रीजो भेद कद्यो.

तेमांहे जे योगनी वंदन नमनादिक प्रवृत्ति, ते व्यवहार-नयें द्रव्यसेवना. अने जे अंतरंग विकल्पें बहुमानादिक, ते ऋजुसूत्रनयें द्रव्यसेवना. ए रीतें द्रव्यसेवनानुं स्वरूप कद्युं, एटले जे अरिहतना चार निक्षेपरूप कारण दृष्टिगोचर, श्रवण-गोचर, स्मरणगोचरपणु पामीने जे जीव, वंदन, करजोडन, नमन, मस्तक नमावहुं, इत्यादिक अभ्युत्थान अंजालि, आधि-

करवो, ते अपवाद कहिये. इहां सेवा मध्ये जे आत्मसाधन थयुं, ते उत्सर्ग अने ते आत्मसाधन निपजाववाने जे कारण अविलंब्यां जोइए, ते सर्व अपवादें जाणवुं. तेमां अरिहंतनी सेवना ते आत्मसाधननुं कारण छे, तेथी ए अपवाद सेवना छे, ते सात नये करी सात भेदें छे, ते सात नयनुं संक्षेपे स्वरूप बतावे छे.

१ अनेके गमाः संकल्पारोपांशाश्रयाद्या यत्र स नैगमः । जिहां अनेक नामादिक गमा ग्रहवाये तथा संकल्पे, आरोपे, अने अंशोपण वस्तुने माने, ते नैगमनय कहिये.

२ संगृहाति वस्तुसत्तात्मकं सामान्यं स संग्रहः । जे सर्वने संग्रहे, सर्वनुं ग्रहण करे, वस्तुनी छती सामान्यपणे ग्रहे, ते संग्रहनय कहिये.

३ संग्रहगृहीतं अर्थविशेषेण विभजतीति व्यवहारः । संग्रहनये ग्रहं जे सामान्य, तेहने अंश अंशभेदें जूदुं जूदुं वेहेंचे, ते व्यवहारनय कहिये.

४ ऋजु अतीतानागतवक्रत्वपरिहारेण ऋजु सरलं वर्तमानं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः । जे ऋजु सरल वर्तमान अवस्थानें ग्रहे, अतीत अनागतनी वक्रत्वताने लेखे नहिं, ते ऋजु सूत्रनय कहिये.

५ शब्दार्थरूपं तद्धर्मरूपपरिणतिः इति शब्दः । प्रकृति प्रत्ययादिक व्याकरण व्युत्पत्ति ए सिद्ध थयेलो शब्द, तेहमां जे पर्यायार्थ बोले, ते पणे परिणामे, वस्तुने वस्तु माने, तत्त्वार्थवृत्तौ शब्दवशादर्थप्रतिपत्तिरिति शब्दनयश्च शब्दानुरूपं अर्थमिच्छति । ते शब्दनय कहिये.

६ सम्यक् प्रकारेणार्थपर्यायवचनपर्यायतः सकलभिन्न वचन भिन्नभिन्नार्थत्वेन तत्समुदाययुक्ते ग्राहक इति समभिरूढनयः । जे वस्तुना विद्यमान पर्याय तथा जे नामना यावत् वचनपर्याय छे, ते सर्व शब्दें भिन्न छे. यथा घट कुंभ इत्यादि. जे शब्दें भिन्न तेहनो अर्थ पण तद्भावरूपपणे भिन्न छे, ते सर्व वचनपर्यायरूप परिणमती वस्तुने वस्तुपणे ग्रहे, ते समभिरूढनय कहियें

७ सर्व अर्थपर्यायें स्वक्रियाकार्यपूर्णत्वेन एव यथार्थतया भूतः एवभूतः ॥ सर्व अर्थपर्याय अनंता ते स्ववर्मे संपूर्ण पोतानी क्रिया कार्यपूर्ण जे वस्तुनो धर्म छे, ते तेम संपूर्णपणे थयो, ते एवभूत नय कहियें

इहा श्रीजिनभद्रगणित्तमाश्रमणै १ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र, ए चार नयने द्रव्यार्थिकपणे द्रव्यनिक्षेपे मान्या छे, अने शब्दादिक त्रण नयने पर्यायार्थिकपणे भावनिक्षेपे मान्या छे, तथा ऋजुसूत्रादिक चार नयने भावपणे कक्षा छे, तेनो आशय कहे छे जे वस्तुनी अस्तथा त्रण छे, १ प्रवृत्ति, २ संकल्प, ३ परिणति, ए त्रण भेद छे. तेमां जे योगव्यापार संकल्प, ते चेतनाना योग सहित मनना विकल्प, तेने श्रीजिनभद्रगणित्तमाश्रमण प्रवृत्तिधम कहे छे. तथा सकल्पधर्मेने उदैक मिश्रपणा माटे द्रव्य निक्षेपे कहे छे, मात्र एक परिणति धर्मेने भावनिक्षेपो कक्षो छे.

अने सिद्धसेनदिवाकरें विकल्प ते चेतना माटे भावनय गवेष्यो छे, अने प्रवृत्तिनी सीम, व्यवहारनय छे, अने संकल्प ते ऋजुसूत्रनय छे, तथा एक वचनपर्यायरूप परिणति ते शब्दनय छे, अने सकल वचन, पर्यायरूप परिणति ते समभि-

रूढनय छे, तथा वचन पर्याय अर्थ पर्याय रूप संपूर्ण ते एवं-
भूत नय छे माटे ए शब्दादिक त्रण ते विशुद्धनय छे, भाव-
धर्ममध्ये मुख्यभावने उत्तर उत्तर सूक्ष्मताना ग्राहक छे, ए रीतें
नयनो अधिकार संक्षेपें कह्यो. हवे ए साते नयें करी अपवाद
भावसेवनाना सात भेद कहे छे.

१ श्रीअरिहंतरूप स्वजाति अन्यद्रव्य तेहना स्वरूपने
चित्तववे जे चेतनानो अंश प्रभुना गुणने अनुयायी संकल्प
पहेलां केवारे न थयो हतो, ते संकल्पविषयादिकथी निवारीने
प्रभुगुणे जोड्यो, ए निमित्तावलंबीपणा माटे अपवाद अंतरंग
परिणाम ते भावसेवना संकल्परूप एक गमे माटे नैगमनयें अप-
वाद भावसेवना जाणवी. ए आत्मसिद्धि नीपजाववानुं कारणछे.

२ श्री अरिहंतदेवनी निष्पन्न असंख्यात प्रदेशें निरा-
चरण सर्व स्वशक्तिने चित्तववे पोतानी सत्ता पण तेहवी विचारे,
उभयनो तुल्यारोप करे, अने अणनिपनानो पश्चात्ताप करे,
निपनानुं परमात्मधर्मनुं बहु मान करे, तथा भेद कहेतां द्रव्यथी
क्षेत्रथी, कालथी, भावथी, श्रीप्रभुजी तथा माहरुं द्रव्य भिन्न
छे, अने सत्तासाधमें अभेद छे, एहवा सापेक्षपणे जे बहुमान
युक्त सत्ता प्रगट करवानी रुचिवंत एवो विकल्प ते संग्रहनये
अपवाद भावसेवना कहियें ॥ ३ ॥ इति गाथार्थः

व्यवहारें बहुमान ज्ञान निज,

चरणें जिनगुण रमणा जी ॥

प्रभुगुण आलंबी परिणामें,

ऋजुपद ध्यान स्मरणाजी ॥ श्री० ॥ ४ ॥

३ अर्थः—पोताना चयोपशमभावि जे ज्ञान, दर्शन,

वीर्यं, ते मध्ये प्रतिसमये भासन श्रीअरिहतनी शुद्ध स्वरूप संपदा, केवल ज्ञानादिक, अने उपकारसंपदा जे देशना धर्मकथन, ते शुद्ध उपकारीपणुं छे. तथा चोत्रीश अतिशय, पांत्रीश वचनातिशय, आठ प्रातिहार्यरूप संपदा, तिहांज उपयोग राखे अने केवारे श्रीप्रभुजीनी प्रभुता विसारे नहीं. बहुमानमध्ये श्रीवीतराग ते सर्वथी अधिक मोटापणे सद्दे, वीर्यं ते जिन-भक्तिने विषे फोरवे, तथा चरण कहेतां चारित्रने श्रीअरिहंतना गुणने विषे रमण एकत्व तन्मयतापणुं पामीने रहे, इहां जे चायोपशमी आत्मागुणनी प्रवृत्ति भासनादिक. ते सर्व श्रीअरिहंत अनुयायी थइ, ते माटे ए व्यवहारनये अपवाद भावसेवना कहिये.

४ प्रभु श्रीपरमात्मा अयोगी अलेशी, तेना गुणने अवलंबीने आदरीने परिणाम जे अंतरग आत्मद्रव्यनी चायोपशमी परिणति सामान्यचक्रभावरूप, ते मध्ये तन्मयपणे जे नहीं वीसरे एवा स्मरणपणे तदुपयोगे रहे, ते जिहां सुधी, धर्मध्यानरूपे आलंबी साधे, तिहां सुधी, रुजुवृत्तनये अपवादभावसेना कहिये. ए पण आत्मसाधनरूप उत्सर्गभावसेवा तेनु कारणपणुं छे, तेथी ए अपवादसेवा कही ॥४॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

शब्दे शुक्ल ध्यानारोहण,

समभिरूढ गुणदशमे जी ॥

वीय शुक्ल अविकल्प एकत्वे,

एवंभूत ते अममे जी ॥ श्री० ॥ ५ ॥

५ अर्थः—हवे श्रीप्रभुरूप शुद्धद्रव्यने आलंबीने जे जीव भावमुनितत्त्वरुचि थइ दर्शन, ज्ञान, चारित्र, ए रत्नत्रयीमयी परिणामीने जे पृथक्त्ववितर्क सप्रविचाररूप शुक्ल ध्या-

नपणे परिणम्यो, तेवारे ए जीव शब्दनये भावसेवनावंत थयो, एटले रुजुस्रत्रनयमां तो प्रशस्तउदैक सहित अरिहंत गुणनी इष्टतादिक परिणामने सहकारे हतो, अने जिहां शब्दनय थयो, तिहां प्रशस्तालंबननुं कार्य पडे नहीं. साधक जे मव्य-जीव, तेहना गुण ते सर्वप्रभुगुणथी एकत्व थइ स्वरूप एकत्वता पाम्या शुक्लध्याननी शुद्धताने परिणम्या, तेवारे शब्दनय, अपवादभाव सेवना कहिये, इहां पण निमित्तपूर्वक मंडाण छे, ते माटे अपवादें भावसेवना कही, अथवा साधनपणा माटे अपवाद कहि बोलाव्यो.

६ जेवारे साधक जीव दशमे सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे चड्यो शुक्लध्यानना प्रथम पायाने अंतें आव्यो, परमनिर्मलभाव वर्यो, ते वेलाए जेटली आत्मगुणनी साधना करतां योगवीर्यनी सहाये साधकता थाय, ते सर्व अपवादें छे, अने उत्सर्गमार्गे तो योगधर्म पण आत्माने तजवा योग्य छे, ते पण तेकालें साधनारूप छे, तेमाटे इहां कारणिक ग्रह्यो, पण स्वरूपमध्ये नहीं. अने जेटलुं कारणरूप लहिये, ते सर्व अपवाद छे, माटे दशमे गुणठाणे समभिरूढनये अपवाद भावसेवना छे, ए पण साधकनां आसन छे.

७ जेवारे शुक्लध्यानने बीजे पाये एकत्ववितर्क अप्रविचाररूपें चड्यो भावमुनि निर्विकल्प समाधि वरयो, स्वरूपएकत्वे परिणम्यो, तेवारे साधनानुं पूर्णपणुं थयुं. ते माटे एवंभूतनय सेवना थइ. तो कोइ पूछे जे अयोगी गुणठाणा सुधी साधना छे, तो इहां चीणमोहगुणठाणे सेवनानो एवंभूत केम कहो छो.? तेने उत्तर कहे छे जे अयोगी सुधी तो उत्सर्गसाधना छे, अने इहां तो अपवादसाधनानो अधिकार छे,

तेथी अपवादसाधना इहां पूरी थइ. वली कोइ पूछे जे समय निर्मोह अवस्थामां शु अपवादपणु छे ? तेहने उत्तर. जे शुक्र ध्याननो बीजो पायो पण हजी सचेतनानुं एक आत्मधर्मे राखवुं, ते प्रयोग छे. हजी सयोगवीर्य उदैकानुगतनुं सहाय छे, तथा श्रुतज्ञाननुं आलंबन छे, अने क्षयोपशमी श्रुत ते उत्कृष्ट उत्सर्गे मूल आत्मिक वस्तुधर्मे नथी अने तेहनुं आलंबन छे, तिहां सुधी अपवाद छे. ते माटे निर्मोही चारमे गुणस्थानके एवंभूतनये अपवादें भावसेवा जाणवी. ए अपवाद भाव सेवनाना सात नये करी सात भेद कइया ॥ ५ ॥ इति पंचम ॥

उत्सर्गे समकितगुण प्रगट्यो

नैगमप्रभृता अंशे जी ॥

संग्रह आत्म सत्तालंबी,

मृनिपद भाव प्रशसे जी ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ:—हवे उत्सर्गमागे भावसेवनाना सातनये करी सात भेद कहे छे. इहां जेटलुं आत्मधर्मरूप स्वकार्य नीपजे छे, ते उत्सर्गसेवा कहिये, एटले करवा योग्य जे कार्य ते उत्कृष्ट करवुं, पण तेमां जेटली ऊणता होय, तेमाटे नयफलाववा जोइये, ते फलावी देखाडे छे.

१ जेवारें आत्मानो शंकादिपांच अतिचार रहित क्षायिक आत्मिक तत्र निर्धाररूप शुद्धसमकितरूप गुण प्रगट्यो, तेवारें ए साधकआत्मानो एक अंशे प्रभृतानो गुण प्रगट्यो, तेथी आत्मानुं एक अशें कार्य थयुं, तेमाटे नैगमनय उत्सर्ग भावसेवा थइ. इहां कोइ पूछशे जे गुण निपन्यो तेने सेवा केम कहो छो ? तेने उत्तर जे, तन्मयपणे, थइ रेहवुं एज

सेवनानो अर्थ छे. ते इहाँ तन्मयपणुं थयुं छे, अथवा जो पण गुण तो प्रगट्यो पण हजी आत्माना अनंता गुणनो साधक छे माटे एने सेवना कही छे. जेटलुं उपादानकारण-पणुं तेटलुं उत्सर्गसाधन छे. तेमाटे एने उत्सर्गभावसेवा गवेषी छे, उक्तं च ॥ आप्तमीमांसायाम् ॥ उवयाणं उस्सग्गो । निमित्तमववाय सुद्धदेवोत्ति ॥ ए टीकामध्यें छे, तेथी उपादाननिष्पत्ति ते उत्सर्गसेवा जाणवी. इहाँ आत्माना अनंत गुण छे, तेमांथी एक समकित गुण प्रगट्यो, ते आत्मानो एक अंश प्रगट्यो तेथीज ए नैगमनयें उत्सर्गभावसेवा थइ, अने एहीज उत्सर्ग आत्मगुणप्रभुता पण प्रगटी.

२ जेवारें ते भावमुनियें यद्यपि पोतानी आत्मसत्ता आवरी छे, तो पण जे छती हती तेने निर्धार करीने भासनगत करी, ते हवे स्वसत्तालंबी शुद्ध धर्ममयी थयो, तेहीज आत्मसत्ता-भासन रमण, एकत्वसत्तासन्मुख थको रहे, एटले ए जीव आज सुधी स्वसत्तालंबी थयो हतो नहीं, ते थयो, एटलुं उपादान समर्युं, माटे संग्रहनयें उत्सर्गभाव सेवा कहियें.

३ जेवारें ते साधक जीव, अप्रमत्तमुनिराज अवस्था पामीने उपादान कारणता सर्वस्वरूपालंबी करी, ते अवस्था आत्मानी परिणामप्रवृत्ति ग्राहकता, व्यापकता, भोक्तृता, कर्तृता आदिक सर्व स्वरूपें वलगी, तेवारें अंतरंग वस्तुगत जे व्यवहार, ते वस्तुस्वरूपें थयो, ते व्यवहारनय उत्सर्ग भावसेवना कहियें. ए मुनिपदनो जे भाव, तेहने प्रशंसे कहेतां वखाणे ॥६॥

ऋजुसूत्रें जे श्रेणिपदस्थें,

आत्मशक्ति प्रकासे जी ॥

यथाख्यात पद शब्दस्वरूपे,

शुद्धधर्म उद्भासे जी ॥ श्री० ॥ ७ ॥

४ अर्थः—जे आत्मा क्षपकश्रेणिपदे रह्यो थको पोतानी आत्मिक शक्ति प्रकासे केतां प्रगट करे, तेने अजुसूत्रनय उत्सर्ग भावसेवना कहिये.

५ जेवारें आत्मानें यथाख्यात क्षायिकचारित्र प्रगट थयुं, तेवारें जे चारित्र सहकारी आत्मशक्ति प्रगटे, शुद्ध अकषायी, असंगी, निस्पृहरूप शुद्ध धर्म उद्भास पामे, चारित्र सहकारी जे वीर्यादिक तेपण जे कषायानुयायी फरता हता, ते सर्व आत्मरमणी थया, ए धर्म जेटलो उद्भास पामे, ते सर्वशब्दनयें उत्सर्गे भावसेवना जाणवी इहां स्वरूपरमणी असहायी थयो, ते जेटलु अन्य असहायीपणुं नीपन्यु, तेदलु उत्सर्गसेवन जाणवुं ॥ ७ ॥ इति

भाव सयोगी अयोगीशैलेसे,

अंतिम दुग नय जाणो जी ॥

साधनताए निजगुण व्यक्ति,

तेह सेवना वखाणो जी ॥ श्री० ॥ ८ ॥

६ अर्थः—जेवारें ए आत्मार्ये सर्व घनघातिकर्म क्षय करीने अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, ए चार मोटा अनंतक प्रगट कर्या, ए चार गुणने संकर तथा सहकारें जे बीजा वक्तव्य तथा अवक्तव्य अनंता स्वधर्मागुण प्रगट थया, आत्मिक आनदी थया, तेवारें समभिरूढनयें उत्सर्ग भावसेवा थई.

७ जे कालें शैलेशीकरण करे, आत्मप्रदेशनो घन करे, अयोगीकेवलीपणुं थाय, तेवारें एवंभूतनयें उत्सर्ग भावसेवना जाणवी. इहां कोइ पुछ्छो जे एवंभूत मोक्षने विषे केम कहेता नथी ? तेने उत्तर. जे मुक्त आत्मा तो सिद्ध छे, तेने नवुं कांइ नीपजाववुं नथी, अने अयोगीने तो सिद्धता निपजावी छे, माटे जेटलुं कार्य अधुरुं, तेटलुं साधन कहीयें. अने जे साधना ते सेवा छे, माटे साधनानो अंत अयोगी केवली गुणठाणे छे, एटले साधनानो एवंभूत अयोगी केवली छे, तेथी उत्सर्ग भावसाधना ते अयोगीकेवली गुणठाणे कही, अने सिद्धनो एवंभूत ते मुक्त आत्मा छे. ए रीतें साधना ओलखावी. ए उत्सर्ग सेवनाना सात नय कह्या.

हवे एनुं स्वरूप बतावे छे, जे ए साधनता कहेतां साधना करतां जे निजगुण केतां पोताना आत्माना गुण तेनुं व्यक्ति केतां प्रगटपणुं, तेह सेवना कहेतां आत्मसेवना, वखाणो केतां कहो, एटले जेटली साधना तेटली अपवादसेवा, जाणवी, अने ते साधना करतां करतां जेटली जेटली नवी आत्मशक्ति प्रगटवानी कारणता सहित जे आत्मशक्ति प्रगटे, ते उत्सर्गभावसेवा जाणवी, अने शुद्धनिष्पन्न सिद्ध अवस्था ते साध्य छे, अने जे प्रगटशुद्ध आत्मधर्मपणे आत्मसंपूर्णताने कारणपणे थती सेवा, ते उत्सर्गभावसाधना जाणवी. जे उत्सर्गभावसाधना ते कार्य छे, अने निमित्तालंबी अपवाद भावसेवा ते कारण छे, शेष सर्व द्रव्यसेवनानुं कारण छे. ए रीतें कारण कार्यभाव जोडवो ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

कारणभाव तेह अपवादें,
कार्यरूप उत्सर्गे जी ॥

आत्मभाव ते भावद्रव्य पद,

बाह्यप्रवृत्ति निःसर्गे जी ॥ श्री० ॥ ९ ॥

अर्थः—इहां जेटलो कारणभाव, ते सर्व अपवादें जाणवो अने जेटलुं कार्य जे स्वगुणनिष्पत्ति, तेटलो उत्सर्ग जाणवो. ए उत्सर्ग तथा अपवादाना लक्षण तथा फलावणी सर्व बृहत्कल्पभाष्यमांथी तथा तेनी टीकाथी विस्तारपणे जाई लेजो, अने जेटलुं बाह्यप्रवर्तन ते द्रव्यनिक्षेपो जाणवो. एहवी श्री चंद्रप्रभस्वामीनी सेवार्ये जे हलिया, ते आत्मधर्म संपूर्ण बरे ॥ ९ ॥ इति नवम माथार्थः ॥

कारणभाव परपर सेवन,

प्रगटे कारजभावो जी ॥

कारज सिद्धे कारणता व्यय,

शुचि परिणामिक भावो जी ॥ श्री० ॥ १० ॥

अर्थः—हवे कारणभाव जे श्री अरिहंतदेव तेहनी परंपराये द्रव्यभावना करता थका भावसेवा प्रगटे, अने भावसेवाथी उत्सर्ग धर्म प्रगटे, अने उत्सर्ग धर्म प्रगट्यो, तेवारें पोतानुं कार्य शुद्धस्वरूप अनुभवरूप प्रगटे, अने कार्य जे शुद्ध सिद्धतारूप ते सधे केता नीपजे, ते कार्य नीपने कारणता जे हती तेहनो व्यय केता नाश थाय, केमके कार्यनी ऊणतार्ये कारणता छे, परंतु कार्य नीपने कारण धर्म रहे नहीं, तेवारें शुं रहे ? ते कहे छे, जे शुचि केता पवित्र भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रूप हेतुसद्भावरूप मल रहित जे आत्मानो पारिणामिक भाव छे, जेपणे एनु मूल लक्षण छे, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावरूप तेपणु रहे, परमानंद अविनाशी अवस्था बरे ॥ १० ॥ इति ॥

परमगुणी सेवन तन्मयता,

निश्चय ध्यानं ध्यावे जी ॥

शुद्धात्म अनुभव आस्वादि,

देवचंद्र पद पावे जी ॥ श्री० ॥ ११ ॥

अर्थः—ए रीतिं परम केतां उत्कृष्ट गुणी जे श्री अरि-
हंत शुद्धदेव तेहनी सेवा अति दुर्लभ छे, ते पामीने तेहमाहे
तन्मय थईने जे जीव निश्चय केतां निर्धारे, अथवा निश्चय केतां
पोताने स्वरूपध्यानं एकत्वता रूपे जे ध्यावे, ते जीव, शुद्ध नि-
ष्कलंक जे आत्मा चिदानंदघन, तेहनो जे अनुभव केतां य-
थार्थ ज्ञान वेद्य संवेद्य पद सहित तेहने आस्वादिने देव जे
निर्ग्रथ अथवा भुवनपति प्रमुख चार निकायना, तेहमां चंद्रमा
समान भाव उद्योत समता शीतलतानां कारण जे अरिहंत ते
रूप पदस्थानक ते प्रत्ये पामे, एटले अहो भव्य जीवो ! जो
तमें पोताना आत्मसुखना इच्छक थया छो, अने शुद्धानंदने
विलसो, एवी अभिलाषा तमने छे, तो श्रीचंद्रप्रभस्वामी शुद्ध-
देव, अशरणना शरण, जगदाधार, जगत्जीवना परोपकारी,
मोह तिमिरनो ध्वंस करवाने भावसूर्य जेहवा, कर्मरोगना परम
वैद्य, महा माहण, महा गोप, महानिर्यामक, महासार्थवाह, स-
म्यक्दृष्टि जीवना जीवनप्राण, देशविरतिने तो महामंत्रनी परे
जपवा योग्य, साधु निर्ग्रथ जेहनी आज्ञार्ये चाले छे, उपाध्या-
यना हृदयरूप सरोवरना हंस, आचार्यजीना नाथ, गणधरना
साक्षात् मोक्षहेतु अने स्याद्वादधर्मना उपदेशक, एहवा श्री
अरिहंतदेव तेनी सेवा करो, एहज आधार छे, ए श्रीचंद्रप्रभनी
सेवा जिहां सुधि तमारी संपूर्ण सिद्धता न थाय, तिहां
सुधि अखंड रहेजो, एहीज सार छे ॥ ११ ॥

॥ अथ नवम श्री सुविधिनाथजिन स्तवनं ॥

यारा महेला उपर मेह जरुखे वीजली हो लाल जरुखे ॥ ए देशी ॥

दीठो सुविधि जिणंद, समाधिरसें भयों हो लाल ॥ स० ॥

भास्यो आत्मस्वरूप, अनादिनो वीसर्यो हो लाल ॥ अ० ॥

सकल विभाव उपाधि, थकी मन ओसर्यो हो लाल ॥ थ० ॥

सत्ता साधन मार्ग, भणी ए संचर्यो हो लाल ॥ भ० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्री सुविधिनाथपरमात्मानी स्तुति करे छे. कोइक भव्य जीव अनादिकालनो मिथ्यात्व, असयम, कपाय-योग रूप द्रव्यभाव हेतुपर्ये परिणम्यो, एकेंद्रिय सूक्ष्म, चादर, तथा चेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री, पचेंद्रीपणे अनंता भव सुधी भव-चक्रमां फरतो अनेक कुदेवनी वामनाये वामित थको कुदेवने देवबुद्धिए मानतो, अथवा सुदेव जे श्रीपतिराग तेहने कर्तृत्व प्रमुख दोष मानतो थको कोइ कालें श्रीवीतराग प्रभुनी प्रभुता दीठी नहीं, ते केवारेंक भवस्थितिनो पारिपाक करी, कोइक पुण्यना उदर्ये श्रीसुविधिनाथ परमेश्वरनी मुद्रा दीठी, ते पण अरूपी अनंतगुण प्रभुतापणे श्रद्धान भासन गोचर थई. ते श्री अरिहंतनी प्रभुता देखीने उल्लसितचित्तें ते भव्यजीव श्री वीतरागनी उपकारता पांम्यो, तेवारें ते प्रीतें हर्षथी बोले छे जे, दीठो केता भासनपणे प्रतीत सहित सुविधिनाथ प्रभुजी दीठो, पण ते केहवो दीठो ? जे समाधि केतां आत्मगुणनुं विपरीतप्रवर्तन ते उपाधि, अथवा विषय कपायने अनुयायि जे प्रवर्तन, ते पण उपाधि, तथा जे तप्त उद्धत चक्रता परिणामादिक, सर्वविभाव ते पण उपाधि तेने निवृत्तें सकलगुण स्वरूप परिणामी थये जे आत्मगुणनी वस्तुगतें स्थिरता ते

समाधि तेहनो रस, तेणें करी भरयो केतां संपूर्ण एटले परम-समाधिमयी श्रीसुविधिनाथ दीठा, ते दीठार्थी एक मोटो लाभ थयो, ते शुं लाभ थयो ? तोके भास्यो केतां जाणपणामां आढ्यो, पोताना आत्मानुं स्वरूप ते शुद्धचिदानंदलक्षण जाण्युं, जे अनादि अतीत कालनो विसरयो—भूली गयो हतो, ते श्रीप्रभु दीठां भास्युं, तेथी सकल केतां सर्व जे विभावदोष आत्मिक अशुद्धतारूप जे उपाधि तेहथकी मन केतां चित्त ओसरयो केतां पाछो हळ्यो, जे ए विभाव परिणति हुं नहीं तथा विभाव परिणतिनो हुं कर्ता पण नहीं, ए मुने करवुं, भोगववुं, परिणमवुं घटे पण नहीं, ते जेटली क्षयोपशमी आत्मपरिणति ते सर्व राग द्वेष असंयमथी निवृत्तवा लागी, अने सत्ता केतां जे अनंतगुणरूप आत्मानी सत्ता तेहना साधननी रीत केतां चाल (मार्ग) ते सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यग्चारित्ररूप जे आत्मिक कार्य, ते मार्ग भणी ए भव्यजीव परिगम्यो, एटले जेथी आत्मसत्ता प्रगट थाय, ते मार्ग भणी ए आत्मा संचरयो केतां प्रवर्त्यो ॥ १ ॥

तुम प्रभु जाणग रीति, सर्व जग देखता हो लाल ॥ स० ॥

निजसत्तायें शुद्ध, सहुने लेखता हो लाल ॥ स० ॥

परपरिणति अद्वेष, पणे उवेखता हो लाल ॥ प० ॥

भोग्यपणे निजशक्ति, अनंत गवेखता हो लाल ॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थः—वली हे प्रभुजी ! तुमें जगत्षडात्मक तेने केवल-ज्ञान, तथा केवलदर्शनें करी देखो छो, पण जाणंग रीतें एटले राग द्वेष रहित जे एक आत्मानो जाणंग गुण छे, तेथी सर्वभाव जाणो छो, परंतु तेमां शुभपरिणामी वस्तुना

ग्राहक नहीं, अने अशुभपरिणामी वस्तुना द्वेषी नहीं, यथार्थ रीतें जगत्ना जाण छो, कर्त्तापणुं, भोक्तापणुं, ग्राहकपणुं, स्वाभिपणु एटलां वानां टालीने अहबुद्धि रहित सर्वभावना जाणंग छो, वली हे प्रभुजी ! तुमें केहवा छो ? जे सर्वद्रव्यने पोताना सत्ताधर्में शुद्ध, निर्दोष, निःसंग लेखो छो, एटले पंचास्तिकायमां व्रण अस्तिकाय तो परसग विना छे, अने पुद्गलनु संयोगीपणु ते भेदसघातधर्म छे, पण कर्त्तापणे नहीं, जातें स्वसत्ताने लोपतो नहीं, अने जीवने यद्यपि अनादि विभाव छे, परतु सत्तारूपें मूलधर्मेंज छे, ते प्रभुजी ! तुमें जीवपणुं मूलसत्तार्येंज लेखवो छो, तेमां परपरिणति भावअशुद्धता, ज्ञानवरणादि कर्म, कामक्रोधादिक सर्वने अद्वेषपणे आत्मधर्मथी भिन्न माटे उवेखो छो, तेनो आदर करता नहीं, द्वेषे जे तजे. तेने त्याग न कहियें, समता माटे त्याग वर्णव्यो छे, केम के समता सामायिक छे, द्वेषीपणुं तो परपरिणति छे. वली हे प्रभु ! तुमें भोगपणे पोतानो भोग भोगवो छो, निजशक्ति जे अनंतगुणपर्याय रूप, परमचैतन्यरूप, परमानंदरूप, सहजसुखरूप एवी जे अनंती तत्त्वविलासता तेने भोग्यपणे गणो छो, स्वधर्मनेज भोग्य जाणो छो, माटे हे सुविधि परमेश्वर ! तमें परमात्मतारूप परम धर्मना भोगी छो जी ॥ २ ॥

दानादिक निज भाव, हता जे परवशा हो लाल ॥ ह० ॥
 ते निजसन्मुख भाव, ग्रही लही तुज दशा हो लाल ॥ ग्र०
 प्रभुनो अद्भुत योग, सरूपतणी रसा हो लाल ॥ स० ॥
 भासे वासे तास, जास गुण तुज जिसा हो लाल ॥ जा० ॥३॥

अर्थ—दानादिक आत्मधर्म जे क्षयोपशमी छे, ते सर्व

परानुयायी छे, पुद्गलानुयायी छे, ते अनादिना परवश थई रखा छे, ते सर्व, हे प्रभु ! ताहरी शुद्ध वीतराग दशा लही केतां पामीने ते क्षयोपशमी भाव सर्व आत्म सत्तानो सन्मुख पणो ग्रहे, आत्मावलंबनी थाय, एटले अरिहंतावलंबनी थया पछी एहीज सर्वगुण ते स्वस्वरूपालंबनी थाय, गुणावलंबनी थाय, अने हे प्रभुजी ! ताहरी योग केतां रत्नत्रयीना स्वरूपनी रसा केतां भूमिका ते अद्भुत छे. निर्विकार, निःसहाय, निःप्रयत्न, निर्मल, निरंतर, सकलावबोधक जाणपणुं ते ज्ञान, अने यथार्थ सर्वसापेक्ष अदूषितपणो सकल पदार्थने निर्धार करतो ते दर्शन, तथा नीराग, निश्चल, निरामय, तत्त्वैकत्वरूप थिरतापरिणाम ते चारित्र धर्म, ए रत्नत्रयी ते अनंत स्वभाव, अनंत पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रुव, भेदाभेद, अस्ति नास्तिरूप स्वरूपने लीधे वर्ते छे, एहवी रत्नत्रयी, हे परमेश्वर ! ताहारे विषे परिणामी छे, तेहनी प्रतीत ते वासना, तथा ओलखाण ते भासन, ते तेहने थाय, जेहने तुज केतां तुमारा जेवा गुण प्रगट्या होय, एटले हे नाथ ! हे सर्वज्ञ, हे त्रैलोक्य दीपक ! ताहरी रत्नत्रयी ते तुझ समान गुणी होय, तेहनाज भासनमां आवे ॥ ३ ॥

मोहादिकनी घूमी, अनादिनी उतरे हो लाल ॥ अ० ॥

अमल अखंड अलिप्त, स्वभावज सांभरे हो लाल ॥ स्व० ॥

तत्त्वरमणशुचि ध्यान, भणी जे आदरे हो लाल ॥ भ० ॥

ते समतारस धाम, स्वामिमुद्रा वरे हो लाल ॥ स्वा० ॥ ४ ॥

अर्थ—हे प्रभु ! ताहरी मुद्रा ते परम समतानुं धाम छे, एवी बीजी कोइनी न होय, केम के एहवी सकल परभाव रहित परिणति, तो जेणें एम कहुं होय, तेनेज निपजे, ते

कहे छे, मोह जे मुंजता परिणाम. तेहनी घूमि जे स्वरूप अग्राहकता, परभावग्राहकता, परभावरमणतारूप विभावता ते अनादि कालनी आत्माने विषे छे

इहां प्रश्न जे ए विभावता अनादिनी छे, ते आत्मानो स्वपरिणाम छे किंवा परपरिणाम छे ? जो स्वपरिणाम छे, तो विभाव शा वास्ते कहो छो ? अने जो परपरिणाम छे तो अनादि केम कहिये ? तेहने उत्तर जे. आदि केतां पहेलो जीव अने पछी कर्म कहिये तो पेहला सिद्ध पछी कर्म लागे, अथवा पेहला कर्म अने पछी जीव, एम कहिये तो कर्त्ता विना कर्म केम मभवे ? ए पक्ष उपजे, ते माटे अनादि सहजातसंयोग छे तिहा कोइ पूछे जे उभय संयोग एकठो कहो, तो कारण कार्यनो संवध केम रहे ? तेहने उत्तर जे, उपादान धर्मे एक समयमा एकठीज कार्यकारणता छे, जेम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानने छे, तेनी पेरे इहां पण श्री विशेष-पावश्यकथी जाणवुं,

यदुक्तं ॥ गाथा ॥ नव कम्मस्स य पुब्ब, कत्तुरभावे समुप्पन्नो जुत्तो ॥ निकारणओ सोविय, तह जुगवयुपात्ति भावे य ॥ १ ॥ इत्यादि गाथाथी जाणवो. कोइ पूछशे जे अनादिनो मल्लेलो तेनो वियोग केम थाय ? तेहने कहिये ॥ गाथा ॥ जह चेह कंचणोव्वल, संयोगो शाइ संतय गओवि ॥ बुच्छभई मोवाय, तह जोगो जीव कम्मणं ॥१॥ इति पूज्य-वाक्यात्. एटले ए विभावपरिणाम यद्यपि अनादिनो छे, पण प्रकृतिक छे, स्वरूप नथी माटे एनो वियोग ते कीधो थाय. तेवारें कोइ कहेशे जे ए विभावनु कर्त्तापणुं केम छे ? तेने कहे छे. जे आमा स्वरूपकर्त्ता तेहने स्वरूपभावणें परभाव-

संयोगें परकर्त्तापणुं थयुं छे, ते विभावमोहनी घूमि उत्तरे, मिथ्यात्वनी भुल टले, तेवारें अमल केतां रागद्वेष रहित अखंड केतां केवारें खंडाय नहीं, अलिप्त केतां परसंगना लेपरहित एहवो पोतानो सहजस्वभाव सांभरे, भासन गोचरमां आवे, यद्यपि कर्म लेपाणो छे, तो पण स्वभावे अलिप्त छे. निरामय छे, कर्मसंबंध छे पण कर्मथी न्यारो छे, निःसंग छे, एहवो आत्मा जेवारे ओलखाणमां आवे, पछी तेहज साधक आत्मा पोतानुं तत्त्व जे शुद्धनिश्चयनयथी वस्तुस्वभाव तेहमां रमे, अनादि पौद्गलिक अशुद्धवर्णादिरमण तजिने, पोताना ज्ञानादि अनंतगुणमां रमे, एहज तत्त्व चारित्रता प्रगटें, पछी शुचि केतां पवित्र निर्मल ध्यानते प्रथम अरिहंतादि गुणीना गुण स्वरूपमां तन्मयतारूप धर्मध्यान ध्यायीने पोताना अनंता पर्यायनी परिणति प्राग्भाव अनुभवैकत्व सत्तागत तिरोभावीनुं भासन एकत्व शुक्लध्यान भणी जे पुरुष आदरे, केतां अंगीकार करे, ते पुरुष सर्व विभाव क्षय करीने परम समतारसना धाम एहवा स्वामी श्री जिनेंद्रदेव, तेहनी मुद्रा पामे, एटले वीतरागवस्था पामे, निर्मल पूर्यानिंदी थाय ॥ ४ ॥

प्रभु छो त्रिभुवननाथ, दास हुं ताहरो हो लाल ॥ दास० ॥
 करुणानिधि अभिलाष, अछे मुक्त ए खरो हो लाल । अ० ।
 आत्मवस्तु स्वभाव, सदा मुक्त सांभरो हो लाल ॥ स० ॥
 भासन वासन एह, चरण ध्यानें धरो हो लाल ॥ च० ॥५॥

अर्थः—हवे प्रभुथी विनति करी पोतानो मनोरथ कहे छे, हे प्रभु ! तमे त्रिभुवननाथ छो, सम्यग्दर्शनादि गुण पमाडवाना तथा रखवालवाना परम कारण छो, अने हुं तमारो दास छे, इहां श्री वीतरागनुं दासपणुं तो समकिती, देशविरति,

तथा सर्वविरतिने विपे छे, पण इहां तो भद्रकपर्णानुं उपचार वचन छे, माटे हे करुणानिधि ! हे करुणाना समुद्र ! मुझने ए सरो अभिलाप छे, ते कहुं छुं, जे माहरो आत्मानो वस्तुस्वभाव “ सेण दीहेण हस्सेण वट्टेण तसेण चौरसेण परिमंडलेण किण्हेण नीलेण लोहीएण हालिदेण सुकिलेण सुरहिण दुरहिणा तिचेण कडुएण कसाएण अंत्रिलेण महुरेण गुरुएण लहुएण सीएण उण्हेण णिण्हेण लुख्खेण काऊण रुहेण संघेण इत्थीण पुरिमेण अभहापरिणेसणे उवमाणविज्झति अरूवी सत्ता अप-यस्स पयं नत्थी सेणं सदेणं रुवेण गधेण फासेणं इति आ-चारांगोक्तं ” तथा शुद्धस्वसत्ता स्वरूपी, अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अनंत स्वरूपकर्त्ता, स्वरूपभोक्ता, स्वरूपपरिणा-मी, असंख्यप्रदेशी, प्रतिप्रदेशे अनंतपर्यायी, नित्यानित्यादि अनंतस्वभावी, स्वकीयकारकचक्रपरिणामीरूप, माहारो स्व-भाव, ते सदा निरतर मने सांभरो, भासनमा रहो, वासना, प्रतीत, भासन, ज्ञान, चरण, तेमाहे रमण, ध्यान तेहज स्वभा-वमां तन्मयता धरो. ए मनोरथ सदा माहरो छे, साधकभावे साधक रीते सिद्धावस्थायें सिद्धरीते सदा रहेजो, ए अभिलाप छे ॥ ५ ॥ इति ॥

प्रभुमुद्राने, प्रभु प्रभुता लखे हो लाल ॥ प्र० ॥

द्रव्यतणे साधर्म्यं स्वसंपत्ति ओलखे हो लाल ॥ स्व० ॥

ओलखतां बहु मान, सहित रुचि पण वधे हो लाल ॥ स० ॥

रुचि अनुयायी वीर्य, चरणधारा सधे हो लाल ॥ च० ॥ ६ ॥

अर्थः—इहा कोइ पूछे जे तु ताहरा आत्मधर्मनो रुचि-पत थयो, तेवारें प्रभुजीनुं शुं काम छे ? तेने उत्तर जे, आत्म-स्वभाव विसरी, परमावरणी थइ, ए माहारो आत्मा शरीरसंगी,

व्यासंगी, अनंगी, कुलिंगी, तथा लिंगीपणें ममतालिंगी थइ रह्यो छे. स्वसत्ता धर्म विसरी गयो छे, ते हवे अनंतज्ञानी, परम अमोही, प्रभुनी मुद्रा, थापनानिचेपरूप तेहनो योग मले तेवारें अनंतगुण रूप, सकलज्ञायक, शुद्धात्मरूप एवी श्री प्रभुनी प्रभुता तेने लखे, केतां ओलखे, ते ओलख्या पछी जीवद्रव्यपणाना साधमें केतां सरखापणे जे सिद्ध थया, ते पण जीव अने हुं पण जीव माटे सत्तायें सरिखा छैयें. गुणपर्याय स्वभावें तुल्य छैयें. तो जेवी संपदा श्रीसुविधिनाथ परमेश्वरने प्रगट थई छे, तेटलीज संपदा माहरी सत्तामां पण छे, तेथी हुं पण ते परमेश्वर जेटली संपदानो धणी हुं, एम ओलख्या पछी ते संपदा उपर बहुमान आवे, तेथी ते संपदानी रुचि प्रगटे, जे एहवी संपदा माहारे केवारें नीपजशे ? अने जेनी रुचि होय, तेहनो उद्यम थाय, तेवारें वीर्यगुणनुं स्फुरण ते पण रुचिने अनुयायी छे, अने जे दिशें वीर्य स्फुरें, तेहमांज रमण थाय. एटले तेहनुंज नीपजवानुं आचरण थाय, एटले प्रभु दीठे प्रभुनी प्रभुता भासे, ते प्रभुता पोतामां जाणे पछी ते प्रगट करवानी रुचि उपजे, तेथी रुचिनुं वीर्य तथा चारित्र जे रमण, ते पण ते दिशें सर्वे, तेवारें ते सिद्धता प्रगटे, तेथी जिनमुद्रानो योग ते बधुं साधन छे, ए मार्ग कह्यो ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

क्षायोपशमिक गुण सर्व, थया तुज गुणरसी हो लाल ॥ थ० ॥
 सत्ता साधन शक्ति, व्यक्तता उल्लसी हो लाल ॥ व्य० ॥
 हवे संपूरण सिद्धि, तणी शी वार छे हो लाल ॥ त० ॥
 देवचंद्र जिनराज, जगत्र आधार छे हो लाल ॥ ज० ॥ ७ ॥

अर्थः—पछी क्षायोपशमिगुण चेतना वीर्य, दानादि

सर्व, जेवारे तुम्ह केतां तारा गुणना रसी थया, तेवारे ते निष्प-
न्नगुण रसी चेतना थवाथी अनंतगुणरूप सत्ता तेहनुं साधन
निपजाववानी आत्मशक्ति ढंकाणी हती, ते व्यक्त केतां प्रग-
टपणे उल्लासी केतां उल्लास पामी. हवे निमित्त कारण मले
उपादान कारण प्रगटे, आत्मा तत्त्वरुचि, तात्त्विक, तत्कालंवी
थाय, तो संपूर्ण अविनाशी सिद्धता निपजतां शी वार छे ?
एटले पुष्टकारणें नियमा कार्य निपजे, ते माटे देवचंद्र स्तुति
कर्त्ता, अथवा सर्वदेवमांहे चंद्रमा समान ते जिनराज, श्रीवी-
तराग, ते सर्वजीवना आधार छे, एटले जिनमुद्राने आलवनें
अनंत जीव सिद्धि वर्या, तेथी अरिहंतालंबने सिद्धता निपजे,
ए नियामक छे, वास्ते अरिहंतस्मरण, वदन, नमन, स्तवन,
ध्यान करो, हे भव्य जीवो ! तमने एहीज आधार छे ॥ ७ ॥
इति श्रीसुविधिजिनस्तवनम ॥

अथ दशम श्रीशितलनाथजिन स्तवनं ॥

॥ आदर जीव क्षमागुण आदर ॥ ए देशी ॥

शीतल जिनपति प्रभुता प्रभुनी,
मुक्थी कहीय न जाय जी ॥

अनतता निर्मलता पूर्णता,

ज्ञान विना न जणाय जी ॥ शी० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे दशमा परमेश्वर श्रीशितलनाथजीनी स्त-
वना करे छे. श्रीशीतलनाथनी अनत अविनश्वर आत्मिक
प्रभुता ते प्रत्यक्ष तो केवलीने गम्य छे, अने सम्यग्दृष्टि तत्त्व-
रुचिने तो श्रद्धामां छे, ते कहे छे. हे शीतल जिनपति ! तुमने

कषाय, तृष्णा, नोकषाय, तापरहित परम वीतरागता, निस्पृ-
हता, परम परभाव अभोग्यता रूप, शीतलता प्रगटी छे,
अने पति केतां क्षीणमोही प्रमुखना पति तेनी प्रभुता-ठकुराह
अनंत सहज संपदा ते मुज अल्पज्ञानीथी तो कहीं न जाय, केम
जे सिद्धना अभिलाष्य, अनभिलाष्य, सर्वपर्याय निरावरण
प्रगट थया छे, तेमां अनभिलाष्य पर्याय श्रीकेवली जाणे, पण
वचनें अगोचर छे, माटे कहि शके नहीं, अने अभिलाष्य
पर्याय अनंता छे, ते पण वचननो क्रम प्रवर्तन छे माटे मित
आउखें कहेवाय नहीं. तिहां अनंता जीवद्रव्य, ते एकेका द्रव्य-
ना प्रदेश असंख्याता छे, ते वली एकेका प्रदेशें ज्ञानादि गुण
अनंता छे, ते वली एकेका गुणना पर्याय अनंता छे, ते
मध्ये स्वभाव अनंता छे ॥ उक्तं च ॥ जीवापुग्गल समया, दध्व
पएसा य पञ्जवा चैव ॥ थोवाणंताणंता विसेसमहिया दुब्बेणं-
ता ॥१॥ इति ॥ तथा निर्मलता ते ए सर्व पर्याय निरावरण,
निःसंग निःस्सहाय छे. अने पूर्णता केतां सर्व शक्ति प्रगटभावे
पूर्ण छे, ते सर्व केवल ज्ञान विना जणाय नहीं ॥ १ ॥ इति
प्रथम गाथार्थः ॥

चरम जलधि जल मिणे अंजलि,

गति भींपे अतिवाय जी ॥

सर्व आकाश ओलंधे चरणें,

पण प्रभुता न गणाय जी ॥ शी० ॥ २ ॥

अर्थः—त्यां दृष्टांत, जेम चरम केतां छेल्लो जेनी सा-
धिक तीन रज्जु, बाह्य परिधि छे, एहवो जलधि केतां स्वयं-
भूरमण समुद्र तेहनुं प्रवल जल, तेने कोइ अंजलियें मापी
शके, अथवा कोइ एहवो पण होय जे अत्यंत वलय कालना

मोहोटा वायरानीं गतें चाले, तथा कोड अनंता लोकालोक
मली सर्व आकाश तेने चरणे केतां पगे करी ओलंधे एहवो
तो कोड होय नहीं, परंतु दृष्टांत मात्र दीघो छे, जे एहवा
शक्तिमंतथी पण निष्पन्न श्रीसिद्धपरमेश्वरनी जे प्रभुता ते
झायोपशम शक्तिवालथी गणी जाय नहीं, अने श्रीवीतराग
सर्वज्ञनी प्रभुता संपूर्ण झानी जाणे. परंतु ते पण वचनयोगें
कहि शके नहीं, ते माटे अनंत छे ॥ २ ॥ इति द्वितीय
गाथार्थः ॥

सर्वद्रव्य प्रदेश अनंता,

तेहथी गुणपर्याय जी ॥

तास वर्गीथी अनंत गुणुं प्रभु,

केवल ज्ञान कहाय जी ॥ शी० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे ते अनंतता कहे छे. सर्व जीवद्रव्य तथा
अजीवद्रव्य अनंता छे, तेथी सर्वद्रव्यना प्रदेश अनंता छे,
तेमां आकाश प्रदेशनी अनंतता अति मोटी छे, तेहथी वली
गुणनी अनंतता घणीज मोटी छे, तेहथी वली पर्याय अनंत
गुणा छे, ए अधिकार अन्य बहुत्वपदथी जोड लेजो, यद्यपि
पर्याय जे छे, ते मूलधर्म गुणथी भिन्न नथी, वस्तुमां पर्याय
परिपाटी छे, ते पर्यायनो समूह मली एक कार्य करे, ते प्रवृ-
त्तिने गुण कहे छे, परंतु पर्यायनीज प्रवृत्ति छे, अने द्रव्य
ते आधार छे, परंतु संज्ञा, मख्या, लक्षण, कार्यभेदें पर्यायथी
गुण भिन्न छे, ते माटे गुणनी भिन्न व्याख्या उत्तराध्ययनादि
मूर्तें छे ॥ उक्तं च ॥ दन्वाण्य गुणाण्य, पञ्जाण्य नाण्यं ॥
नाणं नाणेहि दसियं ॥ इति पुनः गुणाणामाम्भो दन्वं, एग-
दन्वस्मिया गुणा ॥ लरकणं पञ्जवाण्यतु, उभम्भो निस्मिया

भवे ॥ १ ॥ इत्यादिकथी भिन्न व्याख्या छे, तिहां पञ्चवणा-
 सूत्रें कह्युं छे. ए सेणं भंते जीवाणं पुग्गलाणं सव्वदव्वाणं
 सव्वपएसाणं सव्वपज्जवाणय कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया
 वा तुल्ला वा विसे साहिया वा सव्व थोवा जीवा पुग्गला अणंत-
 गुणा अद्धा समया अणंतगुणा सव्वदव्वा विसेसाहिया सव्वपएसा
 अणंतगुणा सव्वपज्जवा अणंतगुणा ॥ इति गणधरवाक्यात् एटले
 श्रीप्रभुजीनो केवलज्ञानगुण तेनी अनंतता ते आवी रीतें छे
 के छे द्रव्यना गुण पर्याय सर्व अस्तिपणे रह्या छे, ते सर्वने
 जाणे, तथा तेनी परस्परनी अपेक्षार्ये नास्तिपणुं अनंतुं रह्युं
 छे, ते सर्वने पण श्रीप्रभुनो केवलज्ञानगुण जाणे, तथा ए
 सर्वथी अनंत गुणा वली बीजा भाव होय, तो तेने पण
 जाणे, एम अनंती शक्ति छे, तेम दर्शननी पण तेटलीज
 शक्ति छे, तेमाटे द्रव्यना प्रदेश पर्याय तेना वर्ग करीयें,
 तेहने वली अनंतगुणो गुणाकार करीयें एटलुं हे प्रभु ! हे
 परमेश्वरजी ! तमारुं केवलज्ञान कहेवाय छे. ते श्री भगवती
 सूत्रें ॥ अमियं नाणं केवलिस्स ॥ एम कह्युं छे ॥ ३ ॥ इति
 तृतीय गाथार्थः ॥

केवल दर्शन एम अनंतु,

ग्रहे सामान्य स्वभाव जी ॥

स्वपर अनंतथी चरण अनंतुं,

समरण संवर भाव जी ॥ शी० ॥ ४ ॥

अर्थः—एटला सर्व भाव ते सर्व सामान्य युक्त छे, ते
 सर्व केवलज्ञानगम्य छे, अथवा सामान्याश्रयी छे, जे विशेष ते
 सामान्य विना नहीं, अने सामान्य ते विशेष विना नहीं. सर्व
 पदार्थ सामान्यविशेष रूप छे ॥ न सामन्न तत्रो नत्थि, वि-

सेसो खपुष्पं ग ॥ तथाच ॥ संमतौ ॥ द्रव्यं पञ्च विउञ्चं
द्रव्यं विउत्ता पञ्चवा नत्थि ॥ उप्पायठिइ भंगा, हवइ दविञ्चं,
लख्खणं एव ॥ १ ॥ इति ॥ ते माटे सर्वं द्रव्यने विपे सामा-
न्यं धर्मं अनंता छे, ते सर्वं केवल दर्शनगुणें देखे छे. तेथी पण
अनतगुणा सामान्य धर्मने देखी शके एवी शक्ति छे, तेथी
एटला पर्यायमय केवल दर्शन गुण छे.

उक्तं च विशेषावश्यकं ॥ यावंतोहि ज्ञेयस्य पर्याया स्ता-
वंतस्तदवभासकत्वेन ज्ञानस्याप्येष्टव्याः ॥ तथा भगवत्यंगे ॥
अणंता दंसणपञ्चवा इति ॥ चास्ते केवल दर्शन पण अनंतुं
छे, ए दर्शन, सर्वं पदार्थना अस्तित्व, सत्त्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्वादि
सामान्य द्रव्यास्तिकने देखे छे. एम चारित्र गुण ते पण अनं-
तपर्यायी छे, पोताना आत्माना सर्वं पर्याय ते सर्वं स्वधर्म छे,
तथा पोताथी भिन्न अनंता जीव द्रव्य तथा सर्वं अजीव द्रव्य
तेहना धर्म ते परधर्म छे, एटले सर्वस्वधर्ममा रमण, परधर्ममां
अरमण, ए सर्वं पर्याय चारित्रना छे, एटले स्वरूपरमण, पर-
भावनिवृत्ति, ए चारित्रनी परिणति छे, अने अनादिनुं जे
पररमणीयपणु भूलथी थयुं हतुं, ते निवारीने स्वशक्ति चेत-
नावीर्यादिकनी परिणति ते परभावथी रोकनीने स्वरूप विपे
राखवी ए संवरभाव ते चारित्रनी अनंतता छे. ते संयमश्रेणी
श्री व्यवहारभाष्यें कही छे. जे सर्वं जीवथी अनतगुणा चारि-
त्रना उघाडा विभागनी एक वर्गणा करियें, तेवी असंख्याती
वर्गणायें एक स्पर्द्धक थाय. तेवा असख्यात स्पर्द्धकें एक संय-
मस्थानक थाय. ते सर्वं जघन्य संयमस्थान ते वली असख्य
पद्गुणरीतें असंख्यपद्गुण करतां सर्वोत्कृष्ट असंख्यातम्व संयम
स्थान थाय. ए चारित्रनी अविभागनी अनतता देखाडी, ते

सर्व चारित्रगुण हे प्रभु ! तमारो निरावरण छे,ते माटे चारित्र
अनंतुं छे ॥ इति ॥

द्रव्य क्षेत्र ने काल भाव गुण,

राजनीति ए चार जी ॥

त्रास विना जड चेतन प्रभुनी,

कोइ न लोपे कार जी ॥ शी० ॥ ५ ॥

अर्थः—एम वीर्यादिक गुणानी स्वधर्म अनंतता जा-
णवी, एवी अनंत स्वगुण संपदामयी छो, वली हे नाथ ! हे
परमेश्वर ! तमें जगत्मां जीव तथा अजीव तेहना जे गुण,
स्वभाव, पर्याय, ते सर्व १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव,
ए रीते चार परिणमनपणे छे, अने तमारा ज्ञानादिकगुण, ते
पण द्रव्यादिक चार परिणमने परिणमे छे, अने सर्व स्वपररूप
धर्मनुं जाणपणुं करे छे, ते पण चार प्रकारें परिच्छेदन करे छे.
ते चार प्रकार कहे छे. १ समुदाय, ते द्रव्यधर्म जाणवो.
२ आधारता ते क्षेत्रधर्म जाणवो. ३ वर्तना उत्पादव्ययरूपभाव,
ते कालधर्म जाणवो, निश्चें विचारतां तो काल द्रव्य भिन्न नथी,
केमके पंचास्तिकायनी वर्तना ते कालधर्म छे, ए तत्त्वार्थ तथा
धर्मसंग्रहणी अने विशेषावश्यकमध्ये घणी चर्चा छे. अनपेक्षित
द्रव्यास्तिकनयें एहने द्रव्य कह्युं छे, परंतु जातें द्रव्यास्तिकपणुं
एमां नथी, तेथी द्रव्यनी वर्तना ते काल, ४ तथा द्रव्यनो
मूलधर्म ते भाव, ए रीते सर्वपरिणमन छे, ए श्री वतिराग
निष्पन्नतत्त्वी प्रभुनी राजनीति चार प्रकारनी छे, वली श्रीप्रभुनी
आज्ञा सर्व द्रव्य माने छे, एटले स्तवनापदें आरोप माटे कहे
छे. जे अन्य राजानी आणा कोइक माने, कोइ न माने, पण
हे प्रभु ! जे रीते तमो तमारा ज्ञानमां जाणो छो ते रीते

तमारुं ज्ञान परिणमे छे, ते रीतें सर्व द्रव्य परिणमे छे, जे रीतें तमे प्ररूपणा करो छो, तेज रीतें सर्व द्रव्यनी परिणति छे, माटे तमें कोइने कहेता नथी, तथा कोइने त्रास करता नथी, भय पमाडता नथी, परंतु ते तमारा ज्ञाननी परिणति लोपी चालता नथी, आज्ञा लोपता नथी, एहवी सहज आणा सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्वविरतिने दृष्ट छे, माटे निःप्रयास अखंड आणा छे ॥ इति ॥ ५ ॥

शुद्धाशय थिर प्रभु उपयोगें,
जे समरे तुभ नाम जी ॥

अव्यावाध अनंतु पामे,
परम अमृतसुख धाम जी ॥ शी० ॥६॥

अर्थः—हवे प्रभुसेवानुं फल कहे छे. जे साधक जीव. शुद्ध निर्दूषण आशय करीने क्षुद्रादिक आठ दोपने टालीने एटले क्षुद्रादिक दोष रहित जे करे, ते कार्यनो साधक थाय. श्रीहरिभद्रस्वरियें कह्युं छे ॥श्लोक॥ क्षुद्रो लोभरतिर्दीनो, मत्सरी भयवान् शठः ॥ अज्ञो भवामिनंदी च, निष्फलारंभसाधकः ॥ १ ॥ तथा दरघादिक दोष रहित तथा विषअनुष्ठान जे इह लोक फलनी आशा, अने गरलानुष्ठान जे परभवे इद्रियसुखनी वांछा, वली अन्योऽन्य अनुष्ठान ते साध्य शून्यसापेक्षता विना जे करवुं, इत्यादि दोष टाली जिन आज्ञा प्रमाणे, विधि सहित, प्रीति, भक्ति, वचन असंगरीतें. तद्हेतु तथा अमृत अनुष्ठानें. तिहां तद्हेतु ते, जे एक तेहीज साधन साचुं करवाने अर्थें मोक्ष निपजाववा माटे. अने अमृत ते त्रिकरण योगनी एकता हर्षसहित तन्मयपणे निरामय साधन. ए रीतें थिर थईने शंकादि चपलता रहित श्रीप्रभुजीना स्वजाति स्वभाविकगुणें करी उपयोग प्रभु

गुणें जोडीने जे भव्यजीव आत्मार्थी थईने श्रीशीतलनाथ परमसमतामयी प्रभुनुं ध्यान करवाने तेहनुं नाम समरे केतां संभारे, ते जीव अनुक्रमें गुणीने आलंबने आत्मोपादानी थईने निष्कर्मा थाय, तेवारें ते अनंतुं अव्यावाध सुख, परसंग रहित आध्यात्मिक सुख पामे. ते सुख केहवुं छे ? तो के परम उत्कृष्ट अमृत अविनाशी सहज ज्ञानानंदादिक अनंत सुखनुं धाम छे ॥ उक्तं च ॥ सिव मयल मरुय मणंत मख्खय मव्वा वाह. पप्पुणरावित्ति सिद्धगइ नामधेयं ठाणं संपत्ताणं ॥ तथा संमतिग्रंथे ॥ अह सुइय सयल जगसिहर मरुव निरुवम सहाव सिद्धिसुहं ॥ अनिहण मव्वावाहं तिरियणसारं अणुह-वंति ॥ १ ॥ एहवां सुख पामे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

आणा ईश्वरता निर्भयता,

निर्वाछकतारूप जी ॥

भावस्वाधीन ते अव्यय रीतें,

एम अनंतगुण भूप जी ॥शी०॥७॥

अर्थः—तथा प्रभुताना लिंग आणादिक छे, ते कहे छे. बीजानी आज्ञा तो स्वार्थें तथा भयथी कोइ माने, अने प्रभु श्रीअरिहंतनी आज्ञा तो सहेजें कोइ द्रव्य लोपतुं नथी, तथा जे लौकिक प्रभुताना धणी, तेतो पौद्गलिक मानोपेत संपदाना धणी छे, अने श्रीर्थकर तो जगदुपकारी अनंत सहज संपदाना ईश्वर छे तेथी ईश्वरता अद्भुत छे. बीजा राजादिक तो मात्र पोताना सेवकोथीज भय पामे नहीं, परंतु परचक्र तथा मरणादि भय सहित छे. अने माहारो परमेश्वर निर्मलानंद कारण शुद्ध देव तो सर्वकाल सर्वभय रहित छे, स्व अखंड अविनाशी संपदा परमनिर्भयतावंत छे, तथा जगत्मां इंद्र,

चंद्र, चक्रवर्ति, ते तृष्णाने उदर्ये इच्छादोषमयी छे, इच्छाथी संपदा अपूर्ण छे, अने श्रीवीतराग तो स्वसंपदापूर्ण प्रागभावना भोगी छे, तेथी समस्त परसपदाने अवांछे, माटे निर्वन्धकतामयी छे. वली श्रीप्रभु परमात्मा तेहना जे भाव केतां भावधर्म शुद्धचिदानंदादिक, ते सर्वस्वाधीन छे. पराधीन नथी वली ते अव्यय केतां अविनाशीपणे ध्वंसरहित छे. ए रीते अनंतगुण जे पूर्वे कहा तेना राजा छे ॥इति सप्तम गाथार्थः॥

अव्यावाध सुख निर्मल ते तो,

करणज्ञाने न जणाय जी ॥

तेहज एहनो जाणंग भोक्ता,

जे तुम समगुण रायजी ॥ शी० ॥ ८ ॥

अर्थः—हे प्रभुजी ! जे अव्यावाध अतींद्रिय सुख ते अनंतं स्वभोगीपणे तमे भोगवो छो, ते अव्यावाध सुखनुं ज्ञान केतां जाणपणुं ते करण केता इंद्रियोने आधीन जे मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान छे, तेणें करी जणाय नहीं, तथा अवधि मनःपर्यवज्ञान ते यद्यपि इंद्रियोने आधीन नथी, तो पण ते रूपीभावना जाणंग छे, पण जीवस्वरूपने जाणी शके नहीं, जे माटे क्षयोपशमज्ञाने अव्यावाधनुं स्वरूप जाणुं न जाय, पण जे जीव तुम्ह समान गुणना राय केतां स्वामी थया, तेहज परमात्मा, ए अव्यावाध गुणनुं स्वरूप जाणे, तथा भोगवे, वीजाने प्रगट नथी, केमके आत्मधर्म अतींद्रिय छे माटे तेहना भोगी सिद्ध भगवंत छे, वीजाथी ए भोगवाय नहीं ॥ ८ ॥ इति ॥

एम अनंत दानादिक निजगुण,

बचनातीत पंडूर जी ॥

वासन भासन भावें दुर्लभ,
प्रापति तो अति दूर जी ॥ शी० ॥ ९ ॥

अर्थः—एम अनंता दानादिक केतां दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सिद्धत्व प्रमुखगुण, हे प्रभुजी ! ताहरे प्रगट छे, ते वचनने गम्य नथी, पंडूर केतां मोहोटा छे, एहवा आत्मगुणानी वासन केतां श्रद्धा, भासन केतां जाणपणुं, ते पामवुं दुर्लभ छे, तो प्रगटपणे एहवी सिद्धता पामवी सिद्धतानी प्राप्ति थवी तेतो घणीज वेगली छे ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

सकल प्रत्यक्षपणे त्रिभुवनगुरु,
जाणुं तुम्ह गुण ग्राम जी ॥
वीजुं कांहीं न मागुं स्वामी,
एहि करो मुज काम जी ॥शी०॥१०॥

अर्थः—हे त्रिभुवनगुरो ! ताहरी गुणसंपदा अनंती ते सर्व हुं प्रत्यक्षपणे जाणुं एहीज मागुं छुं, एहीज इच्छा छे, माहरे एहीज काम छे, जे ताहरी संपदा ते केवलीने प्रत्यक्ष छे, माटे केवल ज्ञान मागुं छुं. परंतु हे प्रभुजी ! हुं वीजुं कांहि पण मागतो नथी ॥ १० ॥ इति दशम गाथार्थः ॥

एम अनंत प्रभुता सर्द्धहतां,
अर्चे जे प्रभु रूप जी ॥
देवचंद्र प्रभुता ते पामे,
परमानंद स्वरूप जी ॥शी०॥११॥

अर्थः—एम अनंती प्रभुनी प्रभुता, परमात्मता, सर्वप्रदेश निरावर्णता अनंत पर्याय, निरावरणता सकलज्ञानादि गुण निरावरणता, तेने सर्द्धहतां समकित गुण प्रगटे, ते प्रभुना गुणानी

बहु मान सहित प्रतीत करतां जे जीव श्रीशीतलनाथ प्रभुना योगे प्रभुने अर्चे, ते प्रभुने अर्चवानो अधिकार श्रीरायप्पसेणी सूत्रमध्ये कहुं छे.

॥ अत्येगइया वंदणवत्तियाए पूयणवत्तियाए सकारवत्तियाए सम्माणवत्तियाए सुअ सुणिस्सामो वागरणं पुच्छिस्सामो अच्चे गइया जिणभत्तिए धम्मोत्ति अत्येगइया जीय मेयंति ॥ ए आलावानी टीकामां अर्थ कर्यो छे, तथा प्रभुजीनो योग न मळे तो प्रभुनी स्थापना ते पण प्रभु समान छे. जे श्रीअरिहंतने वांदवानुं फल सूत्रे कहुं छे ॥ हियाए सुहाए निस्सेसाए अणुगामियत्ताए ॥ अने जिनप्रतिमाने वांदवानुं फल पण एहीज आलावे कहुं छे, तथा साधुने अधिकारें महाव्रत पालवानु फल पण एहीज कहुं, एम सूत्रे अनेक अधिकार कइया छे, ते माटे प्रभुना रूपने पूजवानो मोटो लाभ छे, कोइ द्रव्यहिंसा देखीने भय पामे, तेणें उपयोग देवो जे सूत्रे परजीवनी दयानुं फल शातावेदनी कही छे, अने आपणो आत्मा ज्ञानादिकगुणें जोडीयें, तो भावदया थाय ते मोचहेतु छे, अने भावहिंसा ते हिंसा छे, तथा द्रव्यहिंसा ते भावहिंसानुं कारण छे, परंतु हिंसा नहीं. इहां श्रीभाष्यकारनुं वचन लखे छे ॥

एवमहिंसा भावो, जीव घणंति नयतजिओमिहिय ॥ सत्थो वहय मजीधं, नयजीव घणंतित्तो हिंसा ॥ १ ॥ नन्वेवं सति लोकस्यातीव पृथिव्यादिजीव घनत्वात् हिंसाऽभावः सयतैरपि अहिंसाव्रतमिति निर्वाहयितुमशक्यमिति, माटे पांच थावरचाद रनी बहुलतायें साधुने पण आहार, विहार, वंदन विनय, वैया वच्चादिक करतां अहिंसाव्रत केम रहे ? त्यां कहे छे. जीवा-

कुले लोके अवश्यमेव जीवघातः संभाव्यते जीवांश्च घ्नन् कथं-
 हिंसको न स्यादिति ? उत्तरं. नय घायउत्ति हिंसो, घायतोत्ति
 निस्थिय महिंसो ॥ नविरलजीवमहिंसो, नय जीव घणंति तो
 हिंसो ॥ १ ॥ अहणंतोवि हु हिंसो, दुद्वतणुओ मओ अहिम-
 रोव्व ॥ बाहितो नवि हिंसो, सुद्वत्तणुओ जहा विज्जो ॥ २ ॥
 नहि घातक इत्येतावता हिंस्रः नवा घ्नपि निश्चयमतेन हिंस्रः,
 नापि विरलजीवमित्येतावन्मात्रेणाहिंस्रः पुनः ॥ असुभो जो
 परिणामो, सा हिंसा सोओ वायरनिमित्तं ॥ कोवि अवेखि
 ज्ञनवा, जंम्हाणे गित्तिया वज्जं ॥ १ ॥ असुभ परिणाम हेऊ,
 जीवाबाहो तित्तो मया हिंसा ॥ जस्स उ नसो निमित्तं, संतो-
 विन तस्स सा हिंसा ॥ २ ॥ जीव वधो अशुभपरिणाम हेतुः
 तदा हिंसा यदि अशुभपरिणामहेतुर्न तदा हिंसा न इति ॥
 सदाढओ रइफला, नविय मोहस्स भावसुद्धाओ ॥ जह तह
 जीवाभावो, न सुद्धमणसोविहिंसाए ॥ इति ॥

आगमप्रमाणे द्रव्यहिंसा ते कारणरूप छे, ते विषयकषा-
 यना अर्थीने हिंसा छे, परंतु जिनगुणतुं बहुमान करनारने जि-
 नपूजा कालें पुष्पादिकनी हिंसा ते हिंसानुं कारण नथी, श्री-
 भगवतीसूत्रें पण क्रियाने अधिकारें एमज कथुं छे. वनस्पति
 हणवाना पच्चक्खाणीने पृथ्वी खोदतां थकां वनस्पति हणाय तो
 पच्चक्खाण भांगे नहीं, तो जिनपूजाए जिनस्वरूप अवलंबन
 करतां आत्मगुण निर्मल करे, गुणीने स्मरणें अनेक गुणी
 थया छे, तेमां मुनिने अनुमोदवा योग्य जिनभक्ति, रायप्प-
 सेणीसूत्रें सूर्योभे नाटक कर्युं परंतु गौतमादिक श्रमणगणें दीडुं
 ते सज्जाय जेटलो लाभ हतो, तो ते स्थानकें बेठा रह्या, तेथी
 जिनभक्ति ते मोक्षसाधन छे, एम जे प्राणी जिनना रूपने अर्चे

पूजे, ते सर्वदेवमा चंद्रमा समान श्रीअरिहत देव तेहनी प्रभुता पूर्णानंदमय संपदा पामे, एवं परमानंदनुं कारण श्रीशीतलनाथ प्रभुनुं सेवन छे, ते सर्वजीव करो. अने स्तुति कर्त्ता पण देव-चंद्र छे, तेणें पोतानुं नाम पण सूचव्युं, ए शीतल, प्रभु अनंत गुणी छे, परंतु भद्ररूपणार्थें जे जे गुण जाण्था, ते ते गुणनी स्तवना करवी ॥ ११ ॥ इति शीतलनाथ जिन स्तवनम्. ॥

॥ अथ एकादश श्री श्रेयांसजिनस्तवनं ॥

॥ प्राणी वाणी जिनतणी, तुमें धारो चित्त मझार रे ॥ ए देशी ॥

श्री श्रेयांस प्रभुतणो,

अति अद्भुत सहजानंद रे ॥

गुण एक विष त्रिक परिणम्यो,

एम गुण अनंतनो वृंद रे ॥

मुनि चंदजिहंद अमंद दिणद परें,

नित्य दीपतो सुखकंद रे ॥ १ ॥

अर्थः—श्रीश्रेयांस प्रभू परमेश्वर निष्पन्न निरावरण स्व-स्वरूपभोगीनो अति केतां अत्यंत उत्कृष्ट अद्भुत केतां आश्चर्यकारी सहजानंद केतां अकृत्रिम सहज स्वभावनो आनंद छे. श्रीश्रेयांसप्रभुजी ते जीवद्रव्य छे, साधनरत्नत्रयी परिणमीने सिद्ध थया छे, ते सिद्धपणे असख्यात प्रदेशी, छे, अनंतगुणी छे. अनंतपर्यायी छे, ते प्रभुनो एक एक गुण ते त्रय त्रय परिणतिरूप छे, सर्वद्रव्यनुं अर्थ क्रियाकारीपणु ते गुणपरिणतिथी छे. तेमध्यें असाधारणपणुं विशेषगुणनी मूल्यतायें छे, अने साधारण गुणनी परिणति पण कर्त्ताद्रव्य कर्त्ताने हाथ छे, कर्त्ता

करे तो प्रवृत्ते, कर्त्ता न करे तो न प्रवृत्ते, पांच अकर्त्ता द्रव्यनी गुणपरिणति सदा परिणमे छे, ए रीत छे, अने जीव द्रव्यनी गुणपरिणति, सिद्ध अवस्थायें सदा प्रवर्त्ते छे, पण कारक चक्रना वर्त्तनथी प्रवृत्ते छे, ते माटे आत्मद्रव्यना ज्ञानादिक जे गुण छे, ते त्रिविधें परिणमे छे. ए रीतें त्रिविधता ते करण, कार्य, अने क्रिया, ते गुणनी तेहीज गुणमां छे, ए त्रणे परिणामनो कर्त्ता ते आत्मा छे, तिहां उपादानपणे प्रकृष्ट कारण ते करण, अने ते करणनुं फल साध्य ते कार्य, तथा ते करवारूप प्रवृत्ति ते क्रिया, कर्त्तानो व्यापार ते सिद्धअवस्थायें अभेदरूप छे, जेम ज्ञानगुण ते करण जाणवुं, अने ते ज्ञानगुणथी जे ज्ञेय पदार्थोनुं ज्ञान थाय ते एनुं साध्य फल छे माटे ए कार्य जाणवुं, तथा ते कार्य जाणवाने जे ज्ञाननी स्फुरणा एटले प्रवृत्ति ते क्रिया जाणवी, ए त्रणे अभेद छे, ए त्रिविधपरिणामें परिणम्या, एवा अनंतगुणना वृंद छे, ए श्रीश्रेयांस प्रभुना सर्वगुण व्यक्तपणे स्वकार्यताने करे छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यकं ॥ जं कज्ज कारणाई, पज्जाया वत्थुणो जओ तेण ॥ अन्नेणन्नेण मया, तो कारण कज्ज भयणोज्ज ॥१॥ इति वचनात् ॥

एम कारण कार्य क्रियानी अभेदता पण छे, तथा भेदता पण छे, कालें अभेदता छे, सत्व, प्रमेयत्वे अभेदता छे, अने संज्ञा संख्या लक्षणें भेदता छे, माटे एवी व्याख्या छे ॥ मुनिचंद केतां मुनि जे त्रिकाल अविषयी तत्त्वरमणी ते मांहे चंद्रमासमान अथवा मुनिचंद जिणंद ते जिन सामान्यकेवलीमां चंद्रमा समान, वली अमंद केतां देदीप्यमान दिणंद केतां सूर्य तेनी परें दीपतुं छे, तेज्ज जेनुं तथा सुखकंद केतां सुखनो

समूह छे जेने एहवा श्रीश्रेयांस प्रभु तेहना सर्व गुण व्यक्तपणे-
स्वकार्यने करे छे ॥ १ ॥

हवे आत्माना अनन्ता गुण छे, तेमाहें मुख्य गुण ते
उपयोग छे ॥ सव्वाओ लड्डिओसागारोवउत्तस्स उववज्जह तो
अणगारो वउत्तस्स इति ॥ ते उपयोगमां प्रथम ज्ञानगुण छे.
माटे प्रथम ज्ञानगुणानी त्रिविधता कहे छे. ॥ इति ॥

निजज्ञानें करी ज्ञेयनो,

ज्ञायकज्ञातापद ईश रे ॥

देखे निजदर्शन करी,

निज दृश्यसामान्य जगशि रे ॥ मु० ॥ २ ॥

अर्थः—लोकालोकमा जे वर्त्तमान छे, तथा अतीतकालें
हतुं, अने आगमीककालें थाशे, ते सर्व पोताना भावप्रमेयत्व-
पणा माटे ते ज्ञेय छे, एटले जाणवा योग्य छे, तेहनु जाणवु
ते आत्माना असख्यातप्रदेश निष्ठित ज्ञानगुण छे, ते ज्ञान;
आत्मानो स्वधर्म छे, सर्वविशेषनो जाणंग छे, तेथी निज केता
पोताना ज्ञानगुणें करीने जाणे एटले ज्ञान ते जाणवारूप
कार्यनुं कारण थयुं, उपादानकारण कार्यता एक समय छे, अने
ते जाणवारूप कार्यनी प्रवृत्ति, ते वीर्यने सहकारें क्रिया थाय
छे, जो गुणनी प्रवृत्ति विना जाणवा रूप कार्य मानीयें, तो
दर्शनोपयोग कालें ज्ञानगुणनु निरावरणपणुं छतुं छे, पण
क्रिया विना उपयोग नथी, ते माटे कारणभूत ज्ञानें करी सर्व
ज्ञेयने जाणो छो, पोताना ज्ञानगुणें करी सर्वज्ञेयकना ज्ञायक
केता जाणनार छो. तेथी हे प्रभु ! तमें जाणगपणा माटे ज्ञा-
तापदना ईश छो, स्वामी छो, ज्ञानमयी छो, सर्व जाण छो,
तेथी ज्ञाता छो.

हवे दर्शनगुणनी त्रिविधता कहे छे. हे प्रभुजी तमे ! पोताना दर्शनगुणें करीने निज केतां पोताना दृश्य केतां देखवा योग्य जे सर्व अस्तिकायनी सामान्यता, अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वादि, नित्यत्वाऽनित्यत्वादि, सामान्यपणे जे जगीश केतां संपदा एटले आत्माने विषे अनंती सत्त्व द्रव्यत्वादि सामान्यसंपदा छे, तेने दर्शनगुणें देखे, ते “ दर्शनेन दृश्यभावानां दर्शनं करोति आत्मा ” इहां आत्मा ते देखणहारो दर्शनगुणें करणभूतें देखवा योग्य जे पदार्थ, ते सर्वने देखे छे. एटले देखवुं ते कार्य, दर्शनगुण ते कारण, दर्शनगुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया, देखणहारो आत्मा ते कर्ता, ए दर्शनगुणनुं त्रिविध परिणामन जाणवुं ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

निजरम्यें रमण करो,

प्रभु चारित्रें रमता राम रे ॥

भोग्य अनंतने भोगवो,

भोगे तेणें भोक्ता स्वाम रे ॥ मु० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे चारित्रगुणनी त्रिविध परिणति कहे छे. हे प्रभुजी ! हे परमेश्वर ! हे परमानंद पूर्णानंदी ! ताहरो अनंत आत्मधर्म ते तमने रम्य छे, रमवा योग्य छे; ते शुद्धात्मपरिणतिरूप निजरम्यविषे तमें रमण करो छो. चारित्रगुणें करीने एटले चारित्र गुण करणें स्वरम्यने विषे जे रमण ते रूप कार्य अने चरणगुण प्रवृत्तिरूप क्रिया तेने करो छो. तेमाटे हे प्रभुजी ! तमे रमता राम छो, पोताना स्वरूपमां रमता छो, तेथी स्वरूपरमणी स्वरूपानुभवी स्वरूपविश्रामी छोजी ॥

हवे भोगगुणनी त्रिविधता कहे छे. भोग्य कहेतां भोग-

ववा योग्य जे प्रगट आत्मस्वरूप अनतज्ञानादि गुण, तेहने तमें भोगगुणें करी भोगवो छो, ते केम ? जे भोगातराय कर्मनो क्षय तमने प्रगट थयो, ते भोगगुण तेथें करीने तमें पोतानी भोग्ययोग्य जे अनतात्म संपदा तेहने भोगवो छो, माटे हे स्वामिन् ! तमें भोक्ता छो, जे बीजा जीव क्षयोपशम भोगी पुद्गलादि अशुद्ध परिणतिने भोगवे छे, ते तो अशुद्ध-भोक्ता छे, अने तमे शुद्ध भोक्ता छो, एटले भोगगुणकरणें करीने निजभोक्तापणारूप कार्यने करो छो. भोगगुणनी प्रवृत्ति, ते क्रियाने करवे करीने छे. अत्ता सहावभोई, ते असहावाओ अत्तपरिणामा ॥ इति वाक्यात् ॥ माटे भोक्तागुणना स्वामी छो ॥ ३ ॥ इति तृतीय ॥

देय दान नीत दीजते,

अतिदाता प्रभु स्वयमेव रे ॥

पात्र तुमें निज शक्तिना,

प्राहक व्यापकमय देव रे ॥ मु० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे दानगुण, जे दानांतराय कर्मना क्षयथी प्रगट्यो छे, माटे ते दान गुण तथा लाभगुणनी त्रिविधपरिणति कहे छे. इहां दान ते सिद्धतामा स्वगुणना प्रवर्तनने स्वकीय चायिक वीर्यनी सहकारताजुं देखुं ते दान अने सहकारतानी प्राप्ति जे गुणने थई ते लाभ, ए रीतें दान तथा लाभ प्रवृत्ते छे, देय कहेतां देवा योग्य जे गुण तेहने सहकार ते दान, ते दान नित्य केतां सदा दीजते थके हे परमेश्वर ! तुमें अति दाता छो, अनंतगुणने सहकाररूप अनंतुं दान दीयो छो, स्वयमेव कहेतां पोतार्थीज पोताने आपो छो, एटले दान-गुण ते करण, अने दानगुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया तथा सहका-

रूप दान दीधुं ते कार्य, ए सर्वनो स्वामी आत्मा ते दाता छे, आत्माने ए शुद्ध दान छे, तथा शुद्ध लाभ छे, अने जे परभावनुं देवुं तथा लेवुं तेतो विभाव छे, ते आत्माने घटतो नथी. वली हे स्वामी ! तुमें निज कहेतां पोतानी शक्ति अनंतगुणपर्यायरूप तेहना पात्र केतां आधार छो, तथा ते आत्मशक्तिना ग्राहक तुमें छो, अने ए आत्मशक्तिना व्यापक तन्मयतारूप अवस्थावंत पण तमेंज छो ॥४॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

परिणामी कारज तणो,

कर्ता गुण करणें नाथ रे ॥

अक्रिय अक्षय स्थितिमयी,

निकलंक अनंती आथ रे ॥ मु० ॥ ५ ॥

अर्थः—वली हे देव ! हे परमेश्वर ! तमारा अनेक अभिलाष्य तथा अनभिलाष्य गुण सर्व प्राग्भाव थया, तेहनी त्रण परिणति कहे छे. पारिणामिकपणे जे अव्यावाधादिक अनंतु कार्य, तेहना कर्ता छो, गुणरूपकरणें करीने एटले गुण ते करण अने ते करणनुं जे फल ते कार्य, तथा गुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया, ए करण, कार्य, क्रियाना कर्ता हे नाथ ! तमें छो, जे तुमारुं सर्व पारिणामिकपणुं तेहना तुमेंज कर्ता छो, बीजा द्रव्यमां कर्तापणुं नथी. वली हे प्रभुजी ! तमें अक्रिय छो. क्रिया ते चलयोगीपणे छे, अने सिद्ध तो अचल छे तेथी अक्रिय छो. वली हे प्रभुजी ! तमें अक्षय स्थितिमयी छो. जे आउखानी स्थिति तेतो संयोगीभावनी छे, अने श्रीसिद्ध-भगवंत तेतो सहजगुणी छे, तेथी अविनाशी स्थिति तुमारी छे. वली निकलंक केतां सर्व कर्मकलंक रहित छो, तेथी निरा-

वरणी एवी जे अनंती आथ केतां संपदा तेना तमें धणी छो
॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

परिणामिक सत्तातणो,
आविर्भाव विलास निवास रे ॥

सहज अकृत्रिम अपराश्रयी,
निर्विकल्पने निःप्रयास रे ॥ मु० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे कदाचित् कोई कहेशे जे कोई गुण अधुरो
हशे ? माटे तेने पूर्णता कही देखाडे छे. परिणामिकपणु ते
सत्ता कहेतां छती तेहनो आविर्भाव कहेतां प्रगटपणुं एटले
प्राग्भाव ते अनंतगुणपर्याय निरावरण सकल पुद्गलसंग रहित
थवे संपूर्णसत्ता तिरोभावी हती, ते प्रगट थइ छे, ते प्राग्भावी
सत्ताना विलासना अनुभवनो हे प्रभुजी ! तुं निवास केतां
घर छो. स्वगुणभोगी छो. स्वस्वभावना अनुभवी छो, वली हे
प्रभु ! तुमें सहज केतां स्वभावनो जे मूलधर्म तेना अकृत्रिम
ते पण अपराश्रयी केतां परवस्तुना आधार विना, ते वली
निर्विकल्प केतां मनोचितना विना, ते वली निःप्रयास केतां
प्रयास उद्यम विना जे आत्मधर्म, तेहनो अनुभव ते तमें
भोगवो छो ॥ ६ ॥

प्रभु प्रभुता संभारतां,
गातां करतां गुणग्राम रे ॥

सेवक साधनता वरे,
निजसंवर परिणति पाम रे ॥ मु० ॥ ७ ॥

अर्थः—एहवा प्रभुनी सेवनानुं जे फल थाय, ते कहे
छे. प्रभु जे श्री श्रेयांसनाथनिष्पन्नतत्त्वी निरामयी, निराव-
रणी, तेहनी प्रभुता अनंतज्ञानमयी, सर्वसंवरी अनतानंदरूप

परमेश्वरता, असहायता, सर्वशक्ति निरावरणता, अनंतपर्याय स्वकीयकार्य कर्त्तापणारूप निःकर्मता, निःसंगता, प्रभुत्व, विभुत्व, ग्राहकत्व, व्यापकत्व, आधारत्व, कारकत्व, कारणत्व, कार्यत्व, इत्यादि प्रभुता एक एक प्रदेशों अनंतगुण पर्याय प्राग्भाव परिणामन रूप स्वरूपसंपदाने संभारतां, चित्तमां स्मरण करतां, तथा गातां, केतां स्वरयोगें गावतां गुणनो ग्राम समूह करतां थकां, सेवक तत्त्वरुचि आत्मसिद्धतानो अर्थी ते निष्पन्न परमेश्वरना बहुमानथी जीव अनादिनो बाधक, स्वरूप-पराङ्मुख थइ रह्यो छे, ते जीव साधनता ते आत्मस्वरूप निरावरण करवा रूप साधन अवस्था, उत्सर्ग अपवाद समकितथी मांडी अयोगी चर्म समयरूप गुणस्थानारोहण, दोष-त्याग, गुणप्राग्भाव अधिक गुणनी रुचि, पूर्ण तत्त्वनी ईहारूप साधनापणुं पामे, ते निज कहेतां पोतानी संवरपरिणतिने पामी करीने एटले प्रभुगुणउपयोगें वर्त्ततो थको चेतना गुणीना गुणने अनुयायी थाय, तेवा स्वरूपईहारूप दर्शनगुण परिणमे, तेथी पोतानी संवरपरिणतिने पामे, ते जीव तत्त्वताने साधे, अने साधयरसीनी जे साधकता ते परमानंदनुं कारण छे ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

प्रगटतत्त्वता ध्यावतां,

निजतत्त्वनो ध्याता थाय रे ॥

तत्त्वरमण एकाग्रता,

पूरणतत्त्वे एह समाय रे ॥ सु० ॥ ८ ॥

अर्थः—तेहीज भावना कहे छे के आत्माने पोतानी जे संपदा तेतो कर्म आवृत्त छे, ते भासनमां आववी दुर्लभ छे. अने निष्पन्न परमेश्वरनी तत्त्वता तो प्रगट छे, श्रुतोपयोगें

मासनमां आपे. ते माटे प्रगटतच्ची जे श्रीअरिहंत सिद्ध, निरावरण आत्ममंपदा तेने ध्यावतां थकां, जीव पोतानी सत्तागत द्रव्यार्थिक पर्यार्थिक तत्त्वतानो ध्याता थाय छे, द्रव्यत्व तुल्यता माटे. इति ॥ एम स्वतत्त्वने ध्यावतो तत्त्वरमण तथा तत्त्वनी अनुभूति करे, तत्व जे स्वगुणपर्यायरुप ते मध्ये एकाग्रता तन्मयता थाय, तेवारें ए सेवक जे श्रेयास प्रभुनो गुणावलंबी, तेहज पूर्ण तत्त्वरुप तच्ची थई, पूर्णानंद निरावरण स्वस्वभावनी पूर्णताने पामे, पोतानी पूर्णप्राग्भावी तत्त्वतामां सिद्ध बुद्ध थाय. एहज मोक्षनो उपाय छे. इहा भावना कहे छे, के अनादि मिथ्यात्व अमयम कपाययोगहेतुपरिणति गृहीतकर्मविपाक क्वाध्यमान विमंस्वूलात्मशक्तिमतने अनेकात शुद्धात्मस्वरूपनु श्रवण करवुं ते पण दुर्लभ छे, ते जीवने श्री जिनसेवनथी, जिननुं स्वरूप ओळखाय. तेथी स्वरूपरुचि उपजे. पछी स्वधर्मपणा माटे रुचिवंत जीव ते उद्यमें वर्ततो आत्मधर्म निपजावें, अनुक्रमें निर्विकल्प ममाधि भजी, शुद्धात्म पूर्णता पामे. एहीज मोक्षमार्ग छे ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

प्रभु दीठे मुक्त मामरे,

परमात्म पूर्णानंद रे ॥

देवचद्र जिनराजना,

नित्य वंदो पय अरविंद रे ॥ मु० ॥ ६ ॥

अर्थः—ते माटे प्रभु दीठे एटले प्रभुनो स्थापनानिक्षेपो दीठे मुने मामरे केता स्मरणमां आवे. शुं स्मरणमा आवें ? तो के परमात्मा, सिद्ध, भगवान्, अचल, असगी, अभोगी, अयोगी, तेहनो पूर्ण अनंतपर्यायी त्रिकाल अविनाशी आनंद केतां गुणानंदादिक ते सांभरे, अने जे प्रभु स्वरूपाश्रित चेतना

करवी, तेहज पोतानो आत्मा साधवानो परम उपाय छे, ते माटे देव जे निर्ग्रथादिक तेमां चंद्रमा समान जे जिनराज वीतराग श्री श्रेयांस परमेश्वर, तेना पदरूप अरविंद केतां कमल तेने नित्य वंदो, सदा प्रणमो, तथा स्तुतिकर्त्तानुं नाम पण देवचंद्र छे. ते पोताने पण कहे छे, जे श्री अरिहंतना चरण नित्य सेवो, अरिहंतसेवन तेहज संसार महासमुद्र मोहावर्त्त अज्ञानांधकार मिथ्यात्वकर्द्दमग्न जीवने निस्तार पार करवानो पुष्ट उपाय छे. अरिहंत प्रतिमाने आलंबने अनंत जीव पूर्णानंदी थया. वली जे यथार्थ ओलखाणें पुद्गलाशंसा रहितपणे श्री अरिहंतनुं सेवन करशे, ते परमसुख पामशे. एहज शरण त्राण आधार छे ॥ ६ ॥ इति एकादश श्री श्रेयांसजिन स्तवनं संपूर्ण ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादश श्रीवासुपूज्यजिन स्तवनं ॥

हवे प्रभुसेवन जे पूजना तेहना द्रव्यभाव ओलखाववारूप बारमा प्रभु श्री वासुपूज्यजी तेनि स्तुति करीयें छैयें. तिहां नित्तेपा चार लखीयें छैयें १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ भाव. तिहां नामनित्तेपानुं लक्षण गाथाथी कहे छे. पञ्जायाणभिधेयं, ठियममणत्थे पयत्थ निव्विरकं ॥ जा इच्छियं च नाम, जाव दव्वं च पायेणं ॥ १ ॥ तथा थापनालक्षणं ॥ गाथा ॥ जं पुणं तयत्थ सुन्नं, तयमिप्पाएण तारिसागारं ॥ कीर इव निरागारं, इत्तर मियरं च सा ठवणा ॥ २ ॥ द्रव्य लक्षणं ॥ गाथा ॥ दव्वए दुवएदो रव्वयवो, विगारो गुणाणं संदावो ॥ दव्वं भवं भावस्स, भुयभावं च जं जोगं ॥ ३ ॥ अथवा यच्च कारणं तत् द्रव्यं ॥ भूतस्य भाविनो वा, भावस्य हि कारणं तु यल्लोके तत्

द्रव्यं, इत्यादि ॥ भावलक्षणं हरिमद्रपूज्यैः ॥ भावो विवक्षित-
क्रियानुभूतियुक्तो हि विधिः समाख्यातः सर्वज्ञैरिन्द्रादिवद्वंदना-
दिक्रियानुभवात् ॥ इति ॥

ए रीते चार निक्षेपा छे, तथा कोडक नामादि निक्षेपा
उपचारें माने छे, तेहने कहियें जे भिन्न वस्तुने नामादिक
करिए, ते भिन्न छे, परंतु पोत पोतानी वस्तुनां नामादि
चारे ते वस्तुमांज छे, ते माटे कह्यं छे, श्रीजिनमद्रपूज्यैः ॥
इह भावोच्चिय वत्थु, तयत्थ सुन्नेहिं किंच मेसेहिं ॥ नामा-
दश्रो विभागा, जं तेवि हु वत्थुपजाया ॥ इति ॥ यद्यस्मात्
तेऽपि नामादया वस्तुनः पर्याया धर्मा स्तथा ह्यप्रविष्टद्वंद्व-
स्तुन्युच्चरिते नामादयोपि भावविशेषाः ॥ एव वली कह्यु छे.
भावनिक्षेपाने अंते तदेवं भिन्नवस्तुषु विशेषतश्चित्यमानाना
नामादीना प्रधानेतरभावोदर्शितः सामान्यतः पुनश्चित्यमानाना
सर्ववस्तुषु प्रत्येक चतुर्णामप्यमीषा सद्भावः प्राप्यतएवेति दर्श-
यन्नाह ॥ अहवा वत्थुभिहाणां, नाम ठवणाय जो तयागारो ॥
कारणयासेदव्वं, कज्जय वन्न तयं भावो ॥ १ ॥ ए गाथायें
चार निक्षेपा एक वस्तुमा कहा, तथा वली नामादि नयनें
परस्पर विवादें मिथ्यात्पीपणुं पूज्यें कहु छे ॥ एव प्रियति
नया, मिच्छाभिनिपेसओ परोप्परओ ॥ इतिवचनात् ॥ वली
पूज्यनुज वचन छे जे, नामाइभेयसदत्थ, बुद्धिपरिणामभाजओ
नियय ॥ ज वत्थुअत्थिलोए, च उपजायं भय सव्वं ॥ १ ॥
इति ए रीते नामादिक चारे निक्षेप ते वस्तुना स्तपर्याय छे,
एम श्रद्धा करवी. ए निक्षेपानुं स्वरूप निस्तारें श्रीविशेषावश्य-
कमां कहुं छे. तिहांथी ए गाथा लखी छे ॥ इति
प्रशस्तिः ॥

॥ पंथडो निहालुं रे बीजा जिनतणो रे ॥ ए देषी ॥

पूजना तो कीजें रे बारमा जिनतणी रे,
जसु प्रगट्यो पूज्य स्वभाव ॥

परकृतपूजा रे जे इच्छे नहीं रे,

साधक कारज दाव ॥ पू० ॥ १ ॥

अर्थ:—हवे बारमा श्री वासुपूज्य स्वामीनी स्तवना करे छे. हे भव्य जीवो ! तमारे जो आत्माने सुखी करवानुं मन छे, तो बारमा जिन वीतराग श्रीवासुपूज्य पुरुषोत्तमनी पूजना कीजें, एटले सकलगुणनिरावरण, परमचारित्री, परमज्ञानी, अयोगी, अभोगी, अलेशी, अभेदी, असहायी अकषायी, अरूपी, शुद्धस्वरूपी जे सिद्ध, सकलपरभाव अभोगी, पुद्गलोपचाररहित एहवो पूज्यस्वभाव जेहनो प्रगट्यो छे, तेहनी पूजा कीजें, जे भक्तिना रागी नहीं, अने अभक्तिना द्वेषी नहीं, एहवा सर्वज्ञ तेहीज पूजवा योग्य छे ॥ उक्तं च आप्तमीमांसायां ॥ देवागमनभोयान, चामरादिविभूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते, अत स्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥ सूक्ष्मांतरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचित् यथा ॥ अनु मे तत्त्वतोज्ञान, मिति सर्वज्ञशंसितम् ॥ १ ॥ अइसय पाडिहेरा, सव्व कम्म उदयसंभूआ ॥ तेणं न विम्हओ मे, विम्हओ वीयरगते ॥ १ ॥

वली प्रभुनुं पूज्यपणुं कहे छे, जे परकृत देवता मनुष्य गुणरागी थका अनेक प्रकारनी भक्ति, पूजा करे छे, परंतु परमेश्वर, कोइनी पूजा इच्छत-वांछता नहीं, इच्छादोष रहित छे, माटे परभावना संग, तथा परकृतपूजाने वांछता नहीं, ते

पूज्य जाणवा अने साधक जे मोक्षना अर्थी, मार्गानुसारी, समाकृती, देशविरति, संवेगपक्षी मुनिराज, तेहनु कार्य, जे संपूर्णसिद्धता, तेहना दाव केतां उपाय छे, तेहीज निमित्त योगें अनत सिद्ध नित्यना, माटे पोतें पूजना अवांचक, अने पूजे तेहने परमानंद पूर्णता निपजे ॥ १ ॥ इति

द्रव्यथी पूजा रे कारण भावतुं रे,

भाव प्रशस्तने शुद्ध ॥

परम दृष्ट वद्वम त्रिभुवन धणी रे,

वासुपूज्य स्वयं बुद्ध ॥ १० ॥ २ ॥

अर्थः—ते पूजाना वे भेद छे, एक द्रव्यपूजा, बीजी भावपूजा, तिहां न्हवण विलेपनादिक जे नाह्य उपचार, योग समारवाने करियें, ते द्रव्य पूजा जाणवी, तिहां अठार पाप-स्थानक छे, ते सर्व आत्माने दुःखहेतु छे, ते सर्व पलटाववाने पूजामां प्रशस्त राग करियें, ते आत्माने तज्जातीय तजवा योग्य जे कर्म ते कर्म निर्जरवानी नीति छे, माटे जिनपूजा ते संवर छे, तेथी अवश्य करवा योग्य छे, तेमां नाह्यथी जे फूल, केसर प्रमुखनी पूजा ते द्रव्यरूप छे, ते भावपूजा जे गुणगुणी एकत्वता रूप तेहनु कारण छे, माटे द्रव्यनिक्षेपो ते तेहनेज कहियें, के जे भावतुं कारण होय. हवे भावनिक्षेपें पूजा ते वे प्रकारनी छे. प्रथम प्रशस्तभावनिक्षेपें पूजन, बीजुं शुद्धभाव-निक्षेपें पूजन तेहमां भाव ते आत्मानी परिणति, अने प्रशस्त ते गुणी ऊपर राग जाणवो ॥ उक्तं च ॥ गाथा ॥ अरिहंते सुयरागो, रागो सुमृणीसु पवयणोसु य ॥ ए सुपसत्थो रागो, इति वचनात् ॥ तथा चउसररूपयन्मामां कर्तुं छे ॥ सुकयाण

देखाडनार एहवुं उपकारीपणुं श्रीअरिहंतनुं छे, ते उपकारीपणा उपर जे इष्टता, तथा निर्मल कर्म आवरणें रहित केवल ज्ञान, केवल दर्शन, वीतरागता, असंगता, स्वरूप भोगी प्रमुख गुण उपर राग ते पण प्रशस्त राग कहियें. वली सुरमणि सुरघट केतां कामकुंभ तथा सुरतरु केतां कन्धवृच ते सर्व तुच्छ भासे, केमके एतो इहलोकसुखना हेतु, तथा भावअशुद्धताना वधा-रवा वाला छे, तेहने असार जाणीने तुच्छ गणे, अने श्रीअरि-हंतनो राग ते परंपरायें आत्मसुखनो हेतु छे, आत्माना गुणनी वृद्धि करवानुं पुष्ट निमित्त छे, ते माटे श्री जिनराज, परमदयाल, स्वगुणभोगी, महागोप, परमोपकारी, माहरी तच्च संपदाना उपदेशक, ते उपर जे जीवने साची ओलखार्णे राग प्रगटे, ते जीव महाभाग्यवान्, तथा पवित्र जाणवा, जे जीव कामराग, दृष्टिराग, स्नेहरागनी भीड टालीने, श्रीपुरुषोत्तम, परमानंदी श्रीवासुपूज्य प्रभु उपर रागी थयो, तेने धन्य छे. ते महंत जीव, मोहोटा भाग्यनो धणी जाणवो, ए सर्व प्रशस्त रागभाव पूजा कही इति तृतीयगाथार्थः ॥ ३ ॥

दर्शन ज्ञानादिकगुण आत्मना रे,

प्रभु प्रभुता लयलीन ॥

शुद्ध स्वरूपी रूपें तन्मयी रे,

तसु आस्वादन पीन ॥ पू० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे शुद्धभावपूजा कहे छे, तिहां जे आत्माना लयोपशमभावी दर्शनगुण, तथा ज्ञानादिकगुण, ते सर्व प्रभुनी प्रभुताथी लयलीन थया छे, बहुमान श्रीअरिहंतनुं छे, भासन पण अरिहंत गुणनी अनंततानुं छे, रमण श्री अरिहंत गुणना स्वरूप भासननुं छे. अनुभव पण अरिहंत गुणना भासननो

छे, एम जेटली आत्मशक्ति प्रगटी छे, ते सर्व अरिहत गुणने अनुयायी करीने, तन्मयतारूप करे, ते शुद्धभाव पूजा जाणवी ते आवी रीतिः—प्रभृतानो निरधारभासननुं आस्वादन, ते आनंदतायें मग्न रहेवु, शुद्धस्वरूपी परमात्मा तेहनुं स्वरूप जे जे वस्तुधर्म, ते मध्यें तन्मयी थईने, तेना आस्वादाने अनुभवें, पीन केता पुष्ट रहे, ते भावथी भक्ति जाणवी, तथा वंदन नमनादिक ते योग भक्ति जाणवी तथा प्रभु उपर इष्टता ते राग भक्ति जाणवी. तथा हुं सद्गुथी मोटो माहरे अरिहंत परमेश्वर जेवो धरणी छे, हु मोक्षना मार्गने पाम्यो, अने पोताना आत्मगुणने प्रभुनी प्रभृताने अनुयायीपणे वर्त्तवि, एहवो लीन थको रहे, तेहने तत्त्वभक्तिवंत कहिये. एहवा समाकिति, देशविरति, सर्वविरति, जेणें पोतानी मूलपरिणति प्रभुताथी मेलवी छे, आत्मपरिणतिरूपउत्सगे प्रभुनी प्रभृताने रमावी रक्षा छे, महानुभाव छे, ते शुद्धभावपूजावाळा जाणवा ॥४॥ इति चतुर्थं गाथार्थः ॥

शुद्धतस्व रस रगी चेतना रे,

पामे आत्मस्वभाव ॥

आत्मात्मी निजगुण साधतो रे,

प्रगटे पूज्यस्वभाव ॥ पू० ॥ ५ ॥

अर्थः—एम शुद्धनिर्मल तच्ची श्रीअरिहतदेव सिद्ध भगवान् तेहना रसे रंगाणी थकी तेहना गुणनी भोगी जेवारे चेतना थयी, अन्य विकल्प टाली अनुभवभावना सहित प्रभु-स्वरूपे रसीली थइ तेवारे ते चेतना पोताना आत्मस्वभावने पामे, आत्मस्वभावरुचि, आत्मस्वभावोपयोगी, आत्मस्वभावमयी, आत्मानुभवी थयो, एटले उपादानावलंबी अवस्था

पामे; अने जेवारे ए भव्यजीव आत्मावलंबी थाय तेवारे पोताना गुणने साधतो निपजावतो, सम्यक् दर्शनादिक गुणने प्रगट करतो, गुणस्थान क्रमें दोपनी हाणी गुणप्राग्भाव स्वरूपएकत्व स्वरूपानुभवी थतो थको तल्लीनताने निपजाववे पोतानो अनादिकालनो सत्तागतपूज्य स्वभाव तेने प्रगट करे, एटले पहेलां हूं परमपुज्य अनंतगुणी छुं, ए निर्धाररूप सम्यक् दर्शन प्रगटे, स्याद्वादसत्तानुं भासन थाये, पछी जे सत्ता प्रगटी, तेहनो रमण अनुभवरूप चारित्रगुण प्रगटे, पछी निरावरण केवलज्ञान नीपजे, ए परमपूज्य श्रीअरिहंतने पूजवाथी पोतानो पुज्यस्वभाव प्रगटे ॥ ५ ॥

आप अकर्ता सेवार्थी हूवे रे,

सेवक पूरणसिद्धि ॥

निजघन न दिए पण आश्रित लहे रे,

अक्षय अक्षर ऋद्धि ॥ पू० ॥ ६ ॥

अर्थः—श्री वीतराग पोते परजीवना मोक्षना अकर्ता छे, केम जे परकर्तापणुं जीवद्रव्यनो धर्म नथी, तेमाटे पोते परजीवनी सिद्धिना अकर्ता छे, पण श्रीप्रभुजीनी सेवार्थी सेवक जे भक्त, तेहने हुवे केतां थाय शुं थाय तो के संपुर्ण सिद्धता निपजे, निज केतां पोतानो घन जे अनंत ज्ञानादिकगुण ते प्रभु कोइ बीजाने आपता नथी, एटले कोइ पोतानो गुण बीजाने आपे नहीं, अने ते गुण पण पोताना द्रव्यने हुकी बीजामां वर्ते नहीं, अने कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यनो गुण ग्रहे पण नहीं, सर्व द्रव्य पोते पोतानी सत्ताना स्वामी छे, तेमाटे अरिहंत पोते कांइ आपताज नथी परंतु जे अरिहंतने आश्रित सेवे, ते निश्चे अक्षय केतां जेहनो

क्षय न धाय तथा जे विनाश न पामे, तथा अक्षर केतां
स्वरवुं जरवु जेहमां नथी एवी अविनाशी अक्षर अनंत
आत्मसंपदा पूर्णानंदादिक शुद्धि लहे केतां पामे, माटे जिन-
भक्ति तेहीज सिद्धता नीपजाववानो पूर्ण उपाय छे ॥ ६ ॥ इति
षष्ठ गाथार्थः ॥

जिनवर पूजा रे ते निजपूजना रे,

प्रगटे अन्वयशक्ति ॥

परमानंद विलासी अनुभवे रे,

देवचंद्र पद व्यक्ति ॥ पू० ॥ ७ ॥

अर्थः—जे जिनराजनी पूजा भक्ति करवी ते पोताना
आत्मानी पूजना करवी छे, आत्मगुण वधारवा छे, आत्मसं-
पदानी पुष्टि करवी छे, केमजे जिनसेवनाथकी पोताना अन्वयी
गुण जे सहजज्ञानानंदादिक अनंतशक्ति ते पोपे, प्रगटे, निरा-
वरण आय, ते जीव परमानंदनो विलासी थई, अनुभवे केतां
भोगवे, सर्वदेवमा चंद्रमा समान जे पद परमात्मता, पूर्णता,
निरावरणता, निरामयता, तत्त्वभोगता, स्वरूपानंदतारूप, ते-
हनी व्यक्ति केतां प्रगटता, जे कर्माण्ये अनादिनी आवृत छे, ते
कर्मक्षय थये अक्रिय, अनवच्छिन्नता शक्ति प्रगटे, शुद्ध थाये,
ते माटे निष्पन्न जिननी भक्ति ते परमात्मता रूप आत्मसिद्ध-
तानुं कारण छे, ते माटे हे मोक्षार्थी जीवो तमे श्रीवतिराग
अरिहतनी पूजना ते विधि सहित निराभिलापे तत्त्वसाध्यतायें
करो, एहज उत्तम उपाय छे ॥ इति श्रीवासुपूज्यजिन स्तवन ॥

॥ अथ त्रयोदश श्री विमलजिन स्तवनं ॥

॥ दासअरदास सीपरे करे जी ए देशी ॥

विमल जिन विमलता ताहरी जी,

अवर बीजे न कहाय ॥

लघु नदी जिम तिम लंघीयें जी,

स्वयंभुरमण न तराय ॥ वि० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्री विमलनाथ प्रभुजीनी स्तुति कहे छे. हे विमलजिन ! हे परमेश्वर ! ताहरी विमलता केतां तमारी निर्मलता केहेवी छे ? जे समस्तद्रव्यकर्म भावकर्म परानुजायीतादि दोष रहित पणे छे एहवी निर्मलता ते अवर केतां बीजा कोइ छद्मस्थ जीवे न कहाय केतां काहि शकाय नहीं, “सिद्धस्वरूपस्य अनंतत्वात् वाचःक्रमपरिणतत्वात् आयुष्याल्पत्वात्, तेनवक्तुं नशक्यते केन इतिभाष्यवचनात्” ते माटे कहेवाय नहीं तेना उपर दृष्टांत कहे छे. जेम लघु नदी केतां नान्ही नदी तेने जेम तेम लंघीयें, केतां उतरियें, पण असंख्याता कोडी जौजननो स्वयंभुरमण नामा समुद्र, ते कोइ पामर जनथी तयो जाय नहीं, अने प्रभुना गुण तो स्वयंभू रमण समुद्रथी पण अनंत-गुणा छे, ते सर्व वचने कहा जाय नहीं ॥ १ ॥

सयल पुढवी गिरि जल तरु जी,

कोइ तोले एक हथथ ॥

तेह पण तुझ गुणगण भणी जी,

भाखवा नहीं समरथ ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थः—तथा सयल केतां सर्व पृथ्वी, गिरि ते पर्वत, जल ते पाणी, तरु ते वनस्पति, ए सर्वने कोइ एक हाथे

तोले केतां उपाडे एहवो बलवंत पण ते बाल वीर्यवंत होय तेथी ते पण प्रभुजी ! ताहरा गुणना गण केतां समूह तेने माखवा केतां केहवाने समर्थ नहीं, कारण तेहमां बालवीर्यनी शक्ति छे, अने तमारं निर्मळ स्वरूप ते केवलज्ञानी चायकवीर्यवंतने गम्य छे, तेने पण सर्ववचनें गोचर थायज नहीं, तो बालवीर्यवंतथी केम केहेवाय ! इति द्वितीय गाथार्थः ॥ २ ॥

सर्व पुद्गल नम घर्मना जी,

तेम अधर्म प्रदेश ॥

तास गुण धर्म पद्मव सहुजी,

तुझ गुण एकतणो लेश ॥ वि० ॥ ३ ॥

अर्थः--सर्व पुद्गल द्रव्य तथा नम केतां आकाश द्रव्य, धर्म केतां धर्मास्तिकाय द्रव्य, तेमज अधर्मास्तिकायना प्रदेश, एटले ए पंचास्तिकायना प्रदेश अनंता तेहना गुण अनंता ते गुणधर्म नित्यत्वादि ते पण अनंता तेहना पर्याय बली तेहथी अनंतगुणा छे, ते सर्वे मली पण हे प्रभुजी ! ताहरो एक गुण जे केवलज्ञानरूप तेहनो लेशमात्र छे, केम जे ए सर्व पंचास्तिकायना भाव वर्तमान काले छे, अने केवली तो ए सर्वना अतीत, अनागत, अने वर्तमान, ए त्रये कालना पर्याय उत्पाद, व्यय, ध्रुवरूप तेहने एक समयमां जाणे, तथा एथी अनंतगुणा बीजा धर्मने पण एक समयमां जाणे, ते माटे केवलज्ञाननी शक्ति अनंतगुणी छे ॥ उक्त च ॥ विशेषावश्यके ॥ ये हि केवलस्य निःशेषज्ञेयगता विषयभूता पर्यायास्ते ज्ञानाद्वैतवादिनयमतेन ज्ञानरूपत्वादधर्मापत्यैव स्वपर्यायाः प्रोक्ता नतु परपर्यायापेक्षया इत्यविशेषकेवलत्वविरोधो नाशंकनीय इति ॥ इति ॥ ३ ॥

एम निजभाव अनंतनी जी,
अस्तित्ता केटली थाय ॥

नास्तित्ता स्वपरपद अस्तित्ताजी,

तुझ सम काल समाय ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थः—ए रीतें जेम केवलज्ञानगुण अनंतपर्यायी छे, तेम जे केवल दर्शनादिक निज केतां पोताना भाव गुण पर्याय अनंता छे, तेहनी अनंतता केटली थाय छे जे स्वद्रव्य खेत्र काल भाव रूप अस्तित्पणुं ते अनंतुं छे, तेम परपर्याय जे बीजा जीवद्रव्य तथा पुद्गलादि अजीव द्रव्य तेहना प्रदेश, तेहना स्वभाव, तेहना गुण पर्यायनी जे अनंतता ते सर्वनुं नास्तित्पणुं तमारामां छे, ते पण अनंतुं छे, ते ॥ तस्ससपज्जाया, सेसा परपज्जवा सव्वे ॥ इति श्री पूज्यपादाः तथा च हेम स्वरिः ॥ ये यस्य समवेता स्ते तस्य स्व पर्यायाः प्रोच्यन्ते, अस्तित्वेन संबद्धास्ते च अनंता येच धटादिगता आस्य पर्यायास्तेभ्यो व्यावृत्तित्वेन नास्तित्वे नसंबद्धा इति ॥ ए नास्तित्पर्याय ते पण द्रव्यनिष्ठित छे, ते स्वपदे केतां पोताने पदे ज्ञानगुणना अमूर्तत्व, चेतनत्व, सर्ववेत्तत्वाप्रतिपातित्व निरावरणत्वादयः केवल ज्ञानस्यपर्यायाः एम केवल ज्ञानना स्वपर्याय अस्तिरूप अनंता छे, हवे केवल दर्शनादि अनंत गुणना जे पर्याय छे, ते सर्व केवलज्ञानमां नास्तित्पणे रह्या छे, ते जेम केवल ज्ञान अस्तित्नास्तित्पणे छे, तेमज केवल दर्शन तथा चारित्र सुख, अरूपता, अगुरुलघुता, परमदानादि अनंतगुण, ते सर्व पोताना एक द्रव्य निश्चित अनंतगुणनी नास्तित्ताने लीधाथका रह्या छे, तेमज बीजा जीवद्रव्य तथा पुद्गलादिक अजीवद्रव्य ते सर्वना गुणपर्यायनी पण नास्तित्ताने लीधाथका रह्या छे,

एम स्वपदें नास्तिता तथा परपदेपण नास्तिता छे, ते सर्वनास्तितापणो ते द्रव्यमांहेज अस्तितापणे रह्यो छे, नास्तिधर्मनी अस्तिता ते द्रव्यमांज छे, तिहां भावना कहे छे. जे जीवने विषे ज्ञानादिक गुणनी अस्तिता तेम वर्णादिकनी नास्तिता छे. ते वर्णादिकपणु जीवमां नथी पण तेनी नास्तिता जीवमां रही छे, एम तत्त्वार्थमां कह्युं छे ॥ “ यदि परनास्तिताजीवादिषु न स्यात् तदा जीवादीनां परत्वपरिणतिः स्यात् इति ” माटे जीवमां अस्तिपणुं तथा नास्तिपणु तथा ते बेहु अस्तिपणे रह्या छे, उक्तं च विशेषावश्यके.

“ द्विविधं हि वस्तुः स्वरूपं अस्तित्वं च नास्तित्वं च ततो ये यत्रास्तित्वेन प्रतिबद्धा स्ते तस्य स्वपर्यायाः येतु नास्तित्वेन संबद्धास्ते तस्य परपर्यायाः प्रतिपाद्यते इति निमित्तभेदख्यापनपरावेव स्वपरशद्वौ नत्वेकेषां तत्र सर्वथा संबन्धनिराकरणपरौ अतो अस्तित्वेन संबद्धा इति परपर्याया उच्यंते न पुनः सर्वथा ते तत्र न संबद्धाः नास्तित्वेन तत्र संबद्धा इति वचनात् ”

ते माटे नास्तिपणानो वस्तुथी संबन्धज छे, ते स्वपद केता स्वद्रव्यना गुणातरनी विवक्षितगुणमां नास्तिता तथा परपद केतां परद्रव्यना गुणनी नास्तिता ए नास्तिता सर्व वस्तुधर्मे पारिणामिक भावे रही छे, ते सर्व निरावर्णपणे हे श्रीविमल प्रभु ! तमारी परिणामिकतामध्ये तथा कर्तृतामध्ये भोक्तृतामध्ये समकाले केतां प्रतिसमये समाये छे, एटली अनंतता तमारे विषे छे, हे प्रभुजी तमारी निर्मलता ते समकेति जीवने श्रद्धागोचर छे, तथा पूर्वघरने परोक्षभासन गोचर छे, अने केवलीने प्रत्यक्ष छे. ए रीतें अभिलाष्य तथा

अनभिलाषणी अनंतता छे, ते बीजा कोइथी कहाय नहीं, माटे हे नाथ ताहरूं ज्ञान, दर्शन, सुखधर्मनी अनंतता ते जे भव्यजीवने स्याद्वादोपेत भासन प्रतीत गोचर थइ, ते जीवने धन्य छे, तो हे प्रभुजी ! तमारी शी वात कहूं ! तमे तो महापूज्य छौ, महोटा छौ ॥

ताहरा शुद्धस्वभावे जी,
आदरे धरी बहुमान ॥
तेहने तेहिज नीपजे जी,
ए कोई अद्भुत तान ॥ वि० ॥ ५ ॥

अर्थः—हे प्रभुजी ताहरो जे शुद्ध निर्दोष स्वभाव, अनंतानंदादि रूप अक्रिय, अक्षय, तेहने जे आदरे केतां अंगीकार करे, वंदन, सेवन, स्मरण, ध्यानादिकपणे आदरे, वली बहुमान केतां अत्यादरपणे जे ग्रहे, ते साध्यार्थी सेवकनो तेहवोज पोतानो स्वभाव शुद्ध थाय, निःकर्मता नीपजे, प्रभुना जेहवो स्वभाव निर्मल थाय, माटे हे प्रभो ! ए कोई अद्भुततान केतां तत छे जे अरिहंत प्रभुनुं शुद्धस्वरूप चिंतवतां ध्यान करतां, पोतानुं स्वरूप नीपजे, एहिज आश्चर्य छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

तुम प्रभु तुम तारक विभूजी,
तुम समो अवर न कोय ॥
तुम दरिसणथकी हुं तयोजी,
शुद्ध आलंबन होय ॥ वि ॥ ६ ॥

अर्थः—माटे हे श्रीविमलनाथ ! माहरा प्रभु अधिपति तुमेज छौ, वली मुजने संसारमांथी तारवा वाला परमनिर्यामक परमसामर्थवंत तुमे छौ, हे देव ! हे कृपासिंधु ! हे ज्ञानभानु

तुम समान माहरे बीजो कोइ नथी, त्रिभुवन मांहे तमेज
दयाळ छो. हे जगत्पत्सल !! ताहरो दर्शन केतां देखवुं अथवा
दर्शन ते समकित तेने पामे थके हु तयो, संसार समुद्रने ओ-
लंगी पार थयो, ईहां कारण पामे थके भक्तिना हरपे उपचार
वचन कहु, एम शुद्ध निर्मल स्वरूपनो आलंघी थयो थको
हे नाथ ! ताहरा स्वरूपने अवलंबे, में माहारु स्वरूप ओल-
ख्युं, ते ओलख्यायी स्वरूप रुचि उपनी, पछी स्वरूपविश्रामी
अनुभवघ्यानी थये तयो ए भावी कार्यनो वर्तमानारोप नैग-
मनयनु वचन छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

प्रभुतणी विमलता ओलखी जी,

जे करे थिरमन सेव ॥

देवचंद्र पद ते लहे जी,

विमल आनंद स्वयमेव ॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थः—ए रीते प्रभुजीनी विमलता केतां निर्मलता तेने
ओलखीने जे प्राणी थिरमन केतां द्रढमने सेवा भक्ति करे,
ते समकिति, देशविरति सर्वविरति जीव, सर्वदेवमां चंद्रमा
समान पद परमात्मपद लहे केता पामे, अनादि संततिसंयोगी
भावकर्म उपाधिनो क्षय करीने, निर्मल सिद्ध बुद्ध आत्मतत्त्वनी
पूर्णता ते पामे, इहा स्तुतिकर्तानुं नाम षण देवचंद्र छे, ते
सूचव्युं. ए पद कहेवु छे जे मध्ये विमल केतां निर्मल आनंद
ते स्वयमेव केता पोतेज छे, ते पोतानो आनंद पोते भोगवे
एहवा अनंत धम प्राग्भाव रूप श्रीविमलनाथनी सेवना करो,
मोक्षार्थी जीवने श्रीअरिहंत सेवना तेहिज मोडुं कारण छे,
अनादिनी आति टालवानुं पुष्टनिमित्त छे. ॥ ७ ॥ इति त्रयो-
दश श्री विमल जिन स्तवन सपूर्ण ॥

॥ अथ चतुर्दश श्री अनंतजिन स्तवन ॥

दीठी हो प्रभु दीठी जग गुरु तुज ॥ ए देशी ॥

मूरति हो प्रभु मूरति अनंत जिणंद,

ताहरी हो प्रभु ताहरी मुझ नयणे वसी जी ॥

समता हो प्रभु समता रसनो कंद,

सहेजें हो प्रभु सहेजें अनुभव रस लसी जी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे चौदमा प्रभु श्री अनंतनाथजीनी स्तवना करे छे, हे अनंतनाथजिणंद ! ताहरी केतां तुमारी मूरति केतां मुद्रा एटले आकार ते माहारा नयणे केतां नेत्रने विषे वसी छे ! ते मुद्रा केहवी छे तो के समता जे राग द्वेष रहितपणु ते रूप जे रस तेनो कंद छे. वली सहजे प्रयास विना अनुभव स्वभोगीपणुं ज्ञान तेहना रसथी लीन छे तन्मय छे ॥ १ ॥

भवदव हो प्रभु भवदव तापित जीव,

तेहने हो प्रभु तेहने अमृतघन समी जी ॥

मिथ्याविष हो प्रभु मिथ्या विषनीखीव,

हरवा हो प्रभु हरवा जांगुली मनरमी जी ॥ २ ॥

अर्थः—वली भवजे चारगतिरूप संसार, ते रूप दव केतां दावानलना तापे करीने बली रहेला आकुलित जीवोने परम शांतलता करवाने ताहारी मूरति ते अमृतना मेह समान छे, एटले संसारनो ताप तमारा दर्शनथी मटे छे, माटे. वली मिथ्यात्वरूपविष तेहनी खीव केतां घूमि-मूर्छा तेहने हरवाने जांगुली केतां गारुडीना मंत्र समान ताहरी मूर्ति छे ॥ २ ॥ इति० ॥

भाव हो प्रभु भावचिंतामणि एह,

आतम हो प्रभु आतम संपत्ति आपवा जी ॥

एहिज हो प्रभु एहिज शिवसुख गेह,

तत्त्व हो प्रभु तत्त्वालंबन थापवा जी ॥ ३ ॥

अर्थ:—वली हे प्रभु! तुमारी मुद्रा भावचिंतामणी रत्न-समान छे, एटले चिंतामणि रत्न ते इंद्रियसुखनो हेतु छे, ते तो द्रव्य चिंतामणि छे, अने श्रीवीतरागनी मूद्रा ते मोक्षसुखनी हेतु छे, माटे भाव चिंतामणि समान छे, आन्मानी पोतानी अनंतज्ञानादिक संपत्ति आपवाने भाव चिंतामणि रत्न समान छे, माटे एहिज शिव सुखनु घर छे, तत्त्व जे वस्तु-नो मूलधर्म छे, ते स्वरूप आलंबवाने तुमारी मूर्ति श्रेष्ठ कारण छे, ॥ २ इति० ॥

जाए हो प्रभु जाए आश्रव चाल,

दीठे हो प्रभु दीठे संवरता वधे जी ॥

रत्न हो प्रभु रत्नत्रयी गुणमाल,

अध्यातम हो प्रभु अध्यातम साधन सधे जी ॥ ४ ॥

अर्थ:—वली जाय केतां नाश पामे आश्रव केतां नरा कर्म लेवानी चाल नाश पामे, तथा प्रभुजीनी मूर्ति दीठे, सवर-नी वृद्धि थाय, आत्मधर्मरमणरूपता वधे, वली रत्नत्रयी केतां सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र्यरूप जे गुणनीमाला केता निर्मल श्रेणि ते जेहमां छे, एहवो अध्यात्मआत्मस्वरूप, तेहनूं साधन केता नीपजाववानो उपाय ते सधे केतां नीपजे ॥ ४ ॥

मीठी हो प्रभु मीठी छरत तुम्ह,

दीठी हो प्रभु दीठी रुचि बहुमानधी जी ॥

तुम्ह गुण हो प्रभु तुम्हगुण भासन युक्त,

सेवे हो प्रभु सेवे तसु भव भय नथी जी ॥ ५ ॥

अर्थः—हे प्रभुजी ताहरी सूरत केतां थापना जे आका-
ररूप सुंदर मुद्रा दीठी ते घणीज मीठी केतां मिष्ट लागी, पण
केवी दीठी जे रुचि मोक्षाभिलाषयुक्त तथा बहुमान संयुक्त अ-
त्यंत हरषे दीठी, जे आज हुं धन्य कृतपुण्य जेम वसुदेव
हिंडमध्ये कहुं छे. ॥ कोविहु पुत्रविभ्रो, वविभ्रो पुत्रं च भव
सहस्सेहिं ॥ तेणं जिणवरदंशण, लंभोमयंच जे लद्धो ॥ ? ॥
तेथी अहो वीतरागता ! अहोज्ञानता ! अहो उपकारता ! अ-
द्भुतता ! आश्चर्यता जे हुं रंक दीन मोहेंमग्न असंयमीने ए
प्रभु मुद्रानो योग बन्यो, ते घणीज मोटी वात थई, एहवा
बहुमाने दीठी, एहवी अरिहंतमुद्रा ते अरिहंतना केवल ज्ञाना-
दिक गुण जे अनंत चतुष्टय तेहना भासन उपयोग युक्त जे
जीव सेवे, पर्युपासना द्रव्य तथा भावथी करे तेहने भव केतां
संसारनो भय नथी, जे अरिहंतनी भक्ति करे ते संसार भ्रमण
करे नहीं ॥ उक्तं च ॥ इको वि नमुकारो, जिणवर वसहस्स
वद्धमाणस्स ॥ संसारसागराओ, तारेइ नरं व नारिं वा ॥ १ ॥
इति वचनात् ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

नामे हो प्रभु नामे अद्भुत रंग,

ठवणा हो प्रभु ठवणा दीठे उल्लसे जी ॥

गुण आस्वाद हो प्रभु गुण आस्वाद अभंग,

तन्मय हो प्रभु तन्मयतार्ये जे धसे जी ॥ ६ ॥

अर्थ—वली हे प्रभु तमारुं नाम सांभळवाथी अद्भुत
केतां विस्मयभूत रंग उपजे, वली हे देव ! ताहरी परमोप-
कारी थापना दीठाथी उल्लास थाय छे, माटे थापना परमो-

पकारी छे. जे दीठे पोतानुं स्वरूपपणु सांभरे, वली थापनाने निमित्तें गुण जे अनंत चतुष्टयादिक, परम निर्मल यथार्थोप देशादिक वचनातिशय, अशोक वृक्ष, इंद्रध्वजादिक देखीने अमग गुणानुं आस्वादन थाय, ते गुण आम्वादन केवो छे तो के अमग छे, ते कोने नीपजे के जे जीव, तन्मयतापणे श्रीप्रभुना गुणथी घसे, तेहने नीपजे तेनेज इत्यादिक वातोनो आनंद थाय ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥ ६ ॥

गुण अनंत हो प्रभु गुण अनंतनो वृंद,
नाथ हो प्रभु नाथ अनंतने आदरे जी ॥
देवचंद्र हो प्रभु देवचंद्रने आणंद,
परम हो प्रभु परम महोदय ते वरे जी ॥ ७ ॥

अर्थः—एम ज्ञानादिक अनंत गुणना वृंद केतां समूह एहवा नाथ केतां श्री अनंतनाथ स्वामी तेने जे आदरे, उपादेय करे, ते प्राणी देवचंद्र जे स्तुति कर्ता अथवा देवचंद्र ते चोसठ इंद्र तेहने आनंद केतां परमानंदमयी एवो जे परम महोदयवंत मोक्षरूप स्थानक ते भक्तिवंत जीव वरे केतां पामे ए नियामक छे. ए प्रभुजीने सेवतां कर्म क्लेशथी रहित थाय ॥७॥ इति चतुर्दश श्री अनंत जिन स्तवनं संपूर्णम् ॥ १४ ॥

॥ अथ पंचदश श्री धर्मनाथजिन स्तवनं ॥

॥ सफल ससार अवतार ए हुं गणु ए देशी ॥

धर्म जगनाथनो धर्म शुचि गार्हण,

आपणो आतमा तेहवो भाविये ॥

जाति जसु एकता तेह पलटे नहीं,

सुद गुणपञ्जवा वस्तु सत्तामयी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीधर्मनाथ भगवाननी स्तुति करे छे अने आत्मद्रव्यने साधकता बाधकतानो उपयोग आणे छे. तिहां धर्म एहवे नामें पन्नरमा तीर्थकर जगदुपकारी परमतर्ची जग-त्तना नाथ. तेहने परमहितकारी धर्म प्रगट्यो छे, ते आत्म स्वभावी धर्म छे. ॥ उक्तं च ॥ संग्रहण्यां ॥ जो पुण आय सहावो, धम्मोपगिरस इत्यादि अथवा उभयरकंयहेऊ इत्यादि पुनः भावधर्माधिकारे ॥ जीवाणं भावधम्मो, कम्माभावेण जो खलु सहावो ॥ इत्यादि ॥ कम्मविम्मुकसरूवो, अण्णिदियत्ता अत्थिज्जमेज्जाओ ॥ रूवादि विरहतो वा, अण्णाइ परिणाम भावाओ ॥ १ ॥ इत्यादिधर्मस्य स्वरूपं उक्तं ॥

एहवो श्रीधर्मनाथ स्वामीनो धर्म शुचि केतां पवित्र नि-
रावरण परानुयायीपणारहित तेने गाइयें, वारंवार संभारीयें.
तत्त्वप्रगटरूप ते स्तवियें, अने पोतानो आत्मा पण तेहवोज
भावीयें, केतां विचारीयें, एटले जेहवो धर्मनाथस्वामीनो धर्म
छे, तेहवोज अमारो आत्मानो धर्म छे तथाच सिद्धप्राभृत-
टीकायां ॥ जारिससिद्धसहावो, तारिसभावो हु सव्व जीवाणं ॥
तेणं सिद्धंतरूइ. कायव्वा भवजीवेहिं ॥ १ ॥ तथा च तत्त्वा-
र्थटीकायां ॥ जीवोजीवत्वावस्थःसिद्धः इति ते माटे सिद्धपणुं
ते जीवनी पोतानी अवस्था छे, ईहां कोइ पूछे जे सिद्ध तथा
संसारी सकर्मा, समोही, मिथ्यात्वी, असंयमीने तुल्य केम कहो
छो ? तेहने कहे छे. जे वस्तुनी जाती एकता पणे छे, ते कि-
वारें पलटे नहीं. माटे जीव द्रव्यनुं, एहिज धर्म छे जे अना-
दिनो कर्मावर्त्त थयो तो पण पलटे नहीं, स्वजाति मुके नहीं,
तो मारी तथा श्रीधर्मनाथ स्वामीनी जीवनीजाति एक छें,
श्रीठाणांगमां कहुं छे, “ एगेआया ” इत्यादि ते माटे यद्यपि

अत्यंत मोहतीव्र अबोधमां पढ्यो, तो पण जीवत्वपणो संग्रह नये तेवोज छे जे शुद्ध निर्मल गुणपर्यायमयी वस्तुनी सत्ता छे, केमके सर्व पदार्थ गुणपर्याय संयुक्त छे, उक्तंच तत्त्वार्थे “ गुणपर्यायवद् द्रव्यं ॥ इति ॥ ” दव्वंपज्जवविऊअं, दव्ववि-
उत्ता य पज्जवा नत्थि ॥ उप्पाय ठिइमंगाई, दवीय लख्खणं एयं ॥ १ ॥ इति संमतितः गाथा ॥ उप्पज्जंति चयंति, परि-
णमंति गुणाण दव्वाए ॥ दव्वंपज्जवाय गुणा, न गुणपज्जवा एदव्वाए ॥ १ ॥ अपज्जवे जाणणा नत्थी, तथा आवश्यकनि-
र्युक्तौ ॥ गुणाणामासओदव्वं ॥ एगदव्वसिया गुणा ॥ लख्खणं पज्जवाण तु, उमओ निस्सिया भवे ॥ १ ॥ इति उत्तराध्य-
यने ॥ ते माटे जीवादिक वस्तुनी सत्ता, शुद्धगुणपर्यायमयी छे, यद्यपि जीव अशुद्धपरिणामी छे, अने ज्ञानादिक गुणसर्व, कमें आवर्त्त छे, तो पण सत्तार्थे शुद्ध छे, निरामय छे, माटे आपणो आत्मस्वरूप, ते श्रीधर्मनाथस्वामी समान विचारवो एहज तत्वालंबनी थवानो मार्ग छे ॥ १ ॥ इति० ॥

नित्य निरवयव वली एक अक्रियपणो,
सर्वगत तेह सामान्यभावे भणो ॥

तेहथी इतर सावयवविशेषता,
व्यक्तिभेदे पढे जेहनी भेदता ॥ २ ॥

अर्थः—हवे सामान्य विना वस्तुनी छती आधारता नहीं, अने विशेष विना कार्य नहीं, पर्यायप्रवृत्ति नहीं, ते माटे पंचास्तिकाय ते सामान्यस्वभाव अने विशेषस्वभावमयी छे, तिहां सामान्य स्वभावनुं लक्षण कहे छे. जे नित्य अविनाशी तथा नित्य होय, पण आकाशनी परे निरवयव होय, ते माटे

कक्षो जे निरवयव जेहने विभाग अंश नथी, ते पण एकज पण जेमां बेपणो नहीं स्वजातिमां द्विधाभाव नहीं ते एक, पण जाणवारूप अथवा परस्पररूप क्रिया करे नहीं, तेथी अक्रिय, ते पण कोइपर्यायमां व्यापे, कोई पर्यायमां न व्यापे, तेहवा नहीं पण सर्व पर्यायमां व्यापेज ए लक्षण जेहमां छे, तेहने सर्वज्ञ देवें सामान्यस्वभाव कक्षो छे. ए सामान्यलक्षण श्रीविशेषावश्यकें कहुं छे ॥ एगं निश्चं निरवयव, सक्रियं सच्चिदानं च सामं ॥ ए गाथाना व्याख्यानथी जाणवो. तिहां भावना जे नित्यपणुं सामान्य धर्म छे ते पदार्थमां नित्यपणुं सदा छे, ते नित्यपणाने पर्यायप्रदेशरूप अवयव नथी, ते नित्यपणुं सर्व एकज छे, अने जाणवादिक कोई क्रिया करतो नथी, तेथी अक्रिय छे, ते नित्यपणुं प्रदेशमां, गुणमां, पर्यायमां, सर्वमां व्यापक छे, तेथी सर्वगत छे, एटला लक्षणने पहोंचे, ते माटे नित्यपणुं ते सामान्य छे, एम अनित्यत्वादिक पण सर्व सामान्य स्वभावमां जाणवुं. हवे विशेष स्वभावनुं लक्षण कहे छे. ते सामान्यथी इतर केतां बीजा जे सावयव केतां सप्रदेशी अविभागपर्याय संयुक्त अनेक अनित्य सावयव, सक्रिय, ते विशेष स्वभाव जाणवो, पण व्यक्ति जे पदार्थ तथा गुणांतर तेहना भेदे जेहनी भेदता केतां जुदापणुं पडे, एटले सर्वव्यक्तिने विषे विशेषपणुं जुदुं जुदुं छे, माटे विशेषनी सर्वत्र जुदाइ छे, ते विशेष स्वभावमां ज्ञानादिकगुणना भेद जाणवा. ए सामान्यविशेषनुं लक्षण कहुं. ए सामान्यविशेषसत्तामयी द्रव्य छे.

एकता पिंडने नित्य अविनाशता,

अस्ति निज रुद्धिथी कार्यगत भेदता,

भावश्रुत गम्य अभिलाप्य अनन्तता,
मन्यपर्यायनी जे परावर्तिता ॥ ३ ॥

अर्थः—ए सर्व धर्मनाथ प्रभुनो धर्म छे. हवे सामान्य स्वभावनां लक्षण कहे छे. १ प्रथम एकता केतां एक स्वभाव ते जे पिंड केता पिंडपणुं ते द्रव्यना सर्वप्रदेश, गुण, पर्याय, तेहनो समुदाय ते एक पिंडरूप छे, पण, भिन्नरूप वर्ततो नथी, तेने एकस्वभाव कहिये.

२ बीजो नित्य अविनाशता केतां अमंगुरतापणुं ध्रुवपणुं तद्भावाव्यं नित्यं इतितत्त्वार्थवचनात्, ते द्रव्यमां बीजो नित्य-स्वभाव कहिये.

३ त्रीजो सर्वद्रव्यपोताने स्वभावेच्छता छे, पण कोई काले पोतानी अद्विने मूकता नथी, ते द्रव्यमां पोतानी अद्विथी त्रीजो अस्तिस्वभाव कहिये,

४ चोथो भेदस्वभाव ते कार्यगत छे, एटले जे ज्ञाना-दिक गुण ते सर्व पोतपोताना कार्यने करे छे. परंतु एकगुण ते बीजा गुणना कार्यने करतो नथी, ज्ञान ते जाणवारूप का-र्यने करे छे, दर्शन, ते देखवारूप कार्यने करे छे, तथा चारित्र ते रमण्यतरूप कार्यने करे छे भोगगुण ते भोग्यने करे छे, इत्यादिक कार्यना भेदें द्रव्यमा चोथो भेदस्वभावपण छे

५ पांचमो अभिलाप्य स्वभाव छे, ते वचनथी कहि शकाय तेहवा पण आत्मद्रव्यमां अनन्ता धर्म छे, जे भाव श्रुतज्ञाने करी जणाय माटे श्रुतज्ञाननी शक्ति पण अभिलाप्य भाव सीम छे, ते पांचमो स्वभाव छे

६ छहो सर्व द्रव्यमा पर्यायनी परावर्तिता केतां पलट-

णता छे, ते भव्य स्वभाव कहियेँ. ए छ स्वभाव, द्रव्यमां,
गुणमां, पर्यायमां छे, माटे ए छेने सामान्यस्वभाव कहियेँ
॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

क्षेत्र गुणभाव अविभाग अनेकता,

नाशउत्पाद अनित्य परनास्तितता ॥

क्षेत्र व्याप्यत्व अभेद अवक्तव्यता,

वस्तुते रूपथी नियत अभव्यता ॥ ४ ॥

अर्थः—वली सामान्य स्वभाव कहे छे. त्यां पहेलो
अनेक स्वभाव ते जे क्षेत्रना अविभाग प्रदेश तेथी पदार्थ
अनेक स्वभावी छे, तथा गुणाविभाग जे एक एक गुणना अनंता
अविभाग छे, जेम चारित्रना अविभाग संयमश्रेणीमां कह्या
वीर्यना अविभाग योगस्थान अधिकारिं कम्मपयडीमां कह्या
छे, तेमाटे गुणाविभागपणे पण अनेक स्वभाव छे. एक एक
द्रव्यमां अनंतागुण छे, ते वली एकेका गुणमां अनंता गुणावि-
भाग छे, ते अनेक स्वभावता छे, तथा भावविभागें जे पर्याय
धर्म ते ज्ञानादिक गुणना अनंता पर्यायनी सूक्ष्मता गहन छे,
ते पण अनेक स्वभाव छे, एटले क्षेत्रे तथा गुणें अने पर्यायें
सर्व रीतें द्रव्यमां अनेकता छे.

२ बीजो नाश केतां व्यय तथा उत्पाद केतां उत्पाद
ए परिणति ते सर्व द्रव्यमां अनित्य केतां अनित्यस्वभाव छे.

३ त्रीजो पर केतां आपणथी बीजा जे द्रव्य तेहना
धर्म ते अन्यद्रव्यमां नथी एटले एक द्रव्यना जे धर्म ते बीजा
द्रव्यमां न पायीयेँ, ते द्रव्यमां नास्तितता केतां नास्तिस्वभाव छे.

४ चोथो आत्माना सर्व गुणपर्याय ते भिन्नभिन्नकार्य

करे छे, परंतु क्षेत्र केतां भाजन ते सर्वनो आत्मा छे, माटे गुणपर्यायनी अनंतता छे, पण कोई मूलद्रव्यने तजी शकतो नथी, एकक्षेत्रे एकाधारपणे व्याप्यत्त केतां अवगाही रखा छे ते द्रव्यमां अभेदता केतां अभेदस्वभाव छे

५ पांचमो वली वस्तुने स्वरूपे केवल ज्ञानगम्यपणे वचने अगोचर अनंतधर्मात्मक पणे द्रव्यनु अनभिलाप्यपणुं ते अवक्तव्यस्वभाव छे, उक्तं च ॥ श्रीविशेषावश्यके ॥ अभिलाप्य भावेभ्यः अनभिलाप्या अनंतगुणा इति ॥

६ छट्टो अनेक पर्यायनो परावर्त्त छे, पण वस्तुना मूलरूपथी पलटे नहीं, ते रूपेंज रहे छे, ए नियतपणा माटे वस्तुमां अभव्यस्वभाव छे.

ए सर्व स्वभाव सम्मतितर्क तथा धर्मसंग्रहणीना व्याख्यानथी जोवा, ए सामान्यस्वभाव छे ते पदार्थनो द्रव्यास्तिकमूलधर्म छे, एहवा परिणमनपणाथकी सर्व पदार्थ स्याद्वादि कहेवाय छे, जे समयें एक ते समयें अनेक, जे समये नित्य ते समयें अनित्य, जे समयें अस्ति, ते समयें नास्ति, जे समयें भिन्न ते समयें अभिन्न, जे समयें वक्तव्य, ते समयें अवक्तव्य, जे समयें भव्य ते समयें अभव्य इत्यादिक एम वली एक अनेक नित्यानित्यादिक एक एक स्वभावनी सप्तभंगी थायें. तेवा अनंता स्वभावे अनंतीसप्तभंगीयो द्रव्यनेविषे थाय, ते स्याद्वा दरत्नाकरावतारिकामां कहुं छे, जे “नित्यानित्याद्यनंतस्वभावभेदतः प्रतिघर्मे भिन्नाभिन्ना सप्तभंगी एवमनंताः सप्तभंग्यो भवंति इति ॥ ” तथा च श्रीजिनवल्लभसूरिवाक्यं ॥ बहुविह नयभंगं, वत्पुखिचं अखिचं ॥ सदसदनभिलाप्या, लाप्यमेगं, अणोगं ॥१॥

इति ॥ ए स्वभाव महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी स्वकृतद्रव्य-
गुणपर्यायना रासमध्ये समर्थ्या छे, तिहांथी जोई लेवा ॥४॥
इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

धर्म प्राग्भावता सकल गुण शुद्धता,

भोग्यता कर्तृता रमण परिणामता ॥

शुद्ध स्वप्रदेशता तत्त्वचैतन्यता,

व्याप्य व्यापक तथा ग्राह्य ग्राहकता ॥ ५ ॥

अर्थ—हवे विशेष स्वभाव कहे छे. द्रव्यनो धर्म जे
ज्ञानादिक तेहनी प्राग्भावता केतां प्रगटपणुं ते आविर्भावधर्म,
बीजो ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि, सर्व गुणनी शुद्धतायें सर्व
स्वगुणनुं भोगीपणुं ते भोग्यता धर्म तथा कर्तृता केतां कर्त्ता-
पणुं सर्व प्रदेशकार्यानुगत समुदायप्रवृत्ति कार्योत्पादकं कर्तृत्वं
ते धर्मास्तिकायादि द्रव्यने प्रदेशे प्रदेशे चलनादिसहायरूप
कार्यनो थावो, ते भिन्नभिन्न प्रदेशने आश्रयें छे अने जीव-
द्रव्यनुं जाणवा देखवारूप कार्य, ते सर्व, असंख्यप्रदेशना म-
लवाथी छे, ते माटे जीवद्रव्यने विषे कर्त्तापणुं विशेष स्वभाव
छे. वली रमण जे कोईकने विषे रमवुं तथा परिणामिकता जे
परिणामिकपणुं ते शुद्ध स्वदेशीपणुं ते पण विशेष स्वभाव
छे, तथा तत्त्व केतां वस्तुमां मुलधर्म जे चैतन्यता ते पण
विशेष स्वभाव छे, व्याप्य व्यापकपणुं तथा ग्राह्य ग्राहकपणुं
तथा आधाराधेयपणुं संरक्षणपणुं स्वस्वामिभावादिक ए सर्व
विशेष स्वभाव जाणवा. ए रीतें सामान्य स्वभाव तथा विशेष
स्वभाव, ते सर्व श्रीधर्मनाथ परमेश्वरना निर्दोष थया, तेहमां
पण सामान्यस्वभाव तो निर्दोष सदा हता, परंतु पर संयोगे
विशेष स्वभावनो द्विधाभाव थयो हतो, ते हे श्रीधर्मनाथ

प्रभुजी तुमे स्वरूपालंबनी थई करणगुणें जे ज्ञान, दर्शन,
चारित्र, अने वीर्य, तेहने स्वरूपथी एकत्व करी, स्वरूप
प्राग्भाव करी, स्वरूपें कर्या छे, माटे निरामय थया छो ॥५॥
॥ इति पंचम गाथार्थ; ॥

संग परिहारथी स्वामि निजपद लहुं,
शुद्धआत्मिक आनंदपद संग्रह्युं ॥
जहवि पर भावथी हुं भवोदधि वस्यो,
परतणो संग संसारताये ग्रस्यो ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे एहवी अनंत गुण निर्मलता प्रभुजीने जे
रीतें नीपनी, ते रीत कहे छे, हे देव, हे परमेश्वर ! तुमे पुद्ग-
लादिकनो संग सर्वथा परिहार केतां त्याग कयों, तेहथी निज
केतां पोतानु परमपद अव्यावाधानदरूप चिद्रूपावस्थानरूप
लहु, केतां पाम्यो माटे तमे शुद्ध केतां निर्मल आत्मिक केतां,
जे आत्म द्रव्यनो आनंद अव्यावाधादिक ते संग्रह्युं केतां लाधो
अने हे प्रभुजी ! जहवि केतां जो पण हुं परभावथी केतां पर-
भाव निमित्त पामीने परभावरूप परणमीने, वर्त्तमान परानु-
यायी भवोदधि केतां भवसमुद्रने विषे वस्यो छुं, भवनिवासी
थयो छुं, तेथी पुद्गलादिकने संगे संसारता भावथी नवुं नवुं
अध्यवसायीपणुं पामीने द्रव्यथी चारगतिरूप संसारमां संसर-
वापणे करीने ए माहारो आत्मा ग्रस्यो छे, एटले ए संसारे
मुक्षने ग्रास करी लीघो छे, माटे हे देव ! तुमे असंगी, हुं
संगी, तुमे मुक्त, हुं बद्ध, तुमे अकर्मा, हुं कर्माश्रित तुमे स्व-
रूपभोगी, हुं पुद्गलभोगी, तुमे स्वगुणपरिणामि, हु पुद्गलाश्रित
रागद्वेष परिणामि, तेथी हे प्रभु ! माहारे तो माहरी भूलथी
कोइक नवुं जे सत्तामां कर्त्तापणामां, परिणामिकतामा न हतो

ते नीपनो, ए अशुद्धकर्त्तापणुं मे कर्तुं, तेहथी स्वगुण आवरी
ने पुद्गलनो ग्राहक थयो, ते पुद्गलने लेवाथी माहरो आत्मा
पुद्गलभोगी थयो, एटले ताहरे माहरे अंतर पडी गयो, तेथी हुं
संसारी छुं अने तमे सिद्ध ध्येय छो, इति षष्ठ गाथार्थः ॥ ६ ॥

तहवी सत्तागुणे जीव ए निर्मलो,
अन्यसंश्लेष जिम फिटक नवि सामलो ॥
जे परोपाधिथी दुष्टपरिणति ग्रही,
भाव तादात्म्यमां माहसुं ते नही ॥ ७ ॥

अर्थः—तोपण सत्तागुणे द्रव्यास्तिक संग्रह नये ए
माहरो जीव निर्मल छे, निष्कलंक छे, असंगी छे, अरूपी छे.
कोण दृष्टांते ? जेम श्यामादिक पुटसंयोगे फटिक रत्ननो दल
श्याम दीठामां आवे छे परंतु फटिक कांइ श्याम थयो नथी,
पण अपरीक्षक लोक तेने श्याम जाणे छे, पण जाते जेहवो
हतो तेहवोज छे, तेम कर्मसंगे आत्मा अशुद्धरूप देखाय छे,
परंतु तत्त्वज्ञानी एने जाते निर्मलज जाणे छे, तेम श्रद्धावंत
पण निर्मल जाणे छे अने जे परउपाधिथी दुष्टपरिणति कर्म-
कर्त्ता पणारूप ग्रहीने तादात्म्यभावमां तादात्म्यसंबंधे करी छे,
ते सर्व उपाधिकभाव माहरो नथी, संयोगे संबंध मन्यो छे,
परंतु समवायसंबंधे नथी; जे विभाव ते तदुत्पत्तिसंबंध छे परंतु
तादात्म्यसंबंधे नथी, एम भाववुं ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥७॥

तिणो परमात्मप्रभु भक्ति रंगी थइ,
शुद्धकारण रसे तत्व परिणति मथी ॥
आत्मग्राहकथये तजे पर ग्रहणता,
तत्त्वभोगी थये टले परभोग्यता ॥ ८ ॥

अर्थः—माटे ए विभावपरिणति ते माहरो मूलधर्म नथी, तेथी एने निवारिये, तो जाये तेवारे ए माहरो आत्मा स्वरूपावस्थित थाय. एम विचारी तेहनो उपाय चिंतवे छे. जे ए संसारी आत्मा परानुगत थइ रह्यो छे, तेहने जो हमणां स्वरूपथी जोडीए, तो टकी शके नही, अने परविजातिथी जोड्यो थको बंधने बधारे छे, माटे परस्वजाति जीव जे अ-मोही, शुद्धज्ञानी तेथी जोडीये, तो स्वजाति स्वरूप रंगी थाय. पछी अरिहंतनुं स्वरूप तथा आपणा आत्मानुं स्वरूप तुन्य छे, तेथी तेहना स्वरूपे रसिक थाय, तो पछी कर्मे आवर्यो पण, आत्मस्वरूपनी रुचि उपजे, ते रुचिथी पोताना स्वरूपने सर्दहे, जाणे, रमे, उद्यम करे, परभाव तजे ए अनुक्रमथी संपूर्ण स्वरूप पामे, तेमाटे परमात्मा प्रभु श्रीधर्मनाथजीनी भक्तिनो रंगी थइने शुद्ध कारणने रसे आत्मा तत्त्वपरिणतिमां मग्न थाय, पोतानु आत्मस्वरूप जोये, ध्यावे, संभारे तथा तेहनेज प्रगट करवाना यत्न करे, एवी रीते जेवारे आत्मानो ग्राहक थाय, तेवारे अनादिनी परग्राहकता तजे, केम जे आत्मस्वरूपनो ग्राहक थयो, ते परभावने ग्रहे नहीं, जेटली आत्मपरिणति आत्मधर्मे ग्राहक थइ ते कर्मादिक न ले तेने संवरपरिणति कहिये, बलीतस्वभोगी थये, परभोगीपणुं टले, तेवारे आत्माने भोगवे ॥ ८ ॥

शुद्ध निःप्रयास निजभाव भोगी यदा,

आत्मचेत्रे नही अन्य रचण तदा ।

एक असहाय निस्संग निर्द्वंद्वता,

शक्ति उत्सर्गनी होय सहु व्यक्तता ॥ ९ ॥

अर्थः—जेवारें शुद्ध पुद्गल संगरहित निःप्रयास निज-
भाव केतां आत्मभावना भोगी थयो, तेवारें आत्मप्रदेशें अन्य
केतां पुद्गलकर्म तथा रागादिकुं रक्षण केतां राखवो नथी,
एटले स्वरूप ग्राहक चेतनानुं वीर्य थाये, तेवारे पुद्गल कर्म
आत्मप्रदेशें संबंधीपणे रहे नहीं, सर्व पुद्गलखरीने आत्मा
निःकर्मा थाय, तेवारे एक सर्वसंग रहित, असहायी, निर्द्वंद्व
वत्सर्गनी शक्ति सहित व्यक्तता केतां प्रगटता निरावरणपणुं
पामे ॥ इति नवम गाथार्थः ॥ ९ ॥

तेणें मुझ आत्मा मुझथकी नीपजे,

माहरी संपदा सकल मुझ संपजे ॥

तेणें मन मंदिरे धर्म प्रभु ध्याइयें,

परमदेवचंद्र निज सिद्धि सुख पाइयें ॥ १० ॥

अर्थः—तेथी हे देव ! हे श्रीवीतराग ! तुमारें निमित्ते
माहारो तत्त्व नीपजे, बीजां कोइ उपाय देखातो नथी. माहारा
आत्मानुं सिद्धपणुं ते ताहारा स्वरूपने अवलंबे नीपजे, माहारो
अनंतगुणपर्यायरूप स्वकर्त्तापणुं स्वभोक्तापणुं स्वरूप ऐश्वर्य
सर्व जे मोहाधीन कर्मावृत्त छे, ते मुने संपजे, एटले हुं मा-
हारी अरूपी सत्तागत तत्त्वसंपदानो धणी तथा भोगी, अवि-
नाशीपणे थाऊं, ए प्रभुजीनो परम उपकार जाणुं. ते कारणे
मनमंदिरेने विषे श्रीधर्मनाथ प्रभुने ध्याइए, चण एक बीजी
उपाधिचितविणं नहीं, ए प्रभुना गुण तथा उपगारनुं बहुमाने
ध्यान करियें. नवा साधकने एहिज आधार छे. तेवारे परम
उत्कृष्ट देव जे स्वरूपरमणी मुनि तेहमां चंद्रमा समान जे
परमात्मपदरूप निज केतां पोतानुं सिद्धि केतां निष्पन्नसुख,

अव्याबाधादिक तेने पाड्यें केतां पामियें, एहीज मोक्षनो उपाय
छे, ते माटे श्री अरिहंतनुं सेवन निरनुष्ठानपणे करवुं ॥ १० ॥
॥ इति श्री घर्मजिन स्तवनं संपूर्णम् ॥

॥ अथ षोडश श्री शांतिजिन स्तवनं ॥

॥ आखडीयें मे आज सेत्रुजो दीठो रे ॥ ए देशी ॥

जगतदिवाकर जगतकृपानिधि,

वाहाला मारा समवसरणमां बेठारे ॥

चउमुख चउविह घर्म प्रकाशे,

ते में नयणे दीठारे ॥

भविक जन हरखो रे ॥

निरखी शांति जिखंद ॥ भ० ॥

उपशम रसनो कंद ॥

नहीं इण सरखो रे ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे सोलमा जिन श्रीशांतिनाथ प्रभुनी स्तवना
कहे छे ते प्रभु केहवा छे ? जगतने विषे दिवाकर केतां सूर्यनी
परें ज्ञानेकरी उद्योतना करनार तथा कृपाना निधि एहवा
प्रभुते भुझने परमवल्लभ छे. समवसरणमां विराजमान थका
चार मुखे करी चार प्रकारना घर्मने प्रकाशे केतां उपदेश करता
थका, एवा तीर्थकर देव श्रीशांतिनाथ प्रभु ते में नयणे केतां
आगम श्रवण रूप चक्षुए दीठा. माटे हे भविक जीवो ! तुमें
जिखंद केतां सामान्यकेवलीमां इंद्रसमान एहवा श्रीशांतिप्रभुने
निरखीने हरखवत थाओ. उपशम जे परमधमा तवरूप जे रस

तेनु ए कंद छे, एना तुल्य बीजो कोइ नथी, ए प्रभु परम
शांतरसमयी छे. ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥ १ ॥

प्रातिहार्य अतिशय शोभा ॥ वा० ॥

ते तो कहिय न जावे रे ॥

घूकबालकथी रविकरभरनुं,

वर्णन केणी परे थावे रे ॥ भ० ॥ २ ॥

अर्थः—वली प्रभुनी जे आठ प्रातिहार्यनी तथा चोत्रीश
अतिशयनी शोभा ते मुज सरखा व्यामोहि जीवथी कही
जाय नहीं. दृष्टांत—जेम घूकबालकथी केतां घूवडना बालकथी
रविकर केतां सूर्यना किरणोनो भर केतां समूह तेहनुं वर्णन
केवी रीते थाय ? अर्थात् नहींज थाय, तेम मुज सरखाथी पण
प्रातिहार्यादिकनी शोभा कही जाय नहीं. इति ॥ २ ॥

वाणी गुण पांत्रीश अनोपम ॥ वा० ॥

अविसंवाद सरूपे रे ॥

भवदुःखवारण शिवसुखकारण,

सुधो धर्म प्ररूपे रे ॥ भ० ॥ ३ ॥

अर्थः—वली प्रभुनी जे वाणी तेहने विषे उपमा रहित
पांत्रीश गुण रह्या छे, ते वाणी विसंवादपणार्थी रहित अवि-
संवाद स्वरूपमयी छे, ते वाणीयें करीने भव्यजीवोना भव केतां
संसारना दुःख निवारवाने अर्थे अने शिव केतां मोक्षसुखना
प्रबल कारणने अर्थे सुधो केतां यथार्थ धर्मनीप्ररूपणा श्रीप्रभुजी
समवसरणमां करे छे ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥ ३ ॥

दक्षिण पश्चिम उत्तर दिसिमुख ॥ वा० ॥

ठवणा जिन उपगारी रे ॥

तसु आलंबन लहिय अनेके,

तिहां थया समकित धारी रे ॥ भ० ॥ ४ ॥

अर्थः—ते समसरणमां पूर्वदिशि सन्मुपना वारणें तो श्रीतीर्थकर पोते मुलगेरूपें वेसे, अने दक्षिण पश्चिम तथा उत्तरदिशिने वारणें श्री अरिहंतना प्रतिमावित्र वेसे, ते प्रतिमा-रूप ठगणा जिन केता थापना जिन छे ते उपगारी छे, तेहनुं पण आलंबन पामीने अनेक जन तिहां समसरणने विपे समकित धारी थया, एटले व्रतना लेनार ते पूर्वदिशिना वारणें वेसे, अने बीजा परिपदामध्यें जिनसेवनथी समकितनो लाभ छे, तेथी ए धन्यता छे ते थापनानिक्षेपानो उपगार छे ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥ ४ ॥

पद् नयकारज रूपें ठवणा ॥ वा० ॥

सग नयकारण ठाणी रे ॥

निमित्त समान थापना जिनजी,

ए आगमनी वाणी रे ॥ भ० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे वली विशेष थापनानुं उपगारीपणु तथा सत्यपणुं कहे छे, तेमध्ये श्रीअरिहत तथा सिद्धजी पण आपणा आत्मना निमित्त कारण छे, अने श्रीजिनप्रतिमा ते पण आपणा तत्त्वसाधननु निमित्त कारण छे, तेहमां थापना जिनने विपे अरिहंतसिद्धपणुं छ नयें छे. इहा कोइ पूछे जे अरिहत थया अथवा सिद्ध थया तेहनी थापना छे, तो सात नय मूकीने, छ नय केम कहो छो ? तेहने उत्तर कहे छे जे मूल तो थापनानिक्षेपामध्यें थापना ते त्रण नयें छे “ नाम स्थाप-नाद्रव्यनिक्षेपत्रयनैगमादिनयवर्ति इति ॥ ” अत उच्यते ॥ हवे इहां नामादि एकेरुं निक्षेपाना चार चार भेद थाय छे ॥

उक्तं च भाष्ये ॥ नामादि प्रत्येकंचतूरूपं इति ॥ १ ॥ तेथी प्रथम ए स्थान एहवुं नाम स्थापनामां छे ते स्थापनानो नाम निक्षेपो छे, बीजो ए स्थापना ग्रहण हेतु थाय छे, ते स्थापनानो स्थापना निक्षेपो जाणवो. त्रीजो समुदायता अनुपयोगता ते स्थापनानो द्रव्य निक्षेपो जाणवो. चोथो आगारोभिष्पाओ ए धर्मने कारणिक थापे, ते थापनानो भाव निक्षेपो छे. एम थापना चार निक्षेपे छे, अथवा नत्थिनएहिं विहुणं, सुत्तोअत्थो-यजिणमए किंचि ॥ आसब्जओ सोयारं, नयेनयविसारओ बूआ ॥ १ ॥ इति तेथी श्री अरिहंत तथा सिद्धजीनी स्थापना छे, ते माटे तेहना नय कहे छे.

१ जे स्थापना दिठे अरिहंत सिद्धनो संकल्प स्थापनामां थाय छे, अथवा असंगादि तदाकारता रूप अंश ए स्थापनामां छे, ते नैगमनय थापना.

२ अरिहंत तथा सिद्धना सर्वगुणनो संग्रह बुद्धि धरीने थापना करी छे, ते माटे ए संग्रहनय अरिहंत सिद्धरूप स्थापना छे.

३ अरिहंतना आकारने वंदन नमनादि सर्व व्यवहार श्री अरिहंतनो थाय छे, तेहनुं कारणपणुं ए थापनामां छे, ते व्यवहारनय थापना कहियें.

४ ए प्रतिमारूप थापना देखी, सर्व भव्यने बुद्धिनो विकल्प एहवो उपजे छे, के ए श्रीअरिहंतजी छे ते विकल्पेज स्थापना करी छे ते ऋजुसूत्रनय स्थापना छे.

५ अरिहंतसिद्ध एहवो शब्द “ इदंप्रकृतिप्रत्ययसिद्धं ” इहां प्रवृत्ते छे, ते शब्दनय स्थापना जाणवी.

६ अरिहंतना पर्याय वीतराग, सर्वज्ञ, तीर्थकर, तारक,

जिन पारंगत इत्यादिक सर्व पर्यायनी प्रवृत्ति पण स्थापना मध्ये छे, ते समभिरूढनय स्थापना थइ परंतु केवलज्ञान केवलदर्शनादि गुण, उपदेशकृता ते धर्म, स्थापनामां नथी माटे एवंभूतनयनो धर्म, ते ए स्थापनामां नथी, तेथी ए ठवणा केता थापना ते कार्य केता निष्पन्नता, अरिहंत, सिद्धतारूप ते पद् केतां छ नये छे, एक एवंभूतनये नथी केमके एवभूतनय ते श्रीअरिहत मिद्धने त्रिपेज छे. ते माटे कार्यपणे अरिहत मध्ये पण छ नय छे, इहां स्थापना निचेपमां श्री विशेषावश्यके आदिना त्रण नय कह्या छे, अने इहां छ नय कह्या ते उपचार भावनाएँ कह्या छे समभिरूढनुं लक्षण, वचनपर्यायवर्ति छे, ते लक्षण इहां पोहोंचे छे, ते माटे ए छ नय कह्या.

हवे ए श्री जिनप्रतिमा रूप स्थापना ते समकिति, देश-विरति, मंत्रविरतिने मोक्षसाधननु निमित्त कारण छे, ते निमित्त कारण सात नये छे, ते कारणतो धर्म कर्त्ताने वश छे. ते निमित्तकारणपणुं सात नये छे, ते कहे छे.

१ पहलो संमारानुयायी जीवने ए जिनप्रतिमा दीठे अरिहतनुं स्मरण थाय छे, अथवा जिनवंदने जीवनी सन्मुखता थाय छे, तेवारें सन्मुखतानो जे निमित्त ते नैगमनय निमित्त कारणपणुं छे.

२ जिन प्रतिमा दीठे सर्व गुणनो संग्रह थाय छे, साधकत्तानि चेतनादि सर्वनो संग्रह ते तत्त्वनी अद्भुतताने सन्मुख थाय छे, ते संग्रहनय निमित्त.

३ वंदन नमनादिक साधकव्यवहारनुं निमित्त ते व्यवहारनय निमित्त

४ तत्त्वईहारूप उपयोग समर्थानो निमित्त ते ऋजुसूत्र नय निमित्त.

५ संपूर्ण अरिहंतपणाना उपयोगें जे उपादान ए निमित्तें तत्त्वसाधने परिणाम्यो, ते शब्दनय, थापनानो निमित्त छे, समकित्ती प्रमुखने एहवो.

अनेक रीतें चेतनाना वीर्यनी परिणति, सर्वसाधनताने सन्मुख थइ ते समभिरूढनय स्थापनानुं निमित्त कारणपणुं जाणवुं.

७ ए स्थापनानुं कारण पामी, तत्त्वरुचि तत्त्वरमणी थइने जे शुद्ध शुक्लध्यानमां परिणमे ते संपूर्ण निमित्त कारणता पामीने, उपादाननी पूर्ण कारणता नीपनी, ते एवंभूतनय निमित्त कारणपणुं छे, एटले निमित्त कारणनो ए धर्म छे, जे उपादानने कारणपणे पमाडे, अने उपादान कारण ते कार्यपणे नीपजे. ए रीत छे.

तेथी जिनप्रतिमा ते मोक्षनुं निमित्त कारण छे, ते निमित्त सात नये छे. तेहमां शय्यंभवादिकने शब्दनय सीम, कारण थयुं, अने पुण्यरुचिने व्यवहारनय सीम, निमित्त कारणपणुं थाय. तथा मार्गानुसारी समकित्तिनी आठ दृष्टि जे योगदृष्टि समुच्चयमां कही छे, तेमांनी आदिनी चार दृष्टि वालाने ऋजुसूत्रनय सीम, निमित्त कारणपणुं थाय छे अने पुण्याढ्यादिकने ए जिनप्रतिमा संपूर्ण एवंभूतनयें कारणरूप थई देखाय छे. तेवारें इहां भावनायें ए थयुं जे थापनाने विषे संपूर्ण सात नयरूप निमित्त कारणता छे. पछी कार्यनो कर्ता जिहां सुधी एहने नीपजावे, तेटलो नीपजे, तेथी ए स्थापना ते सगनय केतां साते नयें करी कारणठाणी केतां निमित्त कारणपणानुं स्था-

नक छे, ते थापना श्रीअरिहंत पदना मूल तो द्रव्य अने भाव ए वे निचेपावंत छे, परंतु निमित्त कारणना चार निचेपा सातनय संयुक्त छे उक्तं च ॥ निमित्तस्यापि सप्तप्रकारत्वनय प्रकारेण निमित्तस्य द्वैविध्यं द्रव्यमावात् ॥ तथोपादानस्यऽपि सप्तप्रकारत्वं नयोपदेशात् “ नो अभिहाणमण्यं ” इति वचनात् ॥ नत्थिनएहिं विहुणं, सुत्तं अत्थोय जिणमए किंचि ॥ आसज्जउ सोयारं, नये नयविसारओ वूया ॥ १ ॥ इति ॥ माटे निमित्तपणे स्थापना केतां जिनप्रतिमा अने जिनजीकेता श्रीअरिहंत वेहु समान केता तुन्यत्त छे. एटले विचरता अरिहत तथा तेमनी स्थापना जे मूर्ति, ते वेहु समान केता वरोबर छे, तेथी विचरता अरिहंत तथा तेहनी स्थापना ए वे साधक जीवने निमित्त कारण छे, पण उपादान नथी सर्वमां निमित्तता छे, ए आगम केता सिद्धांतनी वाणी छे, जे अरिहतने पाद्यानु तथा अरिहंतनी प्रतिमाने वादवानुं फल सिद्धातमां सररु कणुं छे, माटे समान छे ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥ ५ ॥

साधक तीन निचेपा मुख्य ॥ वा० ॥

जे विणु भाव न लहिये रे ॥

उपगारी दुग भाष्ये भांस्या,

भावपंदकनो ग्रहिये रे ॥ भ० ॥ ६ ॥

अर्थ—अने, १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य ए त्रण निचेपा ते मानना कारण छे. उक्तं च भाष्ये ॥ अहवा नाम-ठवणा, दव्याइं भावमंगलं गाए ॥ पाएण भावमंगल, परिणा मनिमित्त भावाओ ॥ १ ॥ माटे ए त्रण निचेपा साधक केतां कारण छे, ए त्रण निचेपा विना भावनिचेपो थायज नहीं,

अने नाम तथा स्थापना ए बे निक्षेपा भाष्यने विषे उपगारी कल्या छे, ते कहे छे, जे द्रव्यनिक्षेपो छे, ते पिंडरूप छे, माटे ग्रहवाय नहीं, अने भावनिक्षेपो तो अरूपी छे, ते आघना नाम तथा स्थापना ए बे निक्षेपा विना ग्रहवाये सेवाये नहीं. ते माटे आदिना बे निक्षेपा ते उपकारी छे, उक्तं च ॥ वत्थु-सरूवं नामं, तप्पच्चय हेउओ सधम्मव्व ॥ वत्थु नाणा विहाणा, होज्जा भावोविचज्जासो ॥ १ ॥ वत्थुस्स लरकणंसं, ववहारो विरोहसद्धाओ ॥ अभिहाणाहिणाओ बुद्धिसदो अकिरियाय ॥ २ ॥ इति वाक्यात् नाम्नाः प्रधानत्वं ॥ गाथा ॥ आगारो-भिप्पाओ बुद्धिकिरियाफलं च पाएणं ॥ जह विसइ ठवणाए, न तहा नामे न दब्बिदो ॥ १ ॥ आगारोच्चियमई, सद्वत्थु-किरियाभिहाणाइ ॥ आगारमयं सव्वं, जमणागारा तथा नत्थि ॥ २ ॥ इत्यादि ते माटे नाम तथा थापना ए बे निक्षेपा उपगारी छे, अने मोक्ष साधवामां संवर निर्जरा करवाने तो बंदकनो भाव जे छे ते ग्रहवो, केम जे श्री अरिहंतनो भावनिक्षेपो तो श्री अरिहंतने विषेज छे, ते जो परजीवने तारे तो कोइ जीवने संसारमां रहेवुं पडे नहीं, ते तो थातो नथी, परंतु आपणो भाव अरिहंतालंबनी थाए, तो मोक्षमार्ग लाहिये, ते माटे प्रभुनी थापना तथा नामना निमित्तथी पण साधकनो भाव समरे, तथा नाम तथा थापना ए बेज उपगारी छे, वली समवसरणमां त्रिराजमान श्रीअरिहंत तेहनुं पण नाम तथा आकार; सर्व जीवने उपगारी थाय छे. तेहीज छद्मस्थने ग्राह्य छे, अवलंबिये ते माटे नाम तथा थापना प्रमाण छे, निमित्ता-लंबी रूपी ग्राहकने श्रीजिन थापना ते पुष्ट निमित्त छे ॥ ॥ इति षष्ठ गार्थः ॥ ६ ॥

ठवणा समोसरणे जिनसेति ॥ वा० ॥

जो अभेदता बाधी रे ॥

ए आत्माना स्वस्वभावगुण,

व्यक्तयोग्यता साधी रे ॥ भ० ॥ ७ ॥

अर्थः—ते माटे ठवणा समोसरणें एटले मूलगां समो-
सरण तो श्री जिनराज विचरता हता ते कालें तो ए माहारो
जीव, कोड गत्यंतरमा हतो, ते हमणां आ भवमां समोसरणनी
थापना करी, तिहां जिनमुद्रा देखीने, जिनराजना गुणावलंबी
चेतना करी पछी ते सेवना करतां प्रभुजी सिद्धावस्थारूप परम
अनंतगुणीना स्वरूपथी जे माहरी चेतनानी अभेदता एकत्व
परिणामता ते बाधि केतां वधी, तेवारें ए आत्माने एहवो
अनुमान सध्यो, जे तच्चीदेवथी अभेदपणुं बहुमानपणे भव्युं
तो एम जाणु छु जे ए माहारो आत्म स्वस्वभाव अनंत ज्ञाना-
दिपूर्णानंद गुणनी व्यक्त केतां प्रगटवानुं थयुं तेहनी योग्यता
साधि, एम अनुमाने निरधारी, एटले ए जीव सदा सर्वदा
विषयरंगी हतो, ते तच्ची प्रभु निर्विषयीने रंगे रम्यो, तो कोडक
अवसरें स्वरूपरमणी थारो एहवुं अनुमान थयुं. जो कारणथी
अभेद थयो, तो कारज नीपजावशे ए पलटवापणुं अनंते काले
न थयुं हतुं ते थयुं, तो ए द्रव्यमां पलटवानी योग्यता छे,
अनादिनी चालथी पलटवुं ए भव्यतापणाना लिंगनुं अनुमान
तो थाय छे, एटले भव्यपणुं जणाय छे, ए भक्तिनी बहुलतायें
दर्पनुं वचन छे ॥ ७ ॥

भलुं थयु में प्रभुगुण गाया ॥ वा० ॥

रसनानो फल लीघो रे ॥

देवचंद्र कहे माहारा मननो,

सकल मनोरथ सीधो रे ॥ भ० ॥ ८ ॥

अर्थ:—माटे हे प्रभु !!! आज मुजने भल्लु केतां अत्यंत रूडुं थयुं, जे में प्रभु श्रीसोलमा शांतिनाथ परमात्मा परम शांतरसमयी तेना गुणनी स्तवना करी, तेथी में माहरी रसना केतां रसेंद्रि जे जिव्हा तेनुं रूडुंफल लीधुं एटले रसनानुं सार्थकपणुं थयुं एहवा हर्षसहित देवचंद्रनामा मुनि कहे छे, जे माहारा मननो जे मनोरथ हतो, ते सकल केतां संपूर्णपणे सीधो केतां सिद्ध थयो ॥ ८ ॥ इति षोडश श्री शांतिजिन स्तवनं संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तदश श्री कुंथुजिन स्तवनं ॥

॥ चरम जिणेसरू ॥ ए देशी ॥

समवसरण बेसी करी रे,

वारह परषद माहे ॥

वस्तुस्वरूप प्रकाशता रे,

करुणा कर जगनाहो रे, कुंथु जिनेसरू ॥ १ ॥

निर्मल तुज मुख वाणी रे,

जे श्रवणें सुणे, तेहिज गुणमणिखाणी रे,

॥ कुं० ॥ २ ॥ ए आंकणी ॥

अर्थ:—हवे सत्तरमा श्री कुंथुनाथजीनी स्तवना करे छे, जे श्री कुंथुनाथजी समवसरणमां त्रिगडे बेसीने वारह परषदा मध्ये वस्तु जे छ द्रव्य तेहनां मूलस्वरूपने प्रकाशता, एटले जीवस्वरूपने जीवपणे, अजीवस्वरूपने अजीवपणे, उपादान-

कारणने उपादानपणे निमित्तकारणने निमित्तपणे, शुद्धकार्यने शुद्धकार्यपणे, उपदेश देता तथा द्रव्यथी शुभपरिणति ते कारणरूप तथा भावथी शुभपरिणति ते कार्यरूप अने भाव साधन परिणति ते कारणरूप तथा भावसिद्ध परिणति ते कार्यरूप उपादेय तेहिज करवो. तेहनी रुचिए रेहेवुं एहज साधन छे, एहवो उपदेश करता तथा करूणाकर केतां कृपाना करणहार जगत्रयना नाथ, एहवा श्रीकुंडुनाथ स्वामी, तेहना मुखनी निर्मल वाणी, उपदेशध्वनि, ते जे प्राणी श्रवणे सुणे, तेहिज प्राणी, गुणरूपमाणि रत्ननी खाण छे, एहवा कुंडुनाथ स्वामीने नमो इति ॥ २ ॥

गुणपर्याय अनंतता रे,

बलिय स्वभाव अगाह ॥

नयगम भंग निक्षेपना रे,

हेयादेय प्रवाहो रे ॥ कुं० ॥ ३ ॥

अर्थः—गुण 'ते जे वस्तुना सहभावि धर्म "द्रव्यार्थ-तयानिर्गुणागुणा इतितत्त्वार्थे उक्तत्वात्" ते तथा क्रमभावि उभयाश्रित ते पर्याय, अने द्रव्य, गुण, पर्याय, ए सर्वमां वर्त्ते, तेने स्वभाव कहीये एटले गुणनी अनतता, तथा पर्यायनी अनंतता, अने स्वभावनी अनतता, ए सर्व अगाह केतां अगाध छे, जे अगगाहवाने दोहेली छे. बली नय केतां अनेक धर्मात्मक वस्तुने विषे एकधर्मावलंबन ते नय कहिये ॥ उक्तं च तत्त्वार्थे ॥ अनेकधर्मकदंबकोपेतस्य वस्तुनः एकेन धर्मिण उन्नयनं अपघारणात्मकं नित्यएव अनित्यएव एवंविधनयव्य-पदेशमास्कंदति ॥ एहवा मूल नय सात, अने उत्तर नय सात सय पछी विस्तार बहुल ते, तथा गमा गम्यते इति गमा.

अंशभेदेन अन्यधर्मअभेदेन वस्तुनिरूपणात्मकं वाक्यं गमात्मकं
 उच्यते तथा भंगाः तथा स्याद्वादोपदेशा अस्तित्वादयः
 भंगःस्याद्वादसापेक्षः स्यात् ए अस्तिप्रमुख तथा निक्षेपानामा-
 दिक तेहनी अनेक प्रवाह अनेक भातिना वस्तुधर्म, उपचारधर्म,
 कारणधर्म स्वरूपे उपदेशे, ते वली हेय धर्मना, नय निक्षेप
 भांगा ते हेयरूप कहेता अने उपादेय धर्मना नय निक्षेप, ते
 उपादेयरूप प्ररूपता, एहवी श्री कुंथुनाथजीनी देशना छे, वली
 एक द्रव्यमां गुण अनंता, पर्याय अनंता, स्वभाव अनंता,
 उपदेशे. इहां भावना जे गुणपर्यायने आवरण छे, स्वभावने
 आवरण नहीं. अस्तित्व नित्यत्वादिक जे छे ते मध्ये विशेष-
 स्वभाव विगडे पण सामान्य स्वभाव विगडे नहीं, तथा सर्व
 धर्म नय तथा भंगा अने निक्षेप सहित उपदेश छे, एहवी
 श्रीकुंथुजिननी देशना छे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

कुंथुनाथ प्रभुदेशना रे,

साधन साधक सिद्ध ॥

गौण मुख्यता वचनमां रे,

ज्ञान ते सकल समृद्धो रे ॥ कुं० ॥ ४ ॥

अर्थः—वली श्रीकुंथुनाथ प्रभुनी देशना केहेवी छे. जे
 मध्ये साधन केतां रत्नत्रयी पूर्ण अभेदतारूप निपजाववाना
 उपाय ते जिनमुद्रासेवन मुनिवन्दन अनुकंपादिकथी लही शुक्र-
 ध्यान पर्यंत कह्या छे, तथा मार्गानुसारीथी लही क्षीणमोही
 पर्यंत अपवादें अने उत्सर्गें अयोगी लगे साधक जीव जाणवा,
 तेहनं तारतम्य योग कहे छे. पहलो मार्गानुसारी ते समकेतने
 साधे, अने समकेति ते विरतिने साधे, विरति ते शुक्रध्यानने
 साधे, तथा शुक्रध्यानी द्वायिकगुणने साधे, द्वायिकगुणी सिद्धने

साधे, ए साधकनो क्रम छे, ते सर्व प्रभु देशनामां कहे, तथा सिद्धपणुं मपूर्ण निष्पन्ननिराचरणतापणुं कहे. वशी कुयुनाथ-जीनी देशनामां वचन जे बोलाय ते, अनंता गौणधर्म राखीने जे वचनमां ग्राह्य ते धर्मने मुख्य करी कहे, एटले एक वस्तुमां अनंता धर्म एकममयमां परिणमे छे, ते सर्व एकसमयमां जाणे, परंतु वचनेकरी जे धर्म मुख्य करी कहेवाय तेने मुख्य करी कहे, बीजा सर्व ज्ञानमां गौणपणे जाणे, एम वचनमां गौणपणुं तथा मुख्यपणु छे. पण श्रीकुंयुनाथ स्वामीनुं केवल ज्ञान ते सकल ज्ञेयने जाणवे करी ममृद्धिमान् छे, एटले ज्ञानमां एक हमणा जाणे बीजा पछी जाणशे एम नथी, सर्व भावने ते समयेंज जाणे छे. तेथी ज्ञानमां गौणता मुख्यता नथी, अने वचननुं धर्मक्रम प्रवर्त्तन छे, ते एक कथा पछी बीजो कहेवाय, माटे वचनमां गौणता अने मुख्यता छे ॥ इति चतुर्थ गायार्थः ॥ ४ ॥

वस्तु अनंत स्वभाव छे रे,

अनंत कथक तसु नाम ॥

ग्राहक अवसर बोधयी रे,

कहेवे अर्पित कामो रे ॥ कुं० ॥ ५ ॥

अर्थः—वस्तु जे जीवादिद्रव्य ते अनंतस्वभावमयी छे, सर्व वस्तु अनंतता युक्त छे, तथा वस्तुनो जीव अथवा पुद्गल एहवु जे नाम छे, ते पण अनंतताने फहेतो छे, एटले जीव एवो शब्द उच्चार करतां जीवना अनंता धर्म छे, ते सर्व बोलाणा एम सर्व स्थानके समजवो. माटे जे वस्तुनुं नाम ते ते वस्तुना सर्व धर्मनो ग्राहक छे, तेथीज नामानिचेपामां संग्रह तथा व्यवहार ए बेहु नय मुख्य छे, अने नैगम कारण छे, ए रीत छे.

परंतु ग्राहक जे श्रोता तेहनो जेहवो अवसर होये, तथा श्रोतानो जेहवो बोध केतां जाणपणुं होये, तेहवो वचनमां अर्पित करीने उपदेशे, एटले ज्ञानी तो सर्वने एक समयमां जाणे छे, परंतु उपदेशकालें केवली भगवान् जेहवा श्रोता होय, तेटलो कहे. तेथी केहेवामां अर्पित नय आगल करवानो काम पडे छे, ते अर्पित तथा अनर्पितनुं स्वरूप तत्त्वार्थमां कह्युं छे, “ अनेक धर्माच धर्मात्प्रयोजनवशात्कदाचित् कश्चिद्धर्मोवचनेनार्पिते विवक्षिते तत्तद्वर्णितं सन्नपि वचनविवक्षिते प्रयोजनाभावात् तत् अनर्पितं इति ” जे धर्मापदार्थ, तेहना अनेक धर्म छे, तेहने विषे अवसरे जे धर्म, कहेवानुं प्रयोजन उपजे, ते अवसरे ते धर्मने वचनने विषे अर्पित करीए, विवक्षा करीने ग्रहियें, ते अर्पित जाणवो; अने जे धर्म सत् केतां छतो छे तो पण प्रयोजन विना तेने गवेषे नहीं, श्रद्धामां अपेक्षामां छे ते अनर्पित कहिये. छद्मस्थनुं ज्ञान, तथा बोलवो ते अर्पित अनर्पित वे मल्याज शुद्ध थाये, अने केवलीनुं ज्ञान तो सर्व एक समयें छे, परंतु वचन ते अर्पित अनर्पित मल्या शुद्ध छे ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥ ५ ॥

शेष अनर्पित धर्मने रे,

सापेक्ष श्रद्धा बोध ॥

उभय रहित भासन होवे रे,

प्रगटे केवल बोधो रे ॥ कु० ॥ ६ ॥

अर्थः—जे वचन बोलवाथी शेष रह्या, ते अनर्पित धर्म रह्या, तेहने सापेक्ष श्रद्धा, सम्यक्मद्दहणा, राखनी, बोधज्ञान पण राखवुं ए छद्मस्थ समकिती, देशविरति, क्षीणमोहिपर्यंत

एम जाणवुं अने उभय केतां ए अर्पित अनर्पित वेहुथी रहित जे भासन होवे ते बोध केतां केवलीनु ज्ञान ते सर्वनो ज्ञायक समकाले छे, तेथी तेहमा अर्पित अनर्पितपणुं नथी, वचनमां अर्पितानर्पित छे, परतु जाणवामां नथी ॥ इति ॥ ६ ॥

छति परिणति गुणवर्तना रे,

भासन भोग आणंद ॥

समकाले प्रभु ताहरे रे,

रम्यरमण गुणवृंदो रे ॥ कु० ॥ ७ ॥

अर्थः—वली हे प्रभुजी तमारामा ज्ञाननी, दर्शननी, चारित्रनी, वीर्यनी, सुखनी अरूपतानी, इत्यादिक अनता तमारा गुणरूप धर्म, तेहनी छती छे, तेमज अनंत पर्यायनी पण छती छे. ते स्वद्रव्यादिकपणे सदा सर्वदा छती छे तेम स्वभाव गुणपर्यायनी परिणति परिणामिकता द्रव्यने विषे परिणमवु, ते उत्पाद, व्यय, नुवपणे तथा पद्गुण हानि वृद्धिपणे परिणमे छे, तथा तेहिज ज्ञानादि गुणपर्यायनी वर्तना, ते जे स्वस्वकार्यनो करवापणुं ते ज्ञाने जाणे, दर्शने देखे, चारित्रे रमे, कर्तापणार्थी करे, भोक्तापणार्थी भोगवे, एम सर्वगुण पोतपोताना वर्तनाए वर्तता पोतपोताना कार्यने करे छे ते वर्तना जाणत्री. ए सर्व हे प्रभुजी तमारामां छे अने ते सर्वगुणपर्यायनुं भासन केता जाणवुं ते तमारामा छे. ते सर्वगुणने भोगवो छो ते अनन्तागुणना भोगनो आनंद हे प्रभुजी तमारामा छे, एटले अनंतगुणपर्यायनी छति परिणति अने वर्तना तथा भामन भोग अने आनंद ते समकालें केतां एक समयमां ए सर्व परिणमन छे, माटे एहवा अनन्ता परमानंदना भोगी छो, महा

सुखी छो. वली हे प्रभु! हे सर्वज्ञ ! हे सर्वानंदमयी ! हे नाथ !
हे सुधोपगारी ! तुमे केहेवा छो ? जे रम्य केतां रमवा योग्य
जे अनंतात्मस्वरूप तेहमां रमण केतां रमवुं ते गुणना तुमे
वृंद केतां समूह छो ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

निजभावे सिय अस्तित्ता रे,

पर नास्तित्व स्वभाव ॥

अस्तित्पणे ते नास्तित्ता रे,

सिय ते उभय स्वभावो रे ॥ कुं० ॥ ८ ॥

अर्थः—हवे सप्तभंगीरूपे प्रभुता कहे छे. तिहां कोइक
तो सप्तभंगी एकला पर्यायास्तिक नयनीज कहे छे, तेतो घटे
नहीं. द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक नय द्वयमात्र वस्तु छे, तिहां
स्यात् अस्ति, स्यात्नास्ति, स्यात्अवक्तव्यं, ए त्रण भांगा
सकलादेशी छे, ते द्रव्यास्तिकनयी छे, “ एवं एते त्रयः सक-
लादेशा भाष्यानुसारिणः एवं संग्रहव्यवहारानुसारिणः आत्म-
द्रव्ये विकलादेशा अत्वारः पर्यायनयाश्रया इति तत्त्वार्थे ” शेष
चार ते विकलादेशी छे, तेहनो परमार्थ एम छे जे स्यात्अस्ति
ए भांगामां अस्तित्पणुं वधुं अर्पित छे. बीजो नास्तिधर्म, अव-
क्तव्यधर्म, ते स्यात्पणामां आव्यो, एटले स्यात्अस्ति कद्वाथी
वधुं द्रव्य ग्रहवाय छे, तेमज स्यात्नास्ति तथा स्यात्अव-
क्तव्यं ए भांगामां पण वधुं द्रव्य ग्रहवाय छे, अने १ स्यात्-
अस्ति नास्ति, २ स्यात्अस्ति अवक्तव्यं, ३ स्यात्नास्ति
अवक्तव्यं, ४ स्यात्अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यं, ए चार
भंगा ते वस्तुना अंशने एटले पर्यायने ग्रहण करे छे. तेहनो
भावार्थ ए छे जे प्रथम स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति ए चोथो

भंग छे, तेमा अवक्तव्यं ए धर्म नाव्यो, तो कोइ कहेशे जे स्यात्पदे अवक्तव्यं धर्म लहीशुं. तेने उत्तर जे स्यात्पद ते अस्ति तथा नास्ति ए धर्मनी अनेकाततानो ग्राहक छे, परंतु अवक्तव्यनो ग्राहक नथी अने स्यात् अस्ति अवक्तव्यं ए पांचमो भंगो छे, तेहमां वस्तुनो अस्तिधर्म एकसमयी छे, ते वचनमा कह्या थका उपयोगमां लावतां असंख्याता समय लागे छे. तेमाटे ए अस्तिपणुं अनेकांतपणे छे, परंतु वचने गोचर नथी. एमज स्यात् नास्ति अवक्तव्य, ए छट्ठो भंगो पण भाववो, तथा स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यं, ए भंगामां स्यात् केतां अनेकाते अस्ति केहेतां असंख्याता समय लागे, नास्ति केहेतां पण असंख्याता समय लागे, तेमाटे अवक्तव्यं छे, भेला छे, पण जे रीते वस्तुमां परिणमे छे, ते रीते केहवाता नथी, तेथी ए चार भंगामां सर्व धर्मनुं ग्रहण न थयु तेमाटे ए चार भंगा विकलादेशी छे, पण सकलादेशी नथी. हवे ए साते भंगानुं स्वरूप कहे छे.

१ ए आत्मा वर्तमान समयें ज्ञान दर्शनादि स्वपर्यायनी परिणतिपणे अस्ति छे, एटले अतीतपर्याय तो विनष्ट छे, अनागतपर्याय अनुत्पन्न छे, माटे वर्तमानपर्याय ग्रहण कर्यो, इहा स्यात् ते नास्ति अवक्तव्य धर्मनो अनर्पिततानो द्योतक छे, ए रीते स्यात् अस्ति ए पहेलो भंगो थयो.

२ तथा स्यात् ते कथंचित्पणे गतिस्थितिअवगाहोपकारी वर्णादि अचेतनादि परद्रव्यधर्म तथा पोताना अतीत अनागत पर्याय ते, साप्रतिक वर्तवापणे नथी, ए नास्ति भंगो द्रव्यने द्रव्यपणे राखवारूप छे, नहीं तो कोइ कालें जीव ते अजीवताने पामे, ए स्यात् नास्ति बीजो भंगो थयो.

३ तथा अस्तित्त्वधर्म पण वचने अगोचर छे, अने नास्तित्त्वधर्म पण वचने अगोचर छे, ते वचनगोचर धर्मथी वचन अगोचरधर्म अनंतगुणा छे, ते माटे स्यात्कथंचित्पणे द्रव्यमां अवक्तव्यपणुं छे, एटले उभय नय युगपत् अर्पण करतां सर्वपदार्थ अवक्तव्यपणे छे, माटे ए त्रण भंगा सकलादेशी ते द्रव्यास्तिक नयपणे जाणवा, ए त्रण भंगामां संग्रह तथा व्यवहारनयनी प्रवृत्ति छे, ए स्यात् अवक्तव्यनामा त्रीजो भंगो थयो.

४ तथा चोथो भंग स्यात् अस्तित्त्वनास्ति छे, ते समुच्चयाश्रयी स्वद्रव्यार्थ पर्यायार्थना अस्तित्त्वपणे तथा तेहिज भिन्नोपयोगपणे ते अतीत अनागत परिणामिकपणे नास्तित्त्व छे, ए बे धर्म पोतानाज गवेण्या छे.

५ तथा जे विवक्षित वचनगोचर द्रव्यार्थ मुख्य आत्मधर्मने अपेक्षार्ये अस्ति छे, तेहिज आत्मद्रव्यनो सामान्यविशेषद्वयनी भिन्नप्रवृत्ति धर्म समकाले अंगीकार करतां स्यात् अस्तित्त्व अवक्तव्य ए पांचमो भंगो थयो.

६ छट्टो स्यात्नास्तित्त्ववक्तव्यं ए एमज पांचमानी परे मावन्नो, ए पर्यायनी सूक्ष्मता अनंतताग्रहीने कर्यो ए छट्टो भंग थयो.

७ सातमो स्यात् अस्तित्त्व स्यात्नास्ति युगपत् अवक्तव्यं नामे भंगो छे, ते कोइकद्रव्यार्थविशेष आश्री अस्तित्त्वपर्याय विशेष आश्री जे नास्ति तेहीज स्वदेशे भिन्नपणे अवक्तव्यं ए सर्वपर्याय ते नयनी प्रवृत्ति छे ए सातमो भंग.

ए सप्तभंगी ते नित्य अनित्य भेद अभेदादिक धर्मनी

तथा ज्ञान दर्शनादिक गुणनी सप्तभंगी धाय ते भावे छे, ज्ञान जे छे ते ज्ञायक परिच्छेदकादि स्वपर्यायें अस्ति छे, दर्शनचारित्रादि स्वद्रव्यपर्यायें तथा जडतादि परपर्यायें नास्ति छे, एम अनन्ती सप्तभंगी संभवे, ते युद्धिअंते भाववी. तथा तत्त्वार्थ वृत्तिनें त्रिपे वली सम्मतिवृत्तिने त्रिपे विस्तारथी कही छे, अने स्याद्वादरत्नाकरे एहनुं स्वरूप तथा उपपत्ति, प्रवृत्ति, परिणति, नय सर्व बखाएया छे. तिहांथी जोइ लेजो हवे गाथानो अर्थ लखे छे.

निज केतां पोतानें भावें, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावपणे सीय केता स्यात् कथंचित्पणे अस्ति छे, अने तेहीज द्रव्य, परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावपणे नास्ति छे, ते नास्तिपणुं द्रव्यमा अस्ति केता छतापणे रक्षो छे, वली सीय केता स्यात् कथंचित् उभय केता अवक्तव्य स्वभाव एटले आदि भागो तथा अंतनो भागो संभारता साते भंगा केहेवाणा, एहवी स्याद्वादपरिणति ते हे परमेश्वर तुमे प्रत्यक्ष ज्ञानें सर्वद्रव्यनी जाणीने उपदेश कर्यो, एहवी ताहरी वाणी छे, एरीतें शुद्ध अनंतता, अनेकता, सच्यता, साधकतायुक्त श्री अरिहतनो उपदेश छे ॥ ८ ॥

अस्तिस्वभाव जे आपणो रे,
रुचि वैराग्यसमेत ॥

प्रभु सन्मुख वंदन करी रे,

मागीश आत्म हेतो रे ॥ कुं० ॥ ९ ॥

अर्थः—हो पोतानो मनोरथ कहे छे एहयो जे अस्ति-स्वभाव अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अव्याबाध, पूर्णानंदतारूप, जे माहरो सत्तागत स्याद्वाद उपयोगें ग्रहो तेहनी रुचि

पीपासां करीने, वैराग्य जे संसारथी उदासीपणुं ए संसारीभाव विभावोपाधि माहरे अघटती छे, तेहने केवारें सर्वथी तजुं, एम विषभक्षण तथा तप्तलोह पदधृति समान लागीने उदासीन थयो, मोक्षाभिलाषी केवलज्ञानानंदने अभिलाषे हे प्रभुजी!!! ताहरा सन्मुख उभो रहीने वंदना करीने मागुं छुं, जे हे तारक ! मुजने तार ! तार ! भवभ्रमणाक्षी उगार. ए संसार-जनित दुःख मुझथी हवे खमातो नथी, जे माहरो अनंतो स्वाधीन आनंद ते पराधीन थयो, अने हुं पुद्गलग्राही थयो तेथी तत्त्वभोगी छुं, पण तत्त्वने जाणी शकतो नथी, औदयिकभावरूप अशुद्धपर्यायनी श्रेणिमां पडी रह्यो छुं, अने हवे हे नाथ !!! ताहरे शरणे आव्यो छुं, माटे मुजने माहरो अस्तित्वभाव प्रगटे एहवो आत्मानो हित समकेत दर्शनयुक्त, चारित्रनो प्रसाद करो. एहवो हुं जेवारें भागीश तेहीज दिन धन्य मानीश एहवो मनोरथ करवो ॥ ६ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

अस्ति स्वभावरुचि थयी रे,

ध्यातो अस्तित्वभाव ॥

देवचंद्र पद ते लहे रे,

परमानंद जमावो रे ॥ कुं० ॥ १० ॥

अर्थः—माटे अहो भव्यजीवो तुमें जो सर्व जीव सुखना अर्थी छो तो जे सत्तागत अस्तित्वधर्म, तेहना रुचि अभिलाषी थयीने जे अस्तित्वभावनी अनंतता तेहनेज ध्याता ध्यान करतां थकां सर्व देवमां चंद्रमासमान जे सिद्धपरमात्म-पद ते लहे केतां पामे, अशरीरता, निर्मलानंदता, निःसंगता-रूप परमानंद स्वाधीन आत्यंतिक अव्याबाध सुख तेहनोज

जेहमां जमाव छे, सघन केतां एकीपणु छे, एहवुं पद श्री
प्रभुनी सेगधी पामे, तेमाटे तत्वस्वरूपी, अरूपी, ज्ञानस्वरूपी,
एहमा श्रीकुंधुनाथना चरणनु मेवन करो, हे मव्यजीवो ! एहीज
परम सुखनो हेतु छे. ॥ १० ॥ इति कुंधुनाथ० ॥

॥ अथ अष्टादश श्रीअरनाथजिन स्तवनं ॥

॥ रामचद्रके वाग चापो मोरी रह्यो री ॥ ए देशी ॥

प्रणमो श्रीअरनाथ, शिवपुर साथ खरोरी ॥

त्रिभुवन जन आधार, भवनिस्तार करोरी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे अठारमा श्रीअरनाथ जिननी स्तवना कार-
णता पणे करे छे. प्रणमो केतां वारंवार नमस्कार करो, श्रीअर-
नाथ स्वामीने, एहीज अमोही परमेश्वर वांदवा योग्य छे, शिव
केता निरुपद्रव जे सिद्धता, तेहीज उपमायें पुर केता नगर तिहां
पोहोचाडवाने खरो साथ छे, तेथी सार्थवाहनी उपमा श्रीअरि-
हंतनेज छे, जे निःस्वार्थे भवअटवीमाथी पार करीने मोक्षनग-
रने विषे परमानंदपदे.पहोचाडे एहवा कारणपणें श्रीअरिहंतजी
छे. वली त्रण भुवनना जनने आधार छे. मिथ्यात्व, असंयम
व्ययार्थे पीडितने आधार ओठंमारूप छे. वली चारगाविरूप भव
केता समार तेहमांथी द्रव्यें तथा भायें निस्तारना करणहार
छे. ॥ इति प्रथम गार्थः ॥

कर्ता कारण योग, कारज मिद्विलहे री ॥

कारण चार अनूप, कार्यार्थी तेह ग्रहे री ॥२॥

अर्थः—हवे मोक्षकार्य निपजावया माटे कारण कार्यनी

नीति कहे छे, सर्व कार्य छे, ते कर्त्ताना कीधा थाय छे, तेमां भिन्नकार्यनो कर्त्ता पण भिन्न, जेम घटनो कर्त्ता कूभकार भिन्न छे, अने अभिन्नकार्यनो कर्त्ता पण अभिन्न छे, जेम ज्ञाननो कर्त्ता आत्मा छे, तेम संपूर्ण सिद्धत्वनो कर्त्ता पण आत्माज छे, ते कर्त्ता जेवारें कारणनी योगवायी पामे, तेवारें कार्यनी सिद्धि नीपजाववापणुं लहे, एटले एकलो कर्त्ता ते कारण सामग्री विना कार्य करी शके नहीं, कारण सामग्री मलेज, कार्य नीपजावे ते कारणना चार भेद छे, जे कार्य नीपजाववानो अर्थी थाय, ते चार कारणने ग्रहे. इहां घणा शास्त्रोमां तो कारणना वे भेद कह्या छे. एक उपादान कारण, बीजो निमित्त कारण, अने विशेषावश्यकने विषे समवायिकारण, असमवायिकारण ए नाम कह्यां छे, तथा आप्तमीमांसामां कारण त्रण कह्यां छे, “ समवाय्यसमवायि निमित्तभेदात् ” तेमां समवायि कारण ते उपादान कारण अने असमवायि कारण ते नामांतर असाधारण कारण कहेवाय छे, तथा निमित्त कारणना वे भेद करीयें तेमां एक तो निमित्त कारण बीजुं अपेक्षा कारण ते तत्त्वार्थ टीकामां वखाण्युं छे, तथा अपेक्षाकारणं पूर्वमित्यनेन उच्यते यथा घटस्योत्पत्तावपेक्षाकारणं व्योमादि उपक्षते इति उपेक्षा ” ते माटे यद्यपि कारण, वेमां चारे अंतर्भूत छे, तोपण विस्ताररुचिने भिन्नोपयोगी करवाने चार कारण कह्यां छे. एक उपादान बीजुं असाधारण, बीजुं निमित्त, चोथो अपेक्षा. ए चारे कारण जेवारें कार्यरुचि कर्त्ता ग्रहे, अने जेवारें ए चार कारणने कार्यरुचि कर्त्ता प्रवर्त्तावे, तेवारें ते कारण समजवां, पण कर्त्ताना प्रयोजन विना कारणता नहीं. एम भावना करवी ॥ इति ॥ २ ॥

जे कारण ते कार्य, थाये पूर्ण पदे री ॥

उपादान ते हेतु, माटी घट ते वदे री ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे प्रथम उपादान कारणनु स्वरूप कहे छे, जे कर्त्ताना कार्यने सन्मुख थाय तथा जे कारण तेहीज पूर्णपदे केतां पूर्णता ना अवसरें कार्यरूप थाय तेने उपादान हेतु केतां कारण कहीयें ॥ उक्तं च महाभाष्ये ॥ तद्वकारणं त, तवो-पडस्सेहजण तम्मइया ॥ विवरीय मन्नकारण, मिच्छंओमादओ तस्स ॥ १ ॥ ए गाथाने व्याख्याने यदात्मक कार्य दृश्यते त-दिह तद्द्रव्यकारणं उपादानकारणं यथा तंतवः पटस्य इति एटले जेम तंतु हता ते कर्त्ताने प्रयोगें पट थया, ते उपादान कारण जेम घटरूप कार्य तेहने माटी ते उपादान कारण छे, पछी माटी तेहज घटपणुं पामी, एटले कारण तेहीज कार्यपणुं पाम्यो, इहां कारण कार्यनुं एक समयरूप जे व्याख्यान छे, ते पण उपादान कारणनु छे. एम महाभाष्ये मतिज्ञानाधिकारें जमालि निन्हवना अधिकारें कह्यु छे. इहा कोइ पुछे जे कारण ते कार्य थाये एम कहो छो तो कारण कार्यनुं एकपणुं थाशे? तेहने उत्तर जे अभिधान, फल, लक्षण, संख्या, संस्थानादि-कनो भेद छे, तेथी भिन्न जाणवुं. जेम प्रथम माटी एहवुं नाम हतुं पछी घटनाम थयुं, माटी ते मृदुता, द्रव्यताधर्मघंत हती, घट ते जलाहरण धर्मवत छे, माटे भिन्नता छे, ए प्रथम उपा-दान कारण वताव्युं. इति तृतीयगाथार्थः ॥ ३ ॥

उपादानथी भिन्न, जे विणु कार्य न थाये ॥

न हुवे कारजरूप, कर्त्ताने व्यवसायें ॥ ४ ॥

कारण तेह निमित्त, चक्रादिक घटभावे ॥

कार्य तथा समवाय, कारण नियतने दावे ॥५॥

अर्थ—हवे निमित्त कारणतुं लक्षण कहे छे. जे कारण उपादान कारणथी भिन्न केतां जुदुं छे, अने तेना मन्या विना कार्य थाय नहीं, वली तेहने विपे जे कारणपणुं ते कर्त्ताने व्यवसायें केतां कर्त्ताने उद्यम छे. ते निमित्त कारण कहियें, जेम घटभावे घटकार्य छे तेहने चक्र, चीवर, दंडादिक ते निमित्त कारण छे. अने माटी उपादान कारण छे. ते उपादान कारणथी निमित्तकारण जे चक्र चीवरदंडादिक छे ते सर्व भिन्न छे, अने ए निमित्त मन्या विना माटीनो घट थाय नहीं, तेमज ते चक्रादिक कदापि कोइकालें कार्यपणुं पामे नहीं, अने ए चक्रादिकने जेवारें कर्त्ता जे कुंभकार ते घट करवारूप व्यापारें प्रवृत्तावे, तेवारें एने कारण कहियें, नहीं तो कारणतापणुं कहेवाय नहीं, ते पण समवायिकारण केतां उपादानकारण तेहने नियतनेदावे केतां कर्त्ता जेवारें उपादान कारणने कार्यरूपें करतो होय, तेवारें जे उपगरण कामे लगाडवा, ते सर्व निमित्तकारण कहियें, अने तेज उपगरण. जेवारे कर्त्ता कार्यने करतो न होय, ते वारें तेहने कारण कहियें नहीं, कारणतुंस्वरूप एहवुंज छे. जे कार्यने करे, ते कार्यानंतर अथवा प्रथम अप्रयुक्तकालें जे दंडादिकने कारण कहे छे, ते आरोप मात्र नैगमनयमते जाणवो, परंतु स्वरूपें नहीं. ते माटे कार्यनो जे कर्त्ता, ते उपादान कारणने कार्यरूप करतां तेहमां जे जे उपगरण प्रवृत्तावे, ते ते निमित्तकारण जाणवुं एटले जे जे कार्यनी नियत जे नियामिकी छे ते ते कार्यनां निमित्त जाणवां, जेम घटकार्यने चक्रादिक अने पटकार्यने तुरीव्योमादिक एम सर्वत्र जाणवुं ए निमित्तकारण कछुं ॥ इति चतुर्थपंचम ॥

॥ ४ ॥ ५ ॥

वस्तु अभेद स्वरूप, कार्यपणुं न ग्रहे री ॥

ते असाधारण हेतु, कुंभे थास लहे री ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे असाधारण कारणनुं स्वरूप कहे छे. ते वस्तु जे उपादान कारण तेहथी अभेदस्वरूपे छे, अने कार्यपणुं पामतो नथी, एटले कार्य नीपने ते रहेतो नथी, जेम घटकार्य नीपज्युं तोपण तेमाहे माटीपणुं रहु छे, तेनी परे ते रहेतो नथी, ते असाधारण हेतु केतां कारण कहीयें, जेम घटरूप कार्य करता थास कोश कुशलाकार थाये छे, ते मृदुपिंडरूप कारणथी अभेद छे. परंतु घटरूपकार्य नीपने ते रहेतो नथी, ते माटे ए सर्व असाधारण कारण जाणवा, उक्तं च “ प्रमाणनिश्चयेन उपादानस्य कार्यत्वाप्राप्तस्य अर्वांतरावस्था असाधारणं ” इति पट्टगाथार्थ. ॥ ६ ॥

जेहनो नवि व्यापार, भिन्न नियत बहुभावी ॥

भूमी काल आकाश, घट कारण सद्भावी ॥७॥

अर्थ—हवे अपेक्षाकारण कहे छे, जे कारणनो व्यापार प्रवर्तन नथी, तथा कर्त्ताने पण ते मेलववानो प्रयाम करवो पडतो नथी, अने कार्यथी भिन्न केतां जुदो छे, तथा नियत केता नियमा निश्चै ते जोइयें, अने बहुभावी केता अनेक बीजा सर्व कार्यमा भावी छे, ए रीतें कारणीक छे, ते अपेक्षाकारण कहीयें, जेम भूमी तथा काल तथा आकाश ए विना कोई घटादि कार्य थतुं नथी, अने भूमी प्रमुख जेम घटनुं कारण छे, तेम अन्य बीजा कार्योनुं पण कारण छे, पण घटनुं कारणपणुं पण छतुं छे, वली कर्त्ता जेम उपादान तथा निमित्त कारणनो व्यापार करे छे, तेम एनुं प्रवर्तन करवो नथी ॥ ७ ॥

एह अपेक्षा हेतु, आगम मांहे कह्यो री ॥

कारणपद उत्पन्न, कार्य थये न लह्यो री ॥ ८ ॥

अर्थ:—तेथी ए अपेक्षा हेतु केतां कारण आगममां तथा तत्त्वार्थादिक ग्रंथोमां कहुं छे. “यथा घटस्योत्पत्तौ अपेक्षा कारण व्योमादि अपेक्षते तेन विना तदभावाभावात् ॥ निर्व्यापारमपेक्षाकारण मितितत्त्वार्थवृत्तौ ” ॥ तथा विशेषावश्यकेश्चावश्यकेश्चावधिज्ञानाकारं “ इहां द्वारभूत शिलातलादि द्रव्यानुत्पद्यमानस्यावधिः सहकारकारणानि भवंति अत्र सहकारकारणंगवेष्यं इति ” ए चार कारणनुं स्वरूप कहुं. हवे कारणपद केतां जेहमांहे कारणपणुं ते छतो मूलगो धर्म नथी, पण उत्पन्न छे, अने ते जेवारें कर्त्ता ते कार्यनो अर्थी थइने जे उपकरण तथा मूलपिंड ते रूपे कार्यपणे प्रवर्त्तावे, तेवारें ते तेहनुं कारण कहीये एटले जेम काष्ठमां दंडादिक अनेक पदार्थना छतापणानी योग्यता छे, पण कोइ कर्त्ता, दंडनुं कारण उत्पन्न करे, कोइ पुतलीनुं कारण उत्पन्न करे, तेमज दंडादिकने कोइ घटध्वंसपणे प्रवर्त्तावे, तो घटध्वंस करे तथा कर्त्ता जो दंडादिकने घट करवापणे प्रवर्त्तावे तो तेहनुं कारण थाय, माटे जे कारणपणुं छे ते कर्त्तानुं कर्तुं थाय छे. श्रीविशेषावश्यकेश्च कहुं छे, “ये कारकाः कर्त्तुराधीना इति कारणं कार्योत्पादकं तेन कार्योत्पत्तौ कारणत्वं नचकार्याकरणे ” ते माटे कारणपणुं ते उत्पन्न छे. हवे कोई कहेशे जे वस्तुमां कोई कार्यना कारण तो छता छे, तो उत्पन्न छे, एम शा वास्ते कहो छो ? तेहने उत्तर जे विवक्षित कार्यनी कारणता उत्पन्न छे, अथवा जे कार्यता जे कालें ते कार्यता कर्त्ताना प्रयोगनी छे, तेमाटे उत्पन्नज छे, पण कार्य निपज्या पछी तेमध्ये कारणपणुं न पामीये, जेम

अनादि मिथ्यात्वी जीव यद्यपि सत्तावन्त छे, तेमज अमव्य जीव पण सत्तावन्त छे परंतु तेहनं उपादान सिद्धताना कार्यनुं कार-
णहार नथी, तेथी कार्य निपजतुं नथी. जेवारे कोडक जीवनुं उपादान अरिहंतादिक निमित्त पामीने, कारणतापणे परिणमे, ते कार्य करे, माटे ते उत्पन्न छे, अने ते कार्य सिद्ध थया पछी ते कारण रहे नहीं, जो सिद्धतामां साधकतानी छती मानीयें तो, सिद्धानस्थायें पण साधकपणुं रहु मानवु पडे ते सिद्धाव-
स्थामां साधकपणुं तो नथी माटे कार्य नीपजे, कारणता रहे नहीं, तथा निमित्त जे दंडादिक ते पण कर्त्ता भिन्न कार्यना व्यवसायें कारणता करे, तो ते भिन्न कार्य थाये, परंतु तेज कार्यनी ते कारणता रहे नहीं, एम धारवुं ॥ ८ ॥

कर्त्ता आत्मद्रव्य, कार्यसिद्धिपणो री ॥

निजसत्तागत धर्म, ते उपादान गणो री ॥ ९ ॥

अर्थः—हवे सिद्धतारूप कार्यना चार कारण देखाडे छे. सिद्धतारूप कार्य ते आत्मानु अमेदस्वरूप छे, माटे एहनो कर्त्ता आत्मा द्रव्य पोतेज छे, अने सिद्धपणुं ते आत्मानुं कार्य छे, जे आत्मा सिद्धताने परमानंदपणे जाणे. तथा एहीज माहरूं हमणा करवानु कार्य छे, ए कार्य करवानी रुचि विना अनंतो काल संसारमां भम्यो स्वरूपभ्रष्ट थयो, माहामोहें ग्रहो. हवे में माहरो मूलधर्म श्रद्धाभासन गोचर कर्षो तेथी ए कार्य करवुं एम निर्धार करी तदनुगत चेतनावीयें करीने स्वस्वरूप करवानो कर्त्ता थयो, तो सिद्धताना कार्यने निपजावे, ते आवी रीतें जे प्रथम तो अशे कर्त्ता थाय, पछी गुणवृद्धि थवे, संपूर्ण कर्त्तापणु पामीने कार्य नीपजावे. हवे ए सिद्धतारूप कार्यनो उपादान कारण कहे छे, जे पोताना सत्तागत ज्ञान, दर्शन,

चारित्र, वीर्यादिक, अनंतगुण छे, तेहिज पोतानुं सत्तागत धर्म ते सिद्धिरूप थाय छे, माटे तेहीज उपादान कारण जाणवुं. उपादान ते वस्तुनो मूल धर्म अरूपी सत्ता तेहीज सिद्ध थाय छे, ए सिद्धतारूप कार्यनुं उपादान कारण देखाडयुं ॥१॥ इति नवम माथार्थः ॥

योग समाधिविधान, असाधारण तेह वदे री ॥

विधि आचरणा भक्ति, जियें निज कार्य सधे री ॥१०॥

अर्थः—हवे सिद्धतारूप कार्यनुं असाधारण कारण केहे छे. मन, वचन अने कायाना योग तेहने द्रव्यथी तथा भावथी स्वगुणरमणमां अरागी, अद्वेपीपणे प्रवर्त्ताववुं, ते आत्मसमाधि कहीयें तेनो जे विधान केतां करवो एटले चोथा गुणठाणथी मांडीने सिद्धपर्यंत जे गुणनी वृद्धि करवी, एटले अभिनव गुणनुं कारणपणुं ते सर्व ज्ञान, दर्शन, चारित्र, श्रेणिगत ध्यान परिणाम, क्षयोपशमीभाव, विधिसहित आचरणा, तथा भक्ति, अने गुणीनुं बहुमान, जेथी पोताना कार्यनी सिद्धि निपजे. ते ज्ञानक्रियारूप साधक अवस्थानी तरतमता ए सर्व असाधारण कारण कहेवुं. ए असाधारण कारण ते आत्मगुणरूप उपादाननी भिन्न भिन्न ऊणताथकानी अवस्था छे, सदा पूर्व पर्याय उत्तरपर्यायनुं कारण छे, ते समयेंज क्रियाकाल निष्ठाकालनो अभेद छे. ए असाधारण कारण कह्यो. ॥१०॥इति ॥

नरगति पढम संघयण, तेह अपेक्षा जाणो ॥

निमित्ताश्रित उपादान, तेहने लेखे आणो ॥ ११ ॥

अर्थः—हवे सिद्धतारूप कार्यनुं अपेक्षा तथा निमित्त ए बे कारण कहे छे, नर केतां मनुष्यनी गति, पढम केतां पहेलुं

संघयण वज्ररूपमनाराच, पंचेद्रिपगुं इत्यादि सिद्धतारूप कार्यनु
अपेक्षा कारण जाणो. इहां कर्त्तानो व्यापार नथी, पण ए
निश्चें जोड्यें. ए पाम्या विना मोक्षरूप कार्यनी माघना थाय
नहीं, तेमाटे अपेक्षा कारण कहीयें, पण ए मनुष्य गत्यादिक
सर्व जे जीवतुं उपादान परिणमन, धर्मार्थी थइने निमित्त जे
देव गुरु सिद्धात तेहने जेणें आश्रयो, तो तेहनी मनुष्य
गत्यादिक लेखे केतां कारणपणे आणजो, अने जेणे निमित्तने
आश्रयो नथी. तेहनी मनुष्यगत्यादिक कारणपणामां गणशो
नहीं, ते हजी अनादिनी चालमां छे, पलटण करतो नथी,
तें माटे ए अपेक्षा तथा निमित्त ए वे कारण कळां ॥११॥इति॥

निमित्त हेतु जिनराज, समता अमृत खाणी ।

प्रभुअवलचन सिद्धि, नियमा एह वखाणी ॥ १२ ॥

अर्थः—हवे आत्माने सिद्धतारूप कार्य करतां निमित्त
कारण श्रीजिनराज वीतराग छे, ते वीतराग सर्वज्ञ केहवा छे,
समतारूप अमृतनी खाण छे, इष्ट अनिष्टता रहित समताना
घणी छे, शुद्ध चरित्र परिणाम तेहीज अमृत छे, तेहनी खाण
छे, एहवा प्रभु परमेश्वर परम दयाळ, परमात्मा, शुद्धतत्त्वरूप
भोगी, पूर्णानंदी, चिदानंद जे श्रीअरनाथ प्रभु तेहने अवलं-
चने पोतानो भामन प्रभुना ते गुण जाणवाने जोडी एम अनंता
गुण ते सर्वगुणना भासननी रीझ तथा ते उपर बहुमान एहणे
आलंघने रहेवु, तेथी नियमा सिद्ध निवारण थाय एम आग-
ममा वखाणयो छे, एहीज मोक्षनो उपाय छे. ए निमित्तकारण
कह्युं ॥ १२ ॥ इति ॥

पुष्ट हेतु अरनाथ, तेहने गुणथी हलीयें ॥

रीळु भक्ति बहुमान, भोगध्यानथी मलीयें ॥ १३ ॥

अर्थः—माटे पुष्ट केतां नियामक हेतु केतां कारण ते जिनराज श्री अरनाथ प्रभु तेहना गुण जे केवल ज्ञान, अनंतानंदरूप तेहथी हलीयें केतां आपणो आत्मा ते दिसें जोडीयें, प्रगटगुणीना गुणथी आपणी चेतना जोडवी, शीभ्र केतां रागनी मग्नता, भक्ति केतां सेवना, बहुमान, आदर, मोटाइ, भोग केतां आस्वादन, ध्यान केतां चित्तनी एकाग्रता, ए श्री अरनाथ प्रभुना गुणनी करीने श्रीप्रभुथी एकत्वपणे मलियें, साधकने शुद्धदेव तत्त्वने अवलंबवुं ते प्रधान छे ॥ इति त्रयोदशगाथार्थः ॥ १३ ॥

मोटाने उत्संग, बेठाने सी चिंता ॥

तिम प्रभु चरण पसाय, सेवक थया निचिंता ॥१४॥

अर्थः—तथा लौकिक दृष्टांत कहे छे, जे मोहोटाने उत्संगे केतां खोलामां बेठो तेहने कोइ चिंता नहीं, ते निचिंत थयो, तेमं सेवक पण प्रभुजी निरामय देव तेहना चरणने सेववे, चिंता रहित थयो, जे परमोत्तम, सर्वगुणभोगी, निरालंबी, चिन्मयी, अनंत दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्यमयी, श्रीजिनेश्वर निःकर्म देवतत्त्व, परभावना अकर्ता, परभाव अभोगी, परानुयायीता रहित, एहवो देव जो आदर्शो छे, तो मोहनुं शुं जोर छे ? संसार कोने छे ? कर्मनी बीक कोने छे ? जो परमोत्तम धरणी में माहरे माथे कर्यो छे जेहना ध्यानथी माहारो मोक्ष नीपजे, ते देवनो योग मिल्यो छे, ते माटे चिंता नथी ॥ उक्तं च श्रीजिनवल्लभपूज्यैः ॥ पसरैइ तीयलोए, तावमोहंधयारंभमइ जई ॥ सिन्नंमताव मिच्छत्तं सिन्नं फुरइ फुडफुरंताणं ॥ १ ॥ तंणाणंस ॥ पूरो, पयडपजीयसंतीज्झाणसुरो ॥ १४ ॥ इति चतुर्दश गाथार्थः ॥

अर प्रभु प्रभुता रंग, अंतर शक्ति विकासी ॥

देवचंद्रने आशंद, अक्षय भोग विलासी ॥ १५ ॥ इति ॥

अर्थः—माटे श्री अरनाथ प्रभु अठारमा परमेश्वर जेसुं तत्त्वरुचि थइने तत्त्वामिलाषि तत्त्वसाधक तत्त्वघ्यानी थइने तत्त्वप्रगट कर्युं, ते प्रभुनी प्रभुता, शुद्धज्ञायकता, शुद्धरमणता, शुद्धानुभवता, अपौद्गलिकता, असंगता, अयोगिता, सकल प्रदेश निरावणता, प्राग्भावी शुद्धसत्ताभोग्यता, तेहने रंगें जे रगाणा छे, ते साधक सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्वविरतिनी अंतरग शक्ति तत्त्वप्राग्भाव करवानी साधक कारकता, साधक कर्त्तापणुं, परम संवग् पूर्वक परम सकामनिर्जरा रूप शक्ति विकस्वर थवे, प्रगट थवे, ते शक्तिथी सर्व कर्म विराम थवे, सर्व आत्मिक धर्मने प्रगटवे करी, परमात्मा देवमाहे चद्रमा समान श्रीनिष्पन्न परमेश्वर तेहनो जे आनंद, अव्यावाध, शिव, अचल, अरुज, अविनाशी, तेहनु जे अक्षय स्वरूप, तेहनो भोग केतां अनुभव तेनो विलासी आत्मा थाय, एटले स्वसंपदा तत्त्वता आत्मशुद्धपरिणति, तेहने सादि अनंतो काल भोगवे, अथवा देवचंद्र जे स्तुति कर्त्ता ते अक्षय आनंदना भोगनो विलासी थाय, माटे स्वरूपसिद्ध, अरूपी, चिद्रूप, श्री परमेश्वर, तेहने सेवो, ध्यावो, नमो, गावो, तेहना गुण संभारो. एहीज मोक्ष साधनसुं पुष्ट निमित्त छे. ए निमित्त उपादानकारणरूप थइने असाधारण कारणताएं चडतो मनुष्य-गत्यादि अपेक्षा कारणपणें करी तत्त्वानंद रूप कार्यने करशे, ते माटे उपादानादिक त्रणे कारखनी कारणता निमित्तने अवलंबें प्रगटे, तेथी निर्दोषपणे आशसादि दोष वर्जिने शुद्ध निमित्तने सेवे, ते सेवनथी कर्त्तापणु समरे अने कर्त्तापणुं समरेथी

स्वकार्य करे, माटे श्रीअरनाथजीनी भक्ति ते परमाधार छे ॥
॥ १५ ॥ इति श्री अरजिनस्तवनं ॥ १६ ॥



॥ अथ एकोनविंशति श्रीमल्लिनाथजिन स्तवनं ॥

देखी कामिनी दोइ के, कामें व्यापियो रे केका० ॥ ए देशी ॥

मल्लिनाथ जगनाथ, चरणयुग ध्याईयें रे ॥ च० ॥

शुद्धातम प्राग्भाव, परम पद पाईयें रे ॥ प० ॥

साधक कारक षट्क, करे गुण साधना रे ॥ क० ॥

तेहीज शुद्धसरूप, थाय निराबाधना रे ॥ था० ॥ १ ॥

अर्थ—हवे ओगणीशमा श्री मल्लिनाथ परमेश्वरनी स्त-
वना करे छे. तिहां कारकशक्ति पलटवाथी सिद्धता निपजे छे,
ते पलटवानो उपाय श्री अरिहंतनी सेवना छे ते रूप स्तुति
करे छे. श्री मल्लिनाथ, परमेश्वर, परमज्ञानी, ते जग केतां लो-
कना नाथ मोहनो भय एटले अंतरंग भावरिपुथी छोडाववाना
परम कारण छे, तेहनां चरणयुग केतां पदकमलनुं जोडुं तेहने
ध्यायीयें, वारंवार संभारियें, एहवा प्रभुने ध्याववाथी ध्याताने
शुं नीपजे ? ते कहे छे. शुद्ध जे आत्मानो परमात्मभाव अनंत-
गुण निर्मलतारूप तेहनो जे प्राग्भाव केतां प्रगटपणुं निर्मल
शुद्धतारूप परमपद निर्मल पद ते पामीयें, एटले पोतानी आ-
त्मता निर्मलपणुं भजे, ते आत्मसिद्धरूप कार्य करवाने
छे कारक छे. तिहां सर्व कार्यमां कारक प्रवृत्तिनी
कारणता छे. कारकचक्र विना कार्यनी निष्पत्ति नथी.
जेम ? कुंभकार ते कर्ता, २ घट ते कार्य, ३ मूर्तिपिंड चक्रा-
दिक कारण, ४ माटीना पिंडने, नवा पर्यायनी प्राप्ति ते सं-

प्रदान, ५ पिंड स्वासादि पर्यायनो व्यय ते अपादान, ६ घटादि पर्यायनु आधारपणुं ते आधार, एम घटरूप कार्यमां षट् कारक छे, तेमज आत्माने अनादि कालनां ए छ कारक साधक रूपे परिणम्या छे. ते देसाडे छे.

१ आत्मा परिभावा रागादि ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मनो कर्ता थयो छे.

२ भावकर्म द्रव्यकर्मने जे आत्मा करे, ते कार्य नामा बीजुं कारक.

३ अशुद्धविभावा परिणतिरूप भावाश्रव अने प्राणातिपातादि द्रव्याश्रव, ए ते कारणीयो कर्म वधाये, माटे ए करण नामा बीजुं कारक.

४ अशुद्धतानो तथा द्रव्यकर्मनो लाभ ते संप्रदान नामा चोथुं कारक

५ स्वरूपरोध, चयोपशमनी हानि, तथा परानुययायिता ते अपादान.

६ अनंती अशुद्ध विभावाता, तथा ज्ञानावरणादि कर्मने राखवा रूप जे शक्ति ते आधार नामा छठुं कारक जाणवुं ते.

ए रीते ए छ कारकनुं चक्र अनादिनुं अशुद्धपणे बाधकतापणे आत्माने परिणमी रणु छे, ते जेवारें साधक आत्मा, पोतानो स्वधर्म नीपजाववा पणे परिणमावे, तेवारें ए छए कारक साधक पणे प्रवृत्त्या गुणनी आत्म धर्मनी माधना करे, ए रीते ए छ कारक साधक पणे परिणम्या कार्य नीपजे शुद्ध स्वरूप धाय. ए स्वरूपपरिणामिकता रूप स्वकार्य कारण पणु कोने परिणमे ? ते कहे छे. जे निराबाध, श्रीसिद्धभगवंत

तेहनां छ कारक, ते शुद्धपणे प्रवर्ते छे, अने बाधक जीवोना बाधकपणे परिणमे छे, तथा समकेत गुणठाण्ण्णी मांडीने अयोगी गुणठाणा पर्यंत साधकपणे परिणमे छे, तथा सिद्ध भगवंतना शुद्धस्वरूपरूपे परिणमे छे, कारक ते आत्मानामा जे कर्त्तारूप, द्रव्य, तेहनी ए परिणति छे, उक्तं च श्री विशेषावश्यके.

कारण व्याख्यानावसरे ॥ गाथा ॥ छव्विह कत्ता इ, कारण कम्मं च तत्तो य ॥ संपयाणा वायाण, तह नासंमिहाणाय इति ॥ १ ॥ गाथार्थः ॥ तथा च कारणं षोढा ॥ यथा ॥ कारण महवा छद्दा, तत्थ संतंतोत्ति कारणं कत्ता ॥ वझ पसाहगतमं कारणम्मिओ पिंडदंडाई ॥ १ ॥ कम्मं किरिया कारण, इत्यादि गाथाथी जाणवुं ॥ होइ पसत्थं मोरकस्स कारणं. इह यन्मोक्षस्य कारण हेतु तत् प्रशस्तभावकारणं उच्यते ॥ इति वचनात्.

माटे साधकपणे कारक परिणम्या तो सिद्धता कार्यने करे, ते माटे निराबाध जे सिद्ध निरावरण अव्याबाध सुख तेमां तेहनो कर्त्तादिक शुद्ध पारिणामिक भाव शुद्ध पणे थाय स्वस्वरूप कर्तृत्वपणे परिणमे ॥ १ ॥ इति ॥

कर्त्ता आतम द्रव्य, कार्य निज सिद्धता रे ॥ का० ॥

उपादान परिणाम, प्रयुक्त ते करणता रे ॥ प्र० ॥

आतम संपद दान, तेह संप्रदानता रे ॥ ते० ॥

दाता पात्रने देय, त्रिभाव अभेदता रे ॥ त्रि० ॥ २ ॥

अर्थः—१ पहेलुं कर्त्ता नामा कारक कहे छे. तिहां कर्त्ता आत्मा द्रव्य ते आत्मशुद्धता निपजाववा रूप कार्ये प्रवर्त्तन पाम्युं, पोतानुं कर्त्ता छे.

२ जे आत्मा पोतानी सिद्धता सर्वगुण पूर्णता सर्वस्वभाव स्वरूपास्थानता ते कार्यनामा बीजुं कारक जाणवुं, ते कार्य परिणतिचक्रने प्रवर्तवा रूप क्रियाये नीपजे, ते क्रियानुं प्रवर्तववुं ते कार्य ते कार्यने कारकता, नीपजाववा कालेज छे, नीपना पछी कार्यमां कारकता नथी, उक्तं च भाष्ये ॥ तस्मात् बुद्ध्यद्भ्यावसितं कार्यं अप्यात्मकारणमेष्टव्यं इति ॥

३. उपादानपरिणाम आत्मा स्वगुणनी परिणति सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रयीनी जे परिणति, तत्त्वनिर्धार, तत्त्वरूचि, तत्त्वज्ञान, तत्त्वरमणादिक रूप स्वगुण अहिंसकता बंधहेतु अपरिणामन रूप, स्वरूप यथार्थभामनरूप, परभाव अग्रहणरूप, परभाव अभोक्तरूप. स्वरूपग्रहण, स्वरूप भोगी, परभाव अरक्षणरूप, स्वरूप एकत्वरूप तत्त्वारोधन, चेतनास्वरूप प्रगटतानुपायी वीर्य, ते उपादान कारण अने द्रव्ययोग समारवा रूप अरिहंतालंघनादि, यथार्थ आगमश्रवणादि ते निमित्त कारण तेहनु प्रयुंजवुं आत्मकार्य करना पणे आत्मानो प्रयोग करो, ए उत्कृष्ट कारण माटे करणनामा त्रीजुं कारक जाणवु, " साधकतमं कारणं करणं " इति वाक्यात् आत्मसिद्धिरूप कार्यनुं उत्कृष्ट कारण अने आत्मशक्तिस्वरूपानुपायी तथा शुद्धदेव प्रमुख ते करण नामा कारक कहिये.

४ आत्माना संपदा जे ज्ञानपर्याय, दर्शनपर्याय, चारित्रपर्याय, तेहनुं दान आत्माने आत्मगुण प्रगट करवारूप देवुं, तेहथी जे जे आत्मधर्म निपजता जाय, ते संप्रदान कहिये ॥ उक्तं च ॥ गाथा ॥ देवो स जस्स तं संपयाणमिह तं पि कारणं तस्स ॥ हो इतदत्थित्ताओ, न कीरइ तं विणा जंसो ॥ इति माटे जे आत्माना अस्तिधर्मनुं थवु ते संप्रदानकारक

जाणवुं, इहां दाता आत्मा तथा पात्र पण आत्मा अने आ-
त्माने देय केतां देवा योग्य ते पण आत्मधर्म, ए त्रणे भावनी
अभेदता छे, एटले गुणनुं प्रगट करवुं ते देय अने आत्मा
दाता तथा आत्मगुणने प्रगट करे ते दातापणुं अने गुणनुं
पात्र पण आत्मा एटले दान, दाता अने ग्राहक, अने त्रणें
अभेद छे. ॥ २ ॥

स्वपर विवेचन करण, तेह अपादानथी रे ॥ ते० ॥
सकल पर्याय आधार, संबंध आस्थानथी रे ॥ सं० ॥
बाधक कारक भाव, अनादि निवारवो रे ॥ अ० ॥
साधकता अवलंबी, तेह समारवो रे ॥ ते० ॥ ३ ॥

अर्थः—५ जे आत्माथी समवायें रखा तेहने स्वधर्म
आत्मधर्म कहियें. अने तेहथी विपरीत जे मोहादिक कर्म अ-
शुद्ध प्रवृत्ति ते परभाव कहियें, तेहनुं विवेचन करवुं, भिन्न कर-
वुं, अशुद्धतानो उच्छेद करवो, दोषनो त्याग करवो, एटले जे
दोषविश्लेष करवो, अर्थात् अनादिसंसार कर्त्तापणुं तथा भोक्ता
ते तजीने जे आत्मस्वरूप कर्त्तापणुं भोक्तापणुं तेहीज प्रगट
करवुं, ते पांचमुं अपादानकारक कहियें.

६ सकल केतां समस्त सर्वपर्याय तेहनो आधार ते आत्मा
छे, आत्माने आत्मपर्यायथी स्वस्वामित्वसंबंध छे, व्याप्य व्यापक
संबंध छे. ग्राह्यग्राहक संबंध छे, आधाराधेय संबंध छे, ए
सर्वनुं आस्थान केतां ते कारणरूप क्षेत्र ते आत्मा छे, ते
आस्थानता माटे आत्मा आधार छे, ए आधारनामा छठुं कारक
जाणवुं. ए छ कारक साधकपणानां कख्यां. हवे ए साधकपणुं
केम पामे ? ते, कहे छे. बाधक जे परभाव तेहने अनुयायी अ-
शुद्ध कर्त्तादि कारकपणुं मिथ्यात्व, असंयम, कषाय रूप भाव

अशुद्धतारूप सामान्य चक्र अशुद्धसाध्यानुगत अशुद्धकर्त्तापणुं तेहने निवारवुं, ते चक्र रोक्रीने स्वरूपानुगत करवुं, ते माटे ए अनादिनी भूल टालवी. जिहां सुधी कर्त्ता परभावकारक छे, तिहां सुधी कांड साधकता नथी. जिहां सुधी कर्त्ता अशुद्धकार्यानुयायी सामान्य चक्र छे, तिहां सुधी शुद्धसाधकतानो अंश पण उपन्यो नथी, श्रीपूज्ये कबु छे, जे आत्मा तत्त्वकर्त्ता पणे थया विना सर्वशुभ प्रवर्त्तन ते बालचापन्य छे, तेमाटे कारकचक्र बाधकताशी वारीने, साधकताने अवलंबीने ते कारकचक्रने समारवु स्वरूपानुयायी करवु अने पोताना आत्माने एम कहवु जे हे चेतन ! तुं परभावनो कर्त्ता तथा भोक्ता अने ग्राहक नहीं, तुंतो संपूर्णानंदनो शुद्धविलासी छो, अने तुं जे परभावमां रमी रह्यो छो, तथा परभावनो भोगी थइ रह्यो छो ए तुजने घटे नहीं, ताहरु कार्य, तो अनंत गुण पारिणामिकरूप स्वरूपकर्त्ता स्वरूपभोक्तापणु छे, ते माटे हे चैतन्यहस ! हवे तुं यथार्थ जिनवाणीरूप अमृत पान करीने, अनादिविभाव विष वारीने पोतानुं तत्त्व संमारी स्वपर विवेचनकारी थइने पोतानो जे सहजानंद तेहने कर. एहीज ताहरुं कार्य छे, तुं तेहनुं उपादान कारण शक्तिमंत छो, तेहनो लेवावालो छो, तु ताहरी गुणसपदा ताहरे प्रदेशें प्रगट करवारूप दाननो संप्रदानी छे, माटे हे चेतन ! ए अनादि अशुद्ध परिणामने तुंहीज त्याग करीश, अने ताहरी सत्तानो आधार पण तुंहीज छो, माटे तुंहीज ताहरा तत्त्वने कर, ताहरुं तत्त्व तुं नीपजावीश. एम पोतें पोताना आत्माने कहिने साधकपणु आदरवु ते आदरता कारक समरे, कारकने समरवेयी अनुक्रमें आत्मानुं स्वकार्य नीपजे पछी, एहीज आत्मा सिद्ध थाय, माटे

एहीज साधननो मार्ग छे, साधन कीधे कार्यनी सिद्धि थाय,
ए क्रम छे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

शुद्धपणे पर्याय, प्रवर्तन कार्यमें रे ॥ प्र० ॥

कर्त्तादिक परिणाम, ते आत्म धर्ममें रे ॥ ते० ॥

चेतन चेतन भाव, करे समवेतमें रे ॥ क० ॥

सादि अनंतो काल, रहे निज खेतमें रे ॥ र० ॥ ४ ॥

अर्थः—पहेलो शुद्धपणे निष्पन्न आत्माना ज्ञानादिक पर्यायनुं जाणवा देखवा रूप कार्यनुं प्रवर्तन, उत्पाद व्ययरूप परिणामन, ते कार्यनो कर्त्ता आत्मा छे, वीजुं आत्मगुणनुं परिणामन ते कार्य, वीजुं आत्मगुणज्ञानादिक ते करण, चोथुं आत्मगुणनो लाभ ते संप्रदान, पांचमुं परभाव त्यागपरिणति ते अपादान, छहुं अनंतगुणनुं राखवुं, ते आधार, ए छ कारकनुं चक्र ते सिद्धावस्थाने विषे सदा स्वाधीनपणे फरि रह्युं छे, तेहथी शुद्धनिष्पन्नपणे जे स्वपर्यायनुं प्रवर्तन, तेहने कर्त्तादिक छ कारक तेहनुं जे परिणामन ते आत्मधर्ममांहेज छे, एटले सिद्धपणे जे कर्त्तादिक छ कारक ते स्वरूपमध्येज छे. चेतन केतां आत्मा ते पोतानो चेतनभाव केतां आत्मभावकरे, समवेतमें केतां समवाय संबंधमां छे, एटले आत्मा आत्मभावनो कर्त्ता छे, ए समवायसंबंधें मूलपणे सादि अनंता कालपर्यंत निजखेतमें केतां पोताना असंख्याता प्रदेशरूप क्षेत्रमध्ये आत्मधर्ममां निष्पन्न सिद्धतापणे रहे, सिद्धिनी आदि छे, परंतु अंत नथी, माटे सादि अनंतो काल स्वक्षेत्र स्वस्वरूपमां आत्मा रहे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः

परकर्तृत्व स्वभाव, करे तां लगे करे रे ॥ क० ॥

शुद्ध कार्य रुचि भास, थये नवि आदरे रे ॥ थ० ॥

शुद्धात्म निज कार्य, रुचे कारक फिरे रे ॥ ६० ॥

तेहिज मूल स्वभाव, ग्रहे निज पद वरे रे ॥ ६० ॥ ५ ॥

अर्थः—पर केतां जे भावकर्म, द्रव्यकर्म अने नोकर्म, तेहने कर्त्तापणाने स्वभावे करे, तिहां सीम तेहनेज करे, एटले ए परकर्त्तापणुं अनादिकालधी करे छे, जिहां सुधी परनो रागी, परनो भोगी, तिहां सुधि परकर्त्तापणुं ए आत्मा करें. पण जेवारें शुद्ध, निरमल, निरापरण स्वगुण प्रगट करवारूप, कार्यनी रुचि थाय, तेवारें परकर्त्तापणुं आदरे नहीं, शुद्ध आत्मस्वरूप, स्याद्वाद रीतें परमानंदपणे भासन तथा रुचि तेहीज कारक पलटाववानां बीज छे, ते माटे जे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, ते मोचनुं मूल छे, शुद्धात्मअनंतज्ञान, दर्शन, अव्याबाध सुखमयी, अरूपी, सहजानंदरूप आत्मधर्म सत्ता-प्राग्भाव, सकल परभागव्यतिरेकी, अरागी, अद्वेषी, असगी, अयोगी, अलेशी, अकपायी, असहायी, एहवुं शुद्धानंदरूप स्वकार्य, तेहनी रुचि थये थके कारक चक्र फिरे, जिहां सीम परपौद्गलिक सुखनी रुचि छे. तिहां सीम परनो कर्त्ता छे, तेहधी सर्वकारकनुं चक्र ते रूपेंज परिणमे छे, अने जे अवसरें भेदज्ञान धाराधी, आत्मा परविभंजन करीने पोतानुं आत्मस्वरूप एक उच्छरंग धर्म जाण्युं, तेहनेज हित मान्युं, तेवारें ते आत्मिक धर्मनीज रुचि उपजे, पछी जेहनी जेहने रुचि उपजे, ते तेहीज कार्य करे, तेवारें कर्त्ताधर्म स्वकार्यने करे, सर्व कारकचक्र स्वकार्याश्रित थाय, तेवारें तेहीज पोतानो अचल, अखड, अविनाशी, निःप्रयासी स्वरूपपरिणमनरूप जे मूलस्वभाव स्वधर्म तेहने ग्रहण करे, केम जे ए कारक मूलधर्मने ग्रहे छे, तेहधी निज केता पोताना परमात्म, पूर्ण-

परिणामनरूप रह्यो थको सर्व परोपाधिने क्षय करुं छुं, इम स्व-
शुद्धस्वरूपने ग्रही, सर्व परभाव भेद करी, निर्मलानंद निपजा-
ववो ॥ ६ ॥ इति ॥

माहरुं पूर्णानंद, प्रकट करवा भणी रे ॥ प्र० ॥

पुष्टालंबन रूप, सेव प्रभुजी तणी रे ॥ से० ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, भक्ति मनमें धरो रे ॥ भ० ॥

अव्यावाध अनंत, अक्षय पद आदरो रे ॥ अ० ॥ ७ ॥

अर्थः—एहवा वाधकता परिणम्यो, माहरुं कर्त्तादिक
कारकपरिणाम ते श्रीअरिहंत परमज्ञाता, स्वरूपरमणी, स्व-
रूपविश्रामी, स्वरूपानंदी, तेहनुं स्वरूप जोतां, ध्यातां, गातां,
ते अशुद्ध कर्त्तापणुं पलटे, ते पलटवार्थी कारक पण पलटे,
कारक पलटवार्थी कार्यशुद्धसिद्धतारूप, अनंत स्वस्वरूपसंपदा-
रूप नीपजे, तेवारे भव्य जीवने पोतानी तच्च नीपजाववारूप
शक्ति, ते श्रीअरिहंतजीनी सेवनार्थी थाय, ते माटेज निर्धार
करीं छे, जे हे प्रभुजी ! माहारो जे पूर्णानंद, पूर्ण अव्यावाध
सुख ते प्रकट करवाने पुष्टालंबन केतां पुष्ट नियामकी आलंबन
केतां आधार ते श्रीप्रभुजी भव्य जीवना आधार, मुनिजनना
प्राणाधार, आचार्य उपाध्यायजीना परम दयाल, भावचिंता-
मणि समान, समकिती जीवना ध्येय, ध्याताने प्रतिच्छंदरूप,
अनंत गुणाकर निर्मल ज्ञानानंदना पात्र, एहवा श्रीजिनराज,
महाराज, सुखसमाज, तेहनी सेवना तेहीज पुष्टालंबन छे, ते
माटे सर्व देवेंद्रादिक ते मध्ये चंद्रमा समान, एहवा जे जिनचंद्र
श्रीवीतराग अरिहा, तेहनी भक्ति, सेवना आज्ञा मानवा रूप,
तदनुयायीपणुं तेहीज त्राण शरण छे, एहवी भक्ति मनमां
धरो, स्थिर राखो, अथ स्तुतिकर्त्तानुं संबोधन, हे देवचंद्र !

श्रीजिनचंद्रनी भक्ति केतां चरणसेवना ते मनमां धरो, तो अ-
व्यानाध, जिहां परभावनी पीडा नहीं, परमानंदरूप, जेहना
अनंत गुण ते गण्या जाय नहीं, अक्षय केतां जेहनो छेद नहीं,
विनाश नहीं, एहवुं ते परमात्मरूप पद, ते आदरो, एटले
पामो, माटे ए आत्मनाधकता तजी साधकतामां रमे, सिद्ध
थाये, एहीज प्रभुसेवनानु फल छे, माटे हे सिद्धरुचि जीवो !
तमे श्रीमद्भिनाथ परमपुरुषोत्तम परमेश्वर, निःकारण, जगद्ग-
त्सल, तेहने गाओ, स्तवो, संभारी ध्यावो, प्रथमयी साधक
जीवने एहीज आधार छे, एहीज जीवन छे ॥ ७ ॥ इति मद्भि-
नाथजिन स्तवनं ॥



॥ अथ विंशतितम श्रीमुनिसुव्रतजिन स्तवनं ॥

॥ ओलंगडी ओलंगडी सुहेली हो, श्री श्रेयासनी रे ॥ ए देशी ॥

ओलंगडी ओलंगडी तो कीजें,

श्री मुनिसुव्रत स्वामीनी रे ॥

जेहथी निज पद सिद्धि ॥

केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे रे,

लहिए सहेज समृद्धि ॥ ओ० ॥ १ ॥

अर्थः— हवे श्रीमुनिसुव्रत परमेश्वर अद्भुत स्वरूप परमा-
त्मा, अहिंसकनी स्तवना करे छे, मुनि जे निर्ग्रथ तेहना सुव्रत
केतां भला व्रत एहवा श्रीमुनिसुव्रत प्रभु तेहनी ओलंग केतां
सेवा एटले गुणग्राम करियें जेहथी निजपद केतां पोतानुं पद
जे परमानंद पद तेहनी सिद्धि केतां निष्पत्ति थाये, बली के-
वल ज्ञानादिक गुण उल्लसे केतां प्रगटे, ज्ञानामृतरसनो भोगी



थाय, तथा सहज अकृत्रिम स्वरूपसमृद्धि पामे, ए प्रभु सेवानुं
फल छे ॥ १ ॥ इति ॥

उपादान उपादान निज परिणति वस्तुनी रे,
पण कारण निमित्त आधीन ॥

पुष्ट अपुष्ट दुविध ते उपदिश्यो रे,
ग्राहक विधि आधीन ॥ ओ० ॥ २ ॥

अर्थ—हवे इहां आत्मसाधना करवामध्यें उपादान ते निज
केतां पोतानी परिणति ते वस्तुनो मूलधर्म छे, एटले जे आत्म-
सत्ता छती छे, ते उपादान कारण छे, पण ते निमित्त
कारणने आधीन छे, निमित्त सेवन कर्ता उपादान कारण
समरे, ते निमित्त कारणना बे भेद छे. एक पुष्ट निमित्त बीजुं
अपुष्ट निमित्त, तेने ग्राहक जे कार्यनो कर्ता, ते जे विधें कार्य
थाय, ते विधें कार्य ग्रही प्रवर्त्तावे, तो ते निमित्त कारण
कार्यनो हेतु थाय, पण अविधें ग्रहण करे, तो निमित्त कारण
कार्य करे नहीं, जेम कुंभकार चक्रने फेरवे, तो माटीना पिंडने
घटपणे पमाडे, अने नहीं फेरवे तो न पमाडे. एटले श्रीअरि-
हंतजी मोक्षना निमित्त कारण तो छे, परंतु जे रीतें आगम-
मध्यें कहुं छे, तेविधें आशातना टाली, पुद्गलाशंसा रहित
केवलज्ञानादि गुणनी ओलखाण सहित जो सेवे, तो मोक्षनो
निमित्त कारण थाय, पण अविधें सेवना, ते कामनी नहीं,
माटे ग्राहकने विधि सहित कारण ग्रहवुं, तो ते कार्यने करे
॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

साध्य साध्य धर्म जेमांहे होवे रे,
ते निमित्त अतिपुष्ट ॥

पुष्पमाहे तिलवासक वासना रे,
ते नवि प्रध्वंसक दुष्ट ॥ ओ० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे पुष्टनिमित्तनुं स्वरूप कहे छे. साध्य केता करवा योग्य, जे कार्यधर्म, ते जे कारणमां होय, ते तेनुं पुष्ट कारण कहीयें, ते पुष्ट कारण विधियें कार्य करवाने अर्थे प्रज्ञो थको कार्यने करे, पण ते कार्यनो ध्वंसक न थाय, तेहनो दृष्टांत कहे छे. जेम तेलने सुगंधवासना करवारूप कार्य, तेहनुं कारण पुष्प छे, परंतु वामना करवी ते साध्य छे. ते वासना फूलमध्ये छे, अने ते फुल ते तेल तथा तेलनी वासनाना ध्वंसक नथी, ते माटे ते पुष्टनिमित्त छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यकै- कार्यस्य आसन्ननिमित्तं इति तदेव पुष्ट, दूरतरं कारणनैमित्तिकं तत् अपुष्टं ॥ इति ॥ तथा च श्रीसिद्धसेनपूज्यैः ॥ पुष्टहेतुर्जिनेद्रोयं, मोक्षसद्भावसाधने ॥ इति ॥ तेहथी श्रीअरिहंतदेव ते मोक्षरूप कार्यना पुष्ट निमित्त छे, जे माटे साध्य जे निरावरण, परमात्मपद ते श्री अरिहंतने विषे छे, माटेज श्री अरिहंत ते पुष्ट निमित्त छे, जो विधियें सेवन थाय, तो एथी मोक्षकार्य निपजे ॥३॥ इति॥

दड दंड निमित्त अपुष्ट घटातणो रे,

नवि घटता तसु मांह ॥

साधक साधक प्रध्वंसकता अछे रे,

तियें नहीं नियत प्रवाह ॥ ओ० ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे अपुष्टनिमित्त देखाडे छे, जेम दंड ते घटानु अपुष्ट निमित्त छे, कारण के जेम फूलमाहे सुगंधवासना छे. तेम घटता केता घटपणु तेदंडमाहे नथी. कर्त्ताने प्रेरवे कारण छे, ए दंड घटनुं साधक निपजाववानु कारण पण छे, अने घटनुं प्रध्वंस करवानुं कारण पण छे, जो घट ध्वंसकर्त्ता तेहीज

दंडने घट ध्वंस करवाने प्रवर्त्तावे तो घट ध्वंस करवानुं कारण पण तेहीज दंड थाय, माटे ए नियत प्रवाह केतां निश्चैथी एक चालनो नथी, जे निश्चै घट करे, ए धर्म एहमां नथी, अने श्री अरिहंत परमात्मानुं सेवन ते निश्चै सिद्धतानुं कारण छे, एहने सिद्धिकार्यनी रुचें जे सेवे, तेहने नियमा सिद्धि निपजे. ॥ ४ ॥ इति ॥

षट् कारक षट् कारक ते कारण कार्यनुं रे,
जे कारण स्वाधीन ॥

ते कर्त्ता ते कर्त्ता सहकारक ते वसु रे,
कर्म ते कारण पीन ॥ ओ० ॥ ५ ॥

अर्थ—हवे कारणनी पुष्टता कहेवा निमित्ते कारक कहे छे. १ कर्त्ता, २ कर्म, (कार्य) ३ करण, ४ संप्रदान, ५ अपादान, ६ अधिकरण. ए छ कारक छे, ते हरेक कार्य, निपजाववानां कारण छे. जिहां कर्त्ता क्रिया करे, तिहां अनुक्तपणे (सहजपणे) ए छ कारक जाणवां. इहां आत्मा पोतानुं सिद्धतारूप कार्य तेने करवा रूप क्रिया करे, तेवारें ए छ कारक सर्व होय, तिहां कर्त्ता जे आत्मा तेहनुं सिद्धिरूप कार्य अभेद छे, ते माटे तेनां कारक पण अभेद छे, अने भिन्नकार्यनो कर्त्ता भिन्न होय, तेवारें कारक पण भिन्न होय, ए नीति छे, परंतु निमित्त कारण तो सर्वकार्योमां भिन्नज होय, माटे सिद्धरूप कार्यनुं निमित्त कारण श्रीअरिहंत छे, तेहने कारक उपादानपणे सब पहोंचे छे, ए नीति छे.

हवे छ कारकमां प्रथम कर्त्ता नामे कारक छे, तेहनुं लक्षण कहे छे. जे कार्य निपजवानुं स्वाधीन कारण एटले सर्वकारक तेहने आधीन होय ते कर्त्ता कारक कहीयें. स्वतंत्रः

कर्त्ता' इति वचनात् ॥ कारणमहवा छद्वा, तत्थसंततोत्ति कारणं कत्ता श्रीभाष्यसुधांबुधिवाक्य ॥ सर्वकारक ते कर्त्ताने वशं छे, आधीन छे. हवे वीजुं कर्मनामा कारक, ते जे कारणे पृष्ट थाये अने कर्तुं थाय, ते कर्मकारक कहिये ॥ उक्त च ॥ कम्मं किरियाकरणं इति ॥

कार्यं कार्यं सकल्पे कारकदशा रे,

छत्ती सत्ता सद्भाव ॥

अथवा तुन्य घर्मने जोयवे रे,

साध्यारोपण दाव ॥ ओ० ॥ ६ ॥

अर्थः—इहां कोई पूछशे जे कर्म तो कार्य छे, पण कारण नथी, तेहने उत्तर कहे छे. जे कर्त्ताने पहेलां तो कार्यनो संकल्प थाय छे, ते वखतें ते कर्त्ता पहेला सकल्प कार्यने विचारे, ते वार पछी कार्य करे, ते माटे कारण कहिये ॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ सर्वोऽपि बुद्धौ सकल्प कार्यं करोति इति ॥ व्यवहारस्ततो बुद्ध्वावद्भवसितस्य कुंभस्य चिकीर्षितो मृण्मयः कुंभस्तद्बुद्ध्यालंबनतया कारण भवति ॥ अथवा स्थासादि काल ते घट कार्यनुं कारण छे, अने कर्त्ताने तो स्थासादि कार्य छे, अथवा जे कार्य निपजाववानुं मृत्तिकादिक मूल उपादान, तेहमां जे कार्यनी छति सत्ताये योग्यतापणे रही छे, ते कार्यपणु सत्तागत ते प्रागभावी कार्यनुं कारण छे ॥ उक्तं च ॥ अथवा भव्यो योग्यः स्वरूपलाभस्येति शक्यउत्पादयितुमतः सुकरत्वात्कार्यं मप्यात्मनः कारणमिष्यते अवश्यं च कर्मणः कारणत्वमेष्टव्यं ॥ इति ॥ सत् भाव नजीकपणे जे कारण उपादान निमित्त ते सर्व नजीक करे, कार्यने अर्थे ते कारणनुं सत् भाव छतापणुं ते कार्य बुद्धियें मेलवे, ते माटे कार्यने कारण कहे

अथवा तुल्य धर्मनुं जोवुं जे मुजने एहवुं कार्य निपजाववुं छे, जेम कोइ आत्मा मोक्ष पूर्णानंद करवाने उद्यमी थयो, ते सिद्धरूपनिष्पन्न तत्त्वने जोवे, अने विचारे जे मने माहरुं एहवुं तत्त्व निपजाववुं छे, एम संकल्प करवो, ते तुल्य धर्म जोइ कार्यनो उद्यम घणो थाय, ते माटे कार्यने पण कारण कहेवुं ॥ उक्तं च श्री पूज्यैः किं बहुना ॥ यथा यथायुक्तितो घटते तथा सुधायाः कर्मणः कारणत्वं वाच्यमन्यथा कर्मणो कारणत्वे करोति इति कारणमिति पण्णां कारकत्वादुपपत्तिरेव स्यादिति ॥ ए रीते कर्मने विषे कारणपणुं मानवुं, एमांज कारकता छे, साध्य नुं आरोपण करवुं एहज कर्मने कारकपणुं जाणवुं ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

अतिशय अतिशय कारण कारक करणते रे,
निमित्त अने उपादान ॥

संप्रदान संप्रदान कारण पद भव नथी रे,
कारण व्यय अपादान ॥ ओ० ॥ ७ ॥

अर्थः—अतिशय उत्कृष्टपणे जे कारण ते कारणनामा व्रीजुं कारक कहिये, तेहना बे भेद छे. एक निमित्त कारण बीजुं उपादान कारण, तिहां उपादान ते आत्मानो सत्ता धर्म निमित्त कारण श्रीअरिहंतादिक अने कारण पदनुं भवन थयुं एटले उपादान अधिक अधिक कारणता पामे, ते कारणपर्यायनो लाभ. ते संप्रदानपणुं जाणवुं, जे उपादान कारणमां नवो नवो कारण पर्याय पामे, ते चोथुं संप्रदानकारक कहिये, अथवा कार्यना नवा नवा पर्यायनुं प्रगट थवुं, ते संप्रदान कहिये. एटले कार्यपदनुं भवन ते संप्रदान कहिये, अने पाछला कारण पर्यायनो व्यय क्रेतां विनाश ते अपादान पांचमुं कारक कहिये, जीर्ण कारणपर्यायनो

नाश नव्य कारणतानुं निपजवुं, ते रीतें कार्यनी निष्पत्ति छे ॥
७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

भवन भवन व्यय विणु कारज नवि होवे रे,
जिम दृषदें न घटत्व ॥
शुद्धाधारशुद्धाधार स्वगुणनो द्रव्य छे रे,
सत्ताधार सुतत्त्व ॥ ओ० ॥ ८ ॥

अर्थः—कोइ कहेशे जे संग्रदान तथा अपादान तेहमां शी कारणता छे ? तेहने उत्तर कहे छे. जे भवन केतां नवा पर्यायनुं थवुं, व्यय केतां पूर्वपर्यायनो नाश, ए थया विना कार्य निपजे नहीं, जेम माटीनो पिंड, ते पिंडपर्यायनो व्यय स्थासपर्यायनुं भवन तथा स्थासपर्यायनो व्यय, कोशपर्यायनुं भवन, कोशपर्यायनो व्यय, कुशल पर्यायनुं भवन, कुशल पर्यायनो व्यय, कपाल पर्यायनु भवन, कपाल पर्यायनो व्यय, घटपर्यायनुं भवन, ए रीतें कार्यनी उत्पात्ति छे, तेम सिद्धताने नीपजाववाने विषे पण मिथ्यात्वपर्यायनो व्यय, सम्यक् पर्यायनुं भवन. तेहना साधकपर्यायनो जीर्णनो व्यय, नरानो उत्पाद, ए रीतें कार्यनी निष्पत्ति छे, परंतु भवन तथा व्यय विना कार्य थाय नहीं, जेम दृषदनेविषे घटपणुं न थाय, यद्यपि कर्ता चक्रादिक व्यापार करे, तो पण दृषद (पापाणनो) घट न थाय, श्या माटे जे दृषद (पापाणनो) विषे स्थासादि घटपर्यायनुं भवन व्ययपणु नहीं, ते माटे निपजे नहीं,

हवे छद्दु आधारकारक कहे छें. स्वगुण जे ज्ञानादिक तेहनो शुद्ध आधार द्रव्यपदार्थ छे, एटले जीव, द्रव्य, ज्ञान, चारित्र, वीर्य, दान, लाभ, भोग, उपभोग, अव्यावाध, अमूर्त्तता, अगुरुत्त्वघुता, अखडता, निर्मलता, कर्त्तृता, पारिणामिकतादि मूल

गुण, सर्वनो आधार जीवद्रव्य छे, एम धर्मास्तिकायादि सर्व द्रव्य पोतपोताना गुणना आधार छे, तेहथी धर्मास्तिकायने आधार नामे कारक कहो ? एम कोइ पुछे, तेहनो उत्तर. जे धर्मास्तिकायने गुणाधारीपणुं छे, परंतु कर्तृत्वपणुं नथी, ते माटे कारकपणुं न गवेष्युं, शुद्धतत्त्वने सत्तानो आधार छे, सत्ता ते आत्मानो मूलधर्म जे निरामय, तेहनो आधार सुतत्त्व छे ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

आतम आतम कर्ता कार्य सिद्धता रे,

तसु साधन जिनराज ॥

प्रभु दीठे प्रभु दीठे कारज रुचि उपजे रे,

प्रगटे आत्मसमाज ॥ ओ० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे उपनय कहे छे. आत्मा स्वरूपरुचि, भवो-द्विग्न, मोक्षाभिलाषी, सम्यकदर्शन गुण प्रगटे, जे स्वरूपनुं कर्तापणुं विरतिपणुं तत्त्व ध्यान, तत्त्वतन्मयतादिकने करवे कर्ता छे, एटले तत्त्वार्थी आत्मा, कर्ता, कार्यसिद्धता, सकल-गुणप्रगटतापणुं, निःकर्मावस्था, तेहनुं साधन निमित्त कारण श्रीजिनराज सर्वज्ञ छे, जे कारणे प्रभु श्रीपरमात्मा दीठे यथार्थ भासन थाय, कार्यनी स्वसत्ता प्रागभावभोगीपणानी रुचि उपजे, ते रुचि संपूर्णसिद्धतानुं मुख्य कारण छे, ते रुचि वध-ती साधनभाव, ध्यानावस्थावलंबीने पूर्णानंदता निपजावे, आत्मानो समाज केतां साम्राज्य प्रगटे, तेहथी मोक्षनो कर्ता आत्मा खरो पण मोक्षनी रुचि विनानुं कर्तापणुं प्रगटे नहीं, अने ते रुचि श्रीअरिहंतदेवने दीठे निपजे, माटे श्रीअरिहंतनुं दर्शन, ते रुचिनुं कारण छे, अने रुचि ते मोक्षनुं कारण छे. एवी रीते मोक्षरूप कार्यनुं मूलकारण श्रीअरिहंतज छे, ते माटे

माहारे मोक्ष निपजे, ए उपकार तत्त्वहितना करनार श्रीअरिहंतनो
जाणुं ॥ ९ ॥ इति ॥

वंदन वंदन नमन सेवन वली पूजना रे,

स्मरण स्तवन वली ध्यान ॥

देवचंद्र देवचंद्र कीजे जगदीशनु रे,

प्रगटे पुण्य निधान ॥ ओ० ॥ १० ॥

अर्थः—तेमाटे वंदन केता कर जोडन, नमन केतां शीश
नमाववारूप, सेवना ते आज्ञा मानवारूप, वली पुजना ते
पुष्पादिकनी, तथा स्मरण ते वारंवार गुणनुं सभारवु, स्तवन
वचनें करी गुणनुं कथन, हर्षथी करवुं, तथा ध्यान ते प्रभु
गुणे चित्तनी एकाग्रतानुं करवु, एटला सर्व उपाय छे, ते सर्व
देवचंद्र स्तुति कर्त्ता ते पोताने कहे छे, जे इदनादिक कर्त्तव्य
कीजे, श्री जगदीशनी त्रैलोक्यदयालनी ते करतां सेवकने
प्रगटे केता प्रकाश पामे, पुण्य निधान, अनंतगुण, आत्मशक्ति
परमानदरूप निधान प्रगटे एटले श्रीजिनराज परमात्मानी
सेवा करतां पोतानी पूर्णपरमात्मता निपजे, अविनाशी धन
प्रकाश पामे, ए श्री मुनिसुव्रत देवाधिदेवनो परम उपकार
छे. ॥१०॥ इतिश्री मुनिसुव्रतजिनस्तवनं सपूर्ण ॥ २० ॥

॥ अथ एकविंशति श्रीनमिनाथ जिनस्तवनं ॥

॥ पीछेलारी पाळ, उभा दोय राजवी रे ॥ उ० ॥ ए देशी ॥

श्री नमि जिनवर. सेम, घनाघन उनम्यो रे ॥ घ० ॥

दिठां मिथ्या रोरव, भविकचित्तथी गम्यो रे ॥ भ० ॥

शुचि आचरणारीति ते, अत्र वधे वडा रे ॥ अ० ॥

आत्मपरिणति शुद्ध, ते बीज झवूकडा रे ॥ ते० १ ॥

अर्थः—हवे एकवीशमा जिनराज परमोपकारी तेहना गुण स्तवे छे. उपगारसंपदाएं करीने श्री एकवीसमा नमि-जिनवर ते नमिनाथ थापना ते शामाटे जे नमणाईनो उत्कृष्टो भाव छे, तेमाटे ते श्रीनमिनाथ जिन जे अकषायी, तेमाहे वर केतां प्रधान वीतराग, परमज्ञानी, परमात्मा, शुद्धस्वरूप-भोगी, चिदानंदघन, निर्विकारी देवने ओलखवुं तथा तेनो योग मल्लवो. घणोज दुर्लभ छे ॥ उक्तं च ॥ इंदत्तं चकित्तं, सुरमणि कप्पदुमस्स कोडीणं ॥ लाभो सुलहो दुलहो, दंसणो तित्थनाहस्स ॥ १ ॥ तेमाटे श्रीजिनेश्वरनुं दर्शन दुःप्राप्य छे, ते संसारचक्रमां मुंजित जीव, स्वतत्त्वथी रहित दीन रंकभूतने जिनसेवना किहांथी मले ? ते कोइक पुणयानुबंधी पुणयना उदग्रथी, जीवने जिनसेवना प्रगटी, ते जीव हर्षथी कहे छे, जे श्री नमि जिनवरनुं सेवन, तेहीज घनाघन केतां मेह उनम्यो.

जेम मेह चारे दिशाथी चडी आवे, तेम मनें, वचनें, कायायें, अध्यात्मपरिणतियें श्रीनमिप्रभुनो बहुमान नमन गुणनी अद्भुतता एटले प्रभुयोग मल्यानी आश्चर्यता प्रगटी, ते मेह रूप जाणवी.

वली मेह जेवारें चारे तरफथी घटा करी उंचो आवे, तेवारें लोकना मनमां दुःकालनो भय होय ते जाय, तेम इहां श्री अरिहंत सेवनारूप मेघ जेवारें प्रगटे, तेवारें अनादि काल-नो मिथ्यात्व रूप जे रौरव केतां दुःकाल हतो, ते भविक जीवोना चित्तथी गम्यो केतां टली गयो, ए लाभ थयो.

मेघने विषे जेम मोटां वादलां वधे, तेम ए प्रभुभक्ति-रूप मेघने विषे शुचि केतां पवित्र, अविधिरहित, आशातना-रहित, पुद्गल आशंसारहित, एवी भली आचरणा जीवने थाय,

तेहीज अत्रपटल केतां - वादलांना समूह वधे, केतां महोटा
थाय, एटले रूपी वस्तुनें रूपी उपमा घटे

मेहमां विजलीना झबकारा घणा होय, तेम इहां प्रभु-
सेवना करता आपणा आत्माना परिणति शुद्ध थाय, गुणी
शुद्धतत्त्वीना सेवनने अनुयायी थाय, तेहीज विजलीना झबुका
जाणवा ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

वाजे वायु सुवायु, ते पावन भावना रे ॥ ते० ॥

इंद्रधनुष्य त्रिकयोग, ते भक्ति एक मना रे ॥ ते० ॥

निर्मल प्रभु स्तवघोष, ज्युं(ध्व?)नि धन गर्जना रे ॥ ज्युं ॥

तृष्णा ग्रीष्मकाल, तापनी तर्जना रे ॥ ता० २ ॥

अर्थः—मेहमां जेम वायु अनुकूल होय, तेम ए जिन-
भक्तिरूप मेहने विषे जिनगुणनी बहुमान सहित जे भावना
भावनी तेहीज सुवायु वाय छे

वर्षादमां त्रण रेखा युक्त इंद्रधनुष्य शोभाकारी होय,
तेम इहा मन, वचन, कायरूप त्रण योग ते भक्तिने विषे एक
मना थया, ते इंद्रधनुष्य छे.

जेम मेहमां गर्जना होय, तेम इहां निर्मल उज्ज्वल प्र-
भुना गुण तेमनी जे स्तवना ध्वनि शब्द तेहीज धन केतां
मेहनी गर्जना जाणवी.

मेहथी ग्रीष्म उष्णकालना ताप टले, तेम इहां प्रभुमे-
वनथी तृष्णा पुद्गल सुखनी पीरासानो जे अंतरग ताप होय,
ते टले एटले आत्माने आत्मसुखनी ईहाये पर जे तृष्णारूप
ग्रीष्म कालनो महाताप, ते मटे ॥ २ ॥

शुभ लेश्यानि आलि, ते वग पंक्ति वनी रे ॥ ते० ॥

श्रेणीसरोवर हंस, वसे शुचि गुण मुनि रे ॥ व० ॥

चौगति मारग बंध, भविक निज घर रखा रे ॥ भ० ॥

चेतन समता संग, रंगमें ऊमह्या रे ॥ रं० ॥ ३ ॥

अर्थः—जेम मेहमां वगपंक्ति होय तेम इहां प्रशस्त शुभलेश्या जे पद्मशुक्ललेश्याना परिणाम एहवी लेश्याशुभनी उज्ज्वलता ते वगपंक्ति छे.

वर्षादमां हंसपंखी सरोवरें वसे, तेम जिनभक्तिना योगें हंसपंखी जेहवा मुनिराज ते ध्यानारूढ थइ उपशम तथा क्षप-करूप श्रेणीयें जइ वसे.

जेम वर्षादथी चार दिशिना मार्ग बंध थाय, तेम इहां जिनभक्तिना योगें चार गतिनो मार्ग बंध थाय एटले साचा मनथी जे प्रभुसेवन करे, ते चार गतिना भ्रमणने टाले.

वर्षाकालें सर्वलोक पोताने घरें रहे. तेम इहां पण अना-दिनो उद्धत परभावाभिलाषी आत्मा ते अनेक विषय विकार-रूप भावमां रहेतो हतो, तेने श्रीनिःकर्मदेवने निमित्तें स्वरूपनी प्राप्ति थइ, चेतनसमताने संगे रंगे केतां रीझे करीने ऊमह्यो थको समतामां रमी रहे, स्वात्म स्वभावमां अनुभव रंगे रमी रहे ॥ ३ ॥ इति तृतीय माथार्थः ॥

सम्यग्दृष्टि मोर, तिहां हरखे घणुं रे ॥ ति० ॥

देखी अद्भुत रूप, परम जिनवर तणुं रे ॥ प० ॥

प्रभुगुणनो उपदेश, ते जलधारा वही रे ॥ ते० ॥

धर्मरुचि चित्त भूमि, मांहे निश्चल रही रे ॥ मां० ४ ॥

अर्थः—जिनभक्तिरूप मेह देखीने सम्यग्दृष्टि तत्त्वरुचि-

रूप मोर तेहने अत्यंत हर्ष आनंद उपजे, श्रीतीर्थकर देवतुं रूप केहवुं छे ? जो अत्यंत परमोत्कृष्टरूप सर्व देवता मलीने निकुर्वे, तोपण श्रीअरिहंतना पगना अगुठा समान रूप करी शके नहीं, एहवुं परमशीतल निर्विकारी परमेश्वरतुं रूप देखीने सम्यक्दृष्टि जीव वर्षाकालना मोरनी परें हर्ष आनंद पामे.

प्रभु श्रीतीर्थकर देव, तेनी भक्तिमां परिणम्या, एवां तत्त्वरुचि जीव, ते पोताना वचनें उच्चार करीने प्रभुना गुण-ग्राम करे, ते प्रभुगुणगानरूप मेघनी जलधारा, वहीने ते जलधारा धर्मरुचि जीवना चित्तरूप भूमिकामांहे निश्चल रहे। एटले तत्त्वरुचिर्वंत जीवना चित्तमां प्रभुना गुण समाइ रहे ॥ ४ ॥

चातक श्रमण समूह, करे तव पारणो रे ॥ क० ॥

अनुभव रम आस्वाद, सकल दुःख वारणो रे ॥ स० ॥

अशुभाचार निवारण, तृण अंकूरता रे ॥ वृ० ॥

विरति तणा परिणाम, ते नीजनी पूरता रे ॥ ते० ५ ॥

अर्थ—प्रभुसेवनरूप जलधारा वरमतां श्रमण निर्ग्रंथे तत्त्वरमणी महाशुनि तद्रूप जे चातक ते पारणु करे छे, एटले सम्यग्दर्शन कालें तत्त्वस्वरूपें पोताना अनुभवनी पीपासा थड हती, ते पीपासा श्रीजिनभक्तिरूप कारण पामीने आत्मस्वरूपनु यथार्थ ज्ञान ते रूप अनुभव तेहना रमनुं आस्वादन केता भोगववापणु ते रूप पारणुं करे, पण ए पारणुं कहेवुं छे ? जे सकल सांसारिक विभाव जे कर्मभार उग्रता गुणा-वरणतादिक तेनो वारणो केता चारणहार छे, एटले तद्रूप-दुःखनुं निवारण करे छे.

हवे वर्षाकालें नीलां तृण ऊगे, तेम जिनभक्तिरूप मेह-
मांहे पण अशुभआचारनुं निवारण थयुं, ए तृणना नीला अंकूर
प्रगट्या.

वर्षाकाले कर्षणी लोक धरतीमां बीज वावे, तेम इहां
आश्रवथी विरमवारूप विरतिना परिणाम उपना, तेहीज बीजनी
पूर्णता थइ ॥ ५ ॥

पंच महाव्रत धान्य, तणां कर्षण वध्यां रे ॥ त० ॥
साध्यभाव निज थापी, साधनतायें सध्यां रे ॥ सा० ॥
ज्ञायिक दरिसण ज्ञान, चरणगुण उपना रे ॥ च० ॥
आदिक बहुगुण सस्य, आत्म घर नीपना रे ॥ आ० ॥ ६ ॥

अर्थः—वर्षाकालमां जे बीज वाव्यां होय, ते उगीने वधे,
इहां द्रव्य तथा भावथी पांच महाव्रत “सच्चाओ पाणाइवा-
याओ वेरमणं” इत्यादिक धान्य ऊगीने उत्सर्गावलंबी महाव्रत
ते निरतिचार थया, तेहीज ध्याननां कर्षण वृद्धि पाम्यां, पण
साध्यभाव केतां साध्यपणुं निज केतां पोतानो आत्मभाव ते
साध्यपणे थापीने साधन कार्य निपजाववानी शक्ति, तेपणे
सध्या, एटले साधनरूप थया, भावार्थ जे आत्मानी सत्ता
संपूर्ण प्रागूभाव करवी एहवो साध्य धारीने, महाव्रत परिण-
तिरूप साधनायें परिणम्या, ज्ञायिकनिरावरण, संपूर्ण केवलज्ञान,
केवल दर्शन, यथाख्यातचारित्र प्रमुख गुण उपना प्रगट
थया. इत्यादिक स्वगुणनी अनंतता तेहीज सस्य केतां धान्य
ते जे आत्मा जिनसेवनमयी थयो हतो, तेहना घरे नीपना,
आत्मप्रदेशसर्व ज्ञान, दर्शन चारित्रनी पूर्णता पाम्या ॥ ६ ॥

प्रभुदरिसण महा मेह, तणे प्रवेशमें रे ॥ त० ॥

परमानंद सुभक्त थयो, मुझ देशमें रे ॥ थ० ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, तणो अनुभव करो रे ॥ त० ॥

सादि अनंतो काल, आतमसुख अनुसरोरे ॥आ०॥७॥

अर्थ—एहवा एकत्रीशमा जिनेंद्र श्री नेमिनाथ, परम दयालु, गुण समुद्र, जगन्नयजीविना भावभास्कर, कर्मरोगना महावैद्य, तेहनं जे दर्शन केतां मुद्रानुं जोबु, अथवा शासन, अथवा दर्शन शब्दें समकित, तेहीज महा वर्षादि, तेहने प्रवेशें केतां पेसवे करीने परमानंद आत्मिक आनंदरूप सुमच्च केतां सुकाल थयो, माहरादेश केता असंख्यात प्रदेशरूप क्षेत्रने विपे, तेमाटे देवमांहे चंद्रमा समान अथवा देवचंद्र जे स्तुतिकर्ता तेहनं संबोधन हे देवचंद्र ! श्रीजिनचंद्र श्रीवीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तेहना अनुभव गुणज्ञानादिनुं आस्वादन करो, तेहनाज गुण बहुमानमांहे लीन रहो, तो थोडा कालमां सादि केतां जहनी आदि छे, परंतु अनंत केता छेडो नथी, एहनु जे अविनाशी आत्मिक सुख, तेहने अनुसरो केतां पामो. एटले अहो भव्यजीवो ! तुमे श्रीनिर्मलानदी मंपूर्णस्वरूपभोगी एहवा श्रीजिनेश्वर तेहना गुणनु बहुमान तथा तेहनी आज्ञानुं मानवुं, ते मध्ये रहो, तो सपूर्णसिद्ध अविनाशी, अक्षयआत्मिक, अनंत संपदा पामो, स्वसंपदा प्रगट करवानो ए नियमा पुष्ट उपाय छे ॥ ७ ॥ इति श्रीनेमिनाथजिनस्त्वन्नं संपूर्ण ॥ २१ ॥

॥ अथ द्वाविंशति श्री नेमिनाथजिन स्तवनं ॥

॥ पद्मप्रभजिन जइ अलगा बस्या ॥ ए देशी ॥

नेमि जिनेसर निज कारज कर्युं,

छांज्यो सर्व विभावो जी ॥

आत्मशक्ति सकल प्रकट करी,

आस्वाद्यो निज भावो जी ॥ ने० ॥ १ ॥

अर्थ—हवे वावीशमा श्रीनेमिनाथनी स्तुति करे छे, जादवकुलमां तिलक समान, महाउपगारी, एहवा श्रीनेमिनाथ जिनेश्वरें निज केतां पोतानुं कार्य कर्तुं, क्यांही पण आत्माने खरडवा दीधो नहीं, छांड्यो केतां तज्यो सर्व केतां सकल चार निक्षेपें विभाव ते अंतरंग तथा बाह्य कारणथी सर्व विभाव तज्यो, आत्मानी शक्ति असंख्यात प्रदेशने विशे जे अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत सुख अनंत अगुरुलघु, अनंत दान, अनंत लाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग, अनंत वीर्य, अवरण, अगंध, अस्पर्श, परम असंगता, अयोगीतारुप पोतानुं प्रभुत्व, विभुत्व, कारणत्व कार्यत्व, व्यापकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, अस्तित्व, नास्तित्व, भेदत्व, अभेदत्व, कारकत्व, पारिणामिकत्व, सत्त्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व, ईश्वरत्व, सिद्धत्व, अखंडत्व, अलिप्तत्वादि ते उत्सर्ग आत्मसमाधिरुप सर्वशक्ति प्रकट करी, वली ते निरावरण आत्मधर्म तेहने आस्वाद्यो, स्वरुपभोक्तृत्वपणे निजभाव केतां पोताना भावपणे श्रीनेमिनाथ प्रभुर्ये भोगव्यो ॥ १ ॥

राजुलनारी रे सारी मति धरी,

अवलंब्या अरिहंतो जी ॥

उत्तमसंगे रे उत्तमता वधे,

सधे आनंद अनंतो जी ॥ ने० ॥ २ ॥

अर्थ—वली राजीमतिस्त्रीयें पण रुडी मति अंगीकार करी, सर्व परिग्रहना संगनो त्याग करीने श्रीअरिहंत देव उपर अरिहंतनो राग धरी उपगारीपणे गुणीने आदरे अवि-

लंब्या एटले भर्त्तारपणानो अशुद्ध राग टाली देवतचने रागें
आदर्या, एम विचार्युं जे उत्तमने संगें उत्तमता वधे, एटले
चारित्रवंत सर्वत्र श्रीनेमीश्वर भगवान् ते सर्वोत्तम छे तो एना
सगर्धी महारी पण उत्तमता एटले सिद्धता पूर्णात्मता वधे, वली
सधे केता नीपजे. आनद केता आत्यंतिक. एकातिक, निर्द्वंद्व,
निरामय सुख थाय, तेमाटे तेहीज करतुं घटे, एम सर्व भव्य
जीवोयें विचारवुं ॥ २ ॥ इति द्वितीयगाथार्थः ॥

धर्म अधर्म आकाश अचेतना,
ते विजाति अग्राह्यो जी ॥

पुद्गल ग्रहये रे कर्मकलंकता,
वाधे बाधक वाह्यो जी ॥ ने० ॥ ३ ॥

अर्थः—हने राज्ञीमतीयें जे विचार्युं, ते कहे छे. सर्व-
लोकमां पंचास्तिकाय छे, अने काल ते छती रूपें द्रव्य नथी,
श्रीभाष्यकार तथा अनुयोगद्वारसूत्र जोतां उपचारद्रव्य छे. वली
पंचास्तिकायमां धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय अने आकाशा-
स्तिकाय, ए त्रण द्रव्य अचेतन छे, तथा विजाति छे. वली
जीवद्रव्यनी ए जाति नहीं, अग्राह्य छे, ते अपरिणामीपणा
तथा अचलपणा माटे जीवथी ग्रहणाय नहीं, तेमाटे एहथी
पण माहरे काम नहीं, तथा पुद्गल द्रव्य मायें चिरकालनो
परिचय छे, तेहने जो ग्रहीयें, तो पुद्गल जडद्रव्यने ग्रहणे
आत्माने नरां कर्म वधाय, अने आत्मा कलंकसहित थाय,
अने बाधकभाव, परकर्तृता, स्वगुणरोधकता, चेतनादि गुणनो
विपर्यासता वाधे केता वृद्धि पामे, ते माटे पुद्गलने लेतां
अनतो काल धयो, पण आत्महित यंत्रुं नहीं, तेमाटे ए

पुद्गलना संगथी बाह्य भीड वधे, माटे उत्तम जीव एहने ग्रहे नहीं, एम राजुलें विचार्युं जे एने पण ग्रहबुं नहीं, केमके एना ग्राहक तो अनंता जीव निगोद मध्यें पड्या छे ॥ ३ ॥ इति तृतीयगाथार्थः ॥

रागीसंगें रे रागदशा वधे,

थाए तिणें संसारो जी ॥

नीरागीथी रे रागनुं जोडबुं,

लहिए भवनो पारो जी ॥ ने० ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे पांचमुं जीवद्रव्य ते अनेक आत्मा छे, वली स्वजाति पण छे, माटे तेहने ग्रही राग करीयें, परंतु एक अवगुण एहमां पण दीठो, ते कहे छे, जे संसारी जीव तो राग द्वेष संयुक्त छे, माटे तेहनो संग कीधे तो आपणने पण राग दशा वधे, अने रागदशा तो अभिनवबंधनो हेतु छे, अरिहंतदेवनां आगम जोतां अने आत्मधर्म जोतां, राग तो तजवा योग्य छे, रागथी चार गतिरूप संसार थाए—वधे, माटे ए पण आत्महित नहीं, ते माटे नीरागी, वीतराग, परमचारित्री, सर्वभावपरत्यागीथी, जो राग जोडीयें, तो भवनो पार पामीयें, यद्यपि क्षय तो रागनोज करवो छे, पण प्रथम राग पलटाववानो ए उपाय छे, जे नीरागीथी राग जोडीयें, एटले ते नीरागी राग करे नहीं, तेथी अनुक्रमें ए आपणो राग पण क्षय पामे, तेवारें ए आत्मा वीतरागभाव भजे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

अप्रशस्तता रे टाली प्रशस्तता,

करतां आश्रव नासे जी ॥

संवर वाधे रे साधे निर्जरा,

आत्मभाव प्रकासे जी ॥ ने० ॥ ५ ॥

अर्थः—ते माटे कामरूप जे अप्रशस्त राग हतो, ते टाली अरिहंतपणरूप प्रशस्त राग करवो, गुणी उपर राग ते प्रशस्त छे, ते साधनकाले कामनो छे, ते प्रशस्त राग करता अनुक्रमे आश्रव नाश पामे, नवा कर्म लेवा रूप अशुद्ध परिणति टले, वली प्रशस्तरागी जीव, ते गुणीने अवलंब्यो रहे, तेहथी स्वगुणी एकत्वता वधे, ते स्वगुण एकत्वता परिणामथी संवरपरिणति वधे, अने पूर्वकृत कर्मनी निर्जरा परीसाटक रूप ते पण सधे केता नीपजे, ते संवरनिर्जराने प्रगटवे आत्मानो भावधर्म, अरूपीशक्ति प्रकाश पामे, निरावरण थाय ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

नेमिप्रभुध्याने रे एकत्वता,

निजतत्त्वे एक तानो जी ॥

शुक्रध्याने रे साधि सुसिद्धता,

लहिये मृत्ति निदानो जी ॥ ने० ॥ ६ ॥

अर्थः—राजीमतीजी एम विचारीने श्रीनेमिपरमेश्वरनेज अवलंब्यां केमके नेमिप्रभुने ध्याने एकत्वता तन्मय करवे करीने निज केतां पोताना तत्त्वे आत्मस्वरूपे एकतान केतां एकत्वपणुं नीपजे, ते जेवारें स्वरूपे एकत्वपणु पामे, तेवारें शुक्रध्यान प्रगटे जे स्वरूप एकत्वपणुं तेहीज शुक्रध्यान छे ते शुक्रध्याने करी पोतानी साध्यता साधी केतां नीपजावीने तेहथी मृत्ति जे सकलकर्मरहीतपणु तेहनूं निदान केतां मूलकारण लहियें, केतां पामीयें ॥ ६ ॥

अगम अरूपी रे अलख अगोचर,

परमात्म परमीशो जी ॥

देवचंद्र जिनवरनी सेवना,

करतां वाधे जगीशो जी ॥ ने० ॥ ७ ॥

अर्थः—तेमाटे सर्व भव्य आत्मार्थी अध्यात्म सुखरुचि एहबुं तत्त्व सेवे, ते कहे छे. अगम केतां जेहनुं गम्य नहीं, अथवा जेमांहे अजाण जीवथी प्रवेश थाय नहीं, वली जेहनुं रूप, गंध, वर्ण, रस, संस्थान नहीं, तेमाटे अरूपी, तथा अलख केतां पुद्गलाभिलाषी, एकांतवादी, एवा नैय्यायिक, वेदांतिक, सांख्य मैमांसिक, वैशेषिक बौद्ध, नास्तिक, तथा जे एकांत द्रव्यदयादिक पक्षग्राही एवा जैनलिंगी इत्यादिकथी लखाय नहीं, एटले ओलखाय नहीं, वली अगोचर केतां इंद्रियगोचर नहीं, अतींद्रिय पदार्थ ते अतींद्रियस्याद्वादज्ञाने सापेक्ष उपयोगे ध्याननी धारणायेंज गोचर छे, वली परमोत्कृष्ट सर्व विभाव रहित अनंत गुणप्राग्भावरूप आत्मा छे, वली परमीश केतां उत्कृष्ट अविनाशी सहज अनंतगुण पर्याय धर्मना ईश्वर छे, वली नरदेव ते चक्रवर्ती, भावदेव ते भुवनपति, व्यंतरं ज्योतिषी, वैमानिक, ए चार निकायना देवता, तथा धर्मदेव ते मुनिराज, जिनकल्पी, स्थविरकल्पी, परिहारविसुद्धि, पडिमा-पडिवन्न, सूक्ष्मसंपरायी, उपशांतमोही, क्षीणमोही उपाध्याय, श्रुतधर, पूर्वधर, आचार्य, गणधर प्रमुख ते धर्मदेव, ते सर्व मध्ये चंद्रमा समान नायक, शासनना पति, मार्गदर्शक, एहवा जे जिनवर तेहनी सेवना आज्ञा मानवारूप करतां थकां वाधे केतां वृद्धि पामे, साधकसंपदा, तथा सिद्धतारूप संपदा, तेहथी श्रीतीर्थकर तीर्थपतिनी सेवना ते परम प्रधान छे. द्रव्यथी

वंदन नमनादिक अने भावथी गुणनुं बहुमान, आज्ञाप्रमाणता रूप सेवा करतां अनन्ता सिद्ध थया, वली अनन्ता सिद्ध थशे, एहीज मोक्षसुखनो उपाय छे ॥ ७ ॥ इति नेमिनाथजिन स्तवन संपूर्ण ॥ २२ ॥

॥ अथ त्रयोविंश श्रीपार्श्वनाथ जिन स्तवनं ॥

॥ कडखानी देशी ॥

सहजगुण आगरो स्वामी सुखसागरो,

ज्ञानत्रयरागर प्रभु सवायो ॥

शुद्धता एकता तीक्ष्णता भावथी,

मोहरिपु जीति जय पडह वायो ॥ १ ॥

अर्थः—हवे त्रेवीशमा श्रीपार्श्वनाथ पुरुपादानी परमेश्वरनी स्तुति करे छे श्रीपार्श्वनाथ प्रभुजी कहेवा छे ? सहज अकृत्रिम वस्तुना मूल धर्म ज्ञानानदादिक तेहना आगर छे, अनन्त आत्मगुण उपजाववाना धाम छे, स्वामी केतां स्वसंपदाना अधिपति छे, सुखना सागर छे, एटले जे अतीन्द्रिय, स्वाधीन निरामय, निःप्रयास, अविनाशी सुख तेना समुद्र छे, निःसंग सुखना पात्र छे, केवलज्ञानरूप वयर केता वज्र ते हीरो तेहना आगर छे, सदा सर्वदा प्रभु तमें सवाया छो, ए श्री पार्श्वनाथ स्वामीनी शुद्धता, ज्ञाननी यथार्थता, निर्मलता, एकता, ते चारित्रनी स्वरूप तन्मयता, तीक्ष्णता, ते वीर्यनी तीव्रता, वीर्यनी तीक्ष्णता ते धारा छे, अने चारित्रनी एकता ते पुंठलथी प्रेरणा छे, तथा ज्ञान ते प्रकाश देखाडण हर छे, ते माटे ए मलेज मोक्ष छे. कोइ कहेशे जे सम्यक्दर्शन कां न

दोष गुण वस्तुनो लखीय यथार्थता,
लही उदासीनता अपरभावे ॥

ध्वंसि तज्जन्यता भावकर्त्तापणुं,

परम प्रभु तुं रम्यो निज स्वभावे ॥ स० ॥ ३ ॥

अर्थ—हवे वली एज शुद्धता, एकता, तीक्ष्णता ए
त्रणेनो अर्थांतर कहे छे. वस्तु जे वस्त्र, धन, वनिता, शीत,
आतप, विषादि तेना दोष ते अशुभवर्णादिक तथा गुण
ते शुभवर्णादिक, तेहने लखे केतां जाणे, यथार्थपणे एटले
अशुभदोष रहित वस्तुने अशुभदोषी सहित जाणे, अने शुभ-
गुणवंत वस्तुने शुभ जाणे. जड वस्तु जडपणे जाणे, चेतन
वस्तुने चेतनपणे जाणे, ते यथार्थ स्याद्वादपणे जाणे, ए
शुद्धता कहीये. अने ते वस्तुने इष्टता, अनिष्टता रहितपणे
जाणे, ते उदासीनता कहीये. एहवुं उदासीनतापणुं तेने लही
केतां पामीने एटले एवुं उदासीनपणुं जे पाम्यो, तेथी एक
पोतानो आत्मा असंख्यातप्रदेशी तेहने विषे व्याप्यव्यापक-
भावे रखा जे गुणपर्याय, तेहथी अपरभाव केतां अन्यभा-
वने एटले बीजा अन्य केतां जुदा जे अनंता जीव तथा
अनंता पुद्गलादिक अजीव पदार्थ, ते सर्वथी उदासपणे सर्वना
अग्राहक, अभोगी असंगी थया, ए सर्व चारित्र परिणतिने एकता
कहिये अने ध्वंसी केतां उच्छेदीने तज्जन्यताभावे जे विभाव-
कर्त्तापणुं तेहने छेदीने छेदकता शक्ति ते तीक्ष्णता जाणवी.
ए कार्य करवे हे प्रभुजी ! तुं निज केतां पोताने स्वभावे
रम्यो, आत्मस्वभावरमणी थयो ॥३॥ इति तृतीय गार्थार्थः ॥

शुभ अशुभ भाव आविभास तहकीकता,

शुभ अशुभ भाव तिहां प्रभु न कीधुं ॥

शुद्धपरिणामता वीर्यकर्ता थइ,

परम अक्रियता अमृत पीधुं ॥ स० ॥ ४ ॥

अर्थ—वली एहीज त्रिमंगीनो अर्थांतर कहे छे. शुभ केतां प्रशस्त अशुभ केतां अप्रशस्त जे भाव, तेहनी जे अविभास केता ओलखाण; तहकिकता केता तेहने निर्धारे ते शुद्धतापणे ए सर्व तमे जाण्यु, परंतु हे परमेश्वर ! तुम तिहां रागीद्वेषीपणे शुभअशुभ भाव पण कथों नहीं, एहीज एकता, चारित्र धर्मनी अरागी, अद्वेषी, परिणति ते एकतर शुद्ध निरावरण परिणामता ते पारिणामिकभावे जे वीर्यगुण, तेहना कर्ता थइने एटले रागद्वेषने अनुयायीपणे वीर्यनो विकार छे, ते रागद्वेष रहितपणे थये, वीर्य शुद्ध थाय. तेवारें स्ववीर्यवलें पारिणामिक कर्ता थइने, एटले स्वपरिणामिकताना कर्ता थइने परम केता उत्कृष्ट अक्रियपणारूप अमृततुं पान तमें कर्तुं एटले विभास कर्तृता तथा साधकरूप कर्तृता तजीने अकप, अचल, वीर्यपणे हे परमेश्वर ! तमें अक्रिय थया ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

शुद्धता प्रभु तणी आत्मभावे रमे,

परम परमात्मता तास थाए ॥

मिश्रभावे अछे त्रिगुणनी भिन्नता,

त्रिगुण एकत्व तुज चरण आए ॥ स० ॥ ५ ॥

अर्थ—एहवी शुद्धता, तत्त्वता, निरावरणता, तथा अनत-गुणभोगीपणानी जे प्रभुता, ते आत्मभावे केता पोताने आत्म-पणे रमे, एटले प्रभुनी प्रभुता तेनो रंगी जे जीव, तेहने परम उत्कृष्ट शुद्ध परमात्मापणु थाय, मिश्रभाव जे चयोपशम-भावे त्रिगुण जे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तेहनी भिन्नता

केतां भेदरत्नत्रयी छे, साधक छे, परंतु सविकल्प छे, ते त्रि-
 गुण जे रत्नत्रयी, तेहनुं जे एकत्व केतां एकपणुं अभेदपणुं
 ते थाय, तुज केतां ताहरे चरण यथाख्यात क्षायिक चारित्र
 आवे, प्रगटे, एटले क्षीणमोहगुणठारुं एकत्व वितर्क अप्रविचार
 शुक्लध्यान उपने, जे दर्शन निर्धाररूप, तथा चारित्र स्थिरता-
 रूप, ए बे धारा, ज्ञानधारार्थी अभेद थई, एटले प्रथम मि-
 थ्यात्वकालें तो ज्ञान विपर्यास रूपे हतुं ते सम्यक्दर्शन प्रगटे
 यथार्थज्ञान थयुं, तेवारें ज्ञानस्वरूप रमणी थयो, पछी ते ज्ञान
 स्वरूपरमणी स्थिरताभावने भजे, एम ध्यानारूढ थयो, विकल्प
 तजतो, पोताना आत्माने तत्त्वपरिणतिमध्ये तन्मयता पमाडतो
 पछी ज्ञाननुंज रमण, ज्ञाननोज निर्धार, एटले पर्यायभेदें ते मू-
 लगुणें एकत्व पामे, ए अभेदरत्नत्रयीनुं स्वरूप, ध्यानिगम्य
 छे, परंतु मूलनयें आत्मा ज्ञान, दर्शन, ए बे गुणें सहित छे,
 एहवी आम्नाय छे, शेष निर्धारस्थिरताएं सर्व चेतना गुणनी
 प्रवृत्ति छे, ते माटे ए ज्ञानमांहेज स्थिरत्वपरिणति ते अभेदता
 कहेवी, प्रथम क्षयोपशमी चलवीर्यताएं चेतनापर्यायनी प्रवृत्ति
 असंख्यसमयी हती, ते भासनप्रवृत्ति पछी क्रमें कारण कार्यमां
 थिरतापरिणतिएं हती, ते क्षीणमोहकाले रोधकने क्षये सम-
 काल असंख्यसमयी प्रवृत्ति थई, ते केवलज्ञान थये निरावरण-
 तायें एक समयी थई ए रीतें अभेद रत्नत्रयी थाय छे. ए
 श्री भाष्यथी समजवी ॥ ५ ॥

उपशम रस भरी सर्व जन शंकरि,

मूर्ति जिनराजनी आज भेटी ॥

कारणें कार्यनिष्पत्ति श्रद्धान छे,

तेयें भवभ्रमणनी भीड भेटी ॥ स० ॥ ६ ॥

अर्थः—उपशम रम जे कषायनो अभाव, तेहथी भरी अने सर्वलोकने शकरी केतां कन्याणनी करनारी एहवी प्रभुनी थापना केता मूर्ति तेहनी शांत अचल अस्पृहमुद्रा, ते आज भेटी केतां नमस्काररूपे सेवी. हवे कारणे कार्य निपजे, एहवी श्रद्धा प्रतीत छे, तेणें मोक्षनु निमित्त कारण, श्री जिनमुद्रानो योग थयो, अने उपादान कारण आत्मोपयोग प्रमुख अघ्यवसाय जिनगुणभासन रागहर्षे परिणम्या, एहवा कारणने मलवे, जाणुं छु जे कारणता ते कार्यनो हेतु छे, माटे कारण मले कार्यनी निष्पत्ति थशे. एहवो आगमिक भव्यताद्योत उपयोग थयो, तेहथी जाण्युं जे ए परमपुरुषोत्तम देव श्री वीतरागनी इष्टता जो उपनी, तो कोइ दिवसें ए आत्मा गुणी थनार छे, ए अनुमानें जाण्यो जे कारण मन्थुं तो कार्य निपजशे अने भवभ्रमण पण टलशे, ए हर्षनुं वचन छे, भवभ्रमणनी मीड मटी, ए कारणे कार्योंपचारी वचन छे, एम भावना करवी जो प्रभुनी प्रभुता इष्ट लागे छे, तो आत्मा सिद्धता वरशे ॥ ६ ॥ इति षष्टगाथार्थ ॥

नयर खंभायतें पार्श्वप्रभु दर्शनें,

विकसते हर्ष उत्साह वाघ्यो ॥

हेतु एकत्वता रमण परिणामथी,

सिद्धि साधकपणो आज साघ्यो ॥ स० ७ ॥

अर्थः—एहवा अघ्यवसाय श्रीखंभायत तीर्थे श्रीसुखमागर पार्श्वजिननुं वंदन करतां, कोइक प्रभुनी प्रभुता ऊपर अपूर्व राग उपनो ते हर्षे ए वचन मांख्यु छे, ते माटे खंभायतनुं नाम आण्यु छे, जे ए खंभायत नगरमां विकमीत हर्षने विकस्वर थवे उत्साह वाघ्यो केतां वघ्यो, हेतु जे कारण श्री

अरिहंत देव, तेहथी एकत्वपणे अत्यंत रागें रम्यो जे परिणाम, एटले प्रभुथी अतिरागी परिणाम थवार्थी, सिद्धि जे मोक्ष तेहनूं साधकपणुं ए आत्मामांहे छे, एहवुं अनुमान सध्युं एटले प्रभु-रागें अनुष्ठान रहित आशंसारहित परिणाम्युं तो जाण्युं जे ए जीवमोक्ष निपजाववानी योग्यतावंत छे, माटे एहवुं अनुमान कीधुं जे आज केतां जे दिवसें प्रभुने भेट्यो, ते दिवसें माहरुं सिद्धिसाधकपणुं सध्युं । ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

आज कृतपुण्य धन्य दीह मारो थयो,

आज नर जन्म में सफल भाव्यो ॥

देवचंद्र स्वामी त्रेवीशमो वंदीयो,

भक्तिभर चित्त तुझ गुण रमाव्यो ॥ सं० ॥ ८ ॥

अर्थ—आज जे वेलायें अनुष्ठानादिक दोष रहित आत्मा प्रभुभक्तें परिणाम्यो, ते दिवस कृतपुण्य केतां पुण्योदय थयो, ए दिन धन्य थयो, ए दिनें जिनभक्ति रत्त अघ्यवसाय थवे ए नर जन्म सफलपणे विचार्यो जे माहरो ए जन्म सफल छे, जे में नीरागी, निस्पृही, परमगुणी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी देव, श्री पार्श्वनाथस्वामी त्रेवीशमा तीर्थकर तेने भेट्यो, वांधो, स्तव्यो, अने तेहनी भक्तिभरने विषे चित्त केतां मन रमाव्युं, एटले पुद्गलरमणता तजी, श्रीअरिहंतगुणनी रमणताएं मन रमाव्युं, तेहीज दिन कृतार्थ कृतपुण्य सफल मानवो, ए दिन लेखानो जाणवो, सर्व देवमांहे चंद्रमा समान अथवा स्तुतिकर्ता जे देवचंद्र ते एहवो लाभ पाव्यो ॥ ८ ॥ इति श्रीपार्श्वनाथजिन स्तवनं ॥

॥ अथ चतुर्विंश श्रीमहावीरजिन स्तवनं ॥

॥ ढाल कडखानी देशीए चाले छे ॥

तार हो तार प्रभु मुझ सेवक भणी,

जगतमां एटलुं सुजश लीजें ॥

दास अवगुण भयो जाणी पोतातणो,

दयानिधि दीनपर दया कीजें ॥ ता० ॥ १ ॥

अर्थः—कोइक अवसरें श्री जिनागमना अभ्यासें करीने संसार अमण ज्ञानावरणादि आवरणें आवृत पोतानी अनंत आत्मशक्ति जाणीने अनादि परभावानुषंगता दोषने दुःखे उद्विग्न आत्मा ते पोतानी साधकता शक्ति अणदेखतो परम-निर्यामक समान चौवीशमा श्रीवरिनाथना चरण शरण निर्धारीने, श्री वीरप्रभुनी आगल प्रार्थना सहित, विनंति करे छे. जे हे नाथ ! हे दीनदयाल ! हे प्रभुजी ! मुज सरिखो जे तत्त्वसाधन तथा आज्ञा निर्माहमा असमर्थ, तेने मात्र नामधी सेवक जाणी तार तार ! ! ! ए गुणरौघक रूप दुःखधी निस्तार ! ! ! तुज सरीखा प्रभु जिना बीजा कोने कहू ? जगतमां एटलु सुजश लीजें, यद्यपि प्रभु तो जशना कामी नथी, परंतु उपचारें भक्ति आतुरताए कहे छे, जे मुज सरीखो दास ते यद्यपि राग, द्वेष, असंयम, अनुष्ठानाशमादि दोष, एकांतादिदोष, अनादरादिदोषरूप अवगुणें करी भयो छें, तो पण ताहरो कहे-वाय छे, ते माटे हे दयानिधि ! केतां भावकरुणाना निदान ! दीन जे हुं रंक, अशरण, दुःखित, तत्त्वशून्य, ज्ञानादि संपदारहित, भावदरिद्री, मार्गनो विराधक, असंयमसंचारी, महाविकारी, तमारी आज्ञायी विमुख, अनादिनो उद्धत, एहवा मुज ऊपर

दया करीजें, ताहरी कृपा तेहीज त्राण (शरण) थशे. यद्यापि अरिहंत तो कृपावंतज छे, तो कृपा शी करवी छे ? तो पण अर्थी विचारे नहीं माटे अर्थीतुं ए वचन छे, जे दयावंतनेज एम कहेवाय छे, जे हे देव ! तमें दयाना मंडार छो, तमनेज अवलंबे तरीश, एज सत्य छे ॥ १ ॥ इति प्रथम० गाथार्थः ॥

रागद्वेषे भरयो मोह वैरी नडयो,
लोकनी रीतमां घणुंए रातो ॥
क्रोधवश धमधम्यो शुद्धगुण नवि रम्यो,
भम्यो भवमाहे हुं विषय मातो ॥ ता० ॥ २ ॥

अर्थ—दास कहेवो छे, रागद्वेषे भर्यो, जगत्मां पडयो, गुणीथी ईर्ष्या करे छे, मोह जे मुंजितपणुं ते तत्त्वनी अजा-
णता विपर्यासता, हेतुयें मोहवेरी नडयो तेथी दवाणो छे, तथा लोकनी जे रीत केतां चाल तेमाहे घणोज मातो छे, लोकनी चाल माहे मग्न छे, लोकरंजननो अर्थी छे, क्रोध जे तातां चंडपरिणाम तेहने विषे धमधमी रह्यो छे, जेम धमण घमतां अग्नि तपे, तेम तपी रह्यो छे, शुद्ध गुण जे सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, शुद्धचारित्र, क्षमा, मार्दव, आर्जवादि आत्मगुण, तेने विषे रम्यो नहीं, तन्मयी न थयो, ते रूप न ग्रह्युं. वली भम्यो चतुर्गतिरूप भवचक्रमाहे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप संसार तेने विषे हुं विषय जे पंचेंद्रियना स्वाद, तेमाहे मातो केतां मग्न थयो, विषयग्रस्त थयो थको, एम संसारचक्र अनु-
भव्युं ते हवे मुजने तार तार हे नाथ ! दीनबंधु ! निःका-
रण दयाल ! मुजने तार भवदुःखथी उगार ॥ २ ॥

आदरयुं आचरण लोक उपचारथी,
शास्त्रअभ्यास पण कांड कीधो ॥

शुद्ध श्रद्धान वली आत्मअवलंबाविनु,

तेहवो कार्य तेणें को न सीधो ॥ ता० ॥ ३ ॥

अर्थः—कदाचित् कोइ केहेरो जे आवश्यककरणादिक आचरण आदर्श अंगीकार कर्युं, परंतु ते सर्व लोकोपचारथी एटले त्रिप तथा गरल तथा अन्योन्यानुष्ठानथी भावना धर्म विना उपचारें अंगीकार कर्युं, तथा कोइ कहेशे उच्चगोत्र यशादिक कर्मना विपाकें ज्ञानावरणीय चयोपशमयोगें शास्त्रनो अभ्यास पण कीधो, शास्त्र भएया, शास्त्रना यथार्थ अर्थ पण जाण्या, तथा अध्यात्मभावनाएं स्पर्शज्ञानानुभव विना श्रुताभ्यास कीधो, परंतु शुद्ध यथार्थस्याढादोपेत भावधर्म ते विना शेष भावधर्मनी रुचियें जे प्रवर्त्तन दान दयादिक करीयें ते सर्व कारण समजवा, परंतु मूल धर्म नहीं, धर्म ते वस्तुनी सत्ता आत्माने विषे स्वरूपपणे परिणामिकताएं रह्यो छे, तेमाहे जे प्रगटथो ते धर्म, एहवुं शुद्ध श्रद्धान, शुद्धप्रतीति, तथा वली आत्मानी स्वरूप प्रगट करवा रूप रुचि तथा आत्माना स्वगुणने आलंबन विना जे आचरण तेणें आचरणें तथा श्रुताभ्यासें तेहवुं कार्य जे कार्यथी आत्मानुं साधन थाय, ते कोइ नीपन्युं नहीं, जे थकी आत्मगुण कोइ प्रगटे ते थपुं नहीं, तेमाटे अहो परमेश्वर ! ताहरीज कृपा पार ऊतारे, निस्तारे, तेमाटे तार तार ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थ ॥

स्वामिदर्शन ममो निमित्त लही निर्मलो,

जो उपादान ए शुचि न थाशे ॥

दोष को वस्तुनो अहवा उद्यम तणो,

स्वामिसोसाही निकट लागे ॥ ता० ॥ ४ ॥

अर्थः—स्वामी श्रीवीतराग जे परकार्यना अकर्ता, परभावादिना अभोक्ता, इच्छा, लीला, चपलता रहित छे एटले जे इच्छा तेतो ऊणतावंतने छे, अने जे परमेश्वर तेतो पूर्णसुखी छे, तेमाटे इच्छारहित, वली लीला पण सुखनी लालचवालाने होय, अने लालचीपणुं नथी, एहवा स्वामीना दर्शन समान निर्मल निमित्त लही केतां पामीने जो ए आत्मानुं उपादान मूलपरिणति ते शुचि केतां पवित्र नहीं थाशे तो जाणीये छइये जे वस्तु जे जीव, तेहनोज दोष केतां अवगुण छे, एटले रखे ए जीवनो दल अयोग्य होय ? ए जीवनी सत्ता केवी रीतनी छे ? अथवा पोताना उद्यमनी खामी छे ? केमके आकरे प्रयत्ने उद्यम करी आत्माने समारवो जोइये, ते ए जीव पोतानी ऊणाशे आत्माने समारतो नथी, तेमाटे इवे शुं करवुं ? जे बीजो उपाय कोइ नथी, तो श्रीअरिहंतनी सेवा तेहीज निश्चें निकट केतां नजीकता लासे केतां पमाडशे एटले ए आत्मा दुष्ट छे, परंतु श्रीजिनराजनी सेवनाथी दुष्टता तजशे ॥ ४ ॥

स्वामिगुण ओलखी स्वामीने जे भजे,

दर्शन शुद्धता तेह पामे ॥

ज्ञान चारित्र तप वीर्य उल्लासथी,

कर्म झीपी वसे मुक्तिधामे ॥ ता० ॥ ५ ॥

अर्थः—स्वामी जे श्रीअरिहंत, तेहना गुणने ओलखीने जे प्राणी श्रीअरिहंतने भजे, केतां सेवे, ते दर्शन केतां समकितरूप गुण पामे, ज्ञान दर्शननी निर्मलता पामे, ज्ञान ते यथार्थभासन, चारित्र ते स्वरूप रमण, तप ते तत्त्वएकाग्रता, वीर्य ते आत्मसामर्थ्य, तेहना उल्लासथी केतां उल्लासवेथी ज्ञानावरणादिकर्मने झीपीने वसे केतां रहे, मुक्ति केतां मोक्ष निरावरण

संपूर्ण सिद्धतारूप धामें केतां थानके वसे ॥ ५ ॥ इति पंचम
गाथार्थः ॥

जगत वत्सल महावीर जिनवर सुणी,
चित्त प्रभु चरणने शरण वास्यो ॥
तारजो बापजी विरुद् निज राखवा.
दासनी सेवना रखे जोशो ॥ ता० ॥ ६ ॥

अर्थः—जगत्रयवत्सल केतां जगत्रयना धर्महितकारी, एहवा
महावीर श्रीचोवीशमा जिनवर, तेहने सुणी केतां सांमल्लिने
चित्त केतां मन ते प्रभुने चरणने शरणे वास्यो केतां वसाव्यो,
ते माटे हे प्रभु परमेश्वर ! माहरो आत्मा तो पलटीने सर्व-
साधन करे, एहवी शक्ति देखाती नथी, माटे भद्रक भक्तिएं
कहुं छुं जे हे तात ! हे दीनबंधो ! मुज दासने तुमें तारजो,
तमारु तारकतानुं विरुद् राखवा माटे दास जे सेवक तेहनी
सेवना भक्ति सामुं जोशो नही, पण तमारे संयोगे तरीयें,
एहीज नियमा आधार छे ॥ ६ ॥

विनति मानजो शक्ति ए आपजो,
भावस्याद्वादता शुद्ध भासे ॥
साधी साधक दशा सिद्धता अनुमधी,
देवचंद्र विमल प्रभुता प्रकाशे ॥ ता० ॥ ७ ॥

अर्थः—माहरी एटली विनति मानजो, ए पण भद्रक-
पणाधी भक्तिनुं वचन छे, जे शक्ति सामर्थ्य एवी आपजो,
ते कहे छे, जे भाव केता वस्तुधर्म ते स्याद्वाद रीतें नित्य
अनित्य, एक, अनेक, अस्ति, नास्ति, भेद, अभेदपणे छद्रव्यना
अनता धर्म शुद्ध, शंकादिक दूषण रहित भासे, केतां जाण-
पणामध्ये आवे, साधि केता नीपजापीने साधकदशा ते भेद-

रत्नत्रयी, सिद्धता, निष्पन्नता, अनुभवे' केतां भोगवे, सर्व देव मांहे चंद्रमा समान सिद्ध भगवान् तेहनी विमल केतां निर्मल जे प्रभुता ते प्रकाशे केतां प्रगट करे, एटले स्याद्वाद ज्ञाने साधकता प्रगटे, साधकतार्थी सिद्धता प्रगटे, एहीज सार-पद्धति छे ॥ ७ ॥

एटले ए चोवीश स्तवन थयां. पोताना जाणपणाप्रमाणे परमेश्वरनी गुण ग्रामे स्तवना करी, तेमांहे जे यथार्थ ते प्रमाण, अने अयथार्थनुं मिच्छामि दुकडं. गीतार्थे गुण लेवो, दोष तजवो, में भद्रकतार्थे ए रचना करी छे, महोटा पुरुषे चमा राखी गुण लेवा ॥ ७ ॥ इति महावीरजिन स्तवनम् ॥ २४ ॥

॥ अथ सामान्यकलशरूप पंचविंशतितम स्तवनम् ॥

॥ काल बोलवानी देशीमां ॥

चोवीशे जिनगुण गाईये,

ध्याईये तत्त्वस्वरूपो जी ॥

परमानंद पद पाईये,

अक्षय ज्ञान अनूरो जी ॥ चो० ॥ १ ॥

अर्थः—श्रीऋषभदेवथी मांडीने महावीर पर्यंत अवसर्पिणी काले शासनना नायक, गुणरत्नाकर, महामादण, महागोप, महावैद्य, एहवा चोवीश तीर्थकर थया, तेहने गाईये केतां गुण-ग्राम करीये, अने पोताना तत्त्वस्वरूपने ध्यायीये, तेहने ध्यावे, तत्त्वनी एकाग्रता पामीये, तेहथी परमानंद अविनाशीपद पामीजे. वली अक्षय, अविनाशी, एहवुं क्षायिक ज्ञान ते अनूप अद्भुत पामीजे ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

चौदहसे वावन भला,
गणधर गुणमंडारो जी ॥
समतामयी साधु साधुणी,
मावय श्राविका सारो जी ॥ चो० ॥ २ ॥

अर्थः—चौबीशे जिनराजना गणधर (१४५२) भला
गण गणि पिटकना धणी, गुणना मंडार तथा समतामयी साधु
साध्वी, अने श्रावक, श्राविका सार केतां प्रधान धर्मना घेरी,
सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रना पात्र, ए प्रकारनो संघ ते सहित
गायवो ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

वर्द्धमान जिनवरतणो,
शासन अति सुखकारो जी ॥
चौविह संघ विराजतो,
दुःपमकाल आधारो जी ॥ चो० ॥ ३ ॥

अर्थः—तथा हमणा श्रीवर्द्धमान महावीरस्वामीजुं
शासन अत्यंत सुखनु कारक छे, ए शासनमाहि जे पेठा, ते
जीव ससारनो पार पामे, तथा दुसम काल पांचमा आरामध्ये
भव्यजीवने आधारभूत चतुर्विध संघ विराजे छे, वर्त्तमानकालें
नवतत्त्व षट्द्रव्यनी ओलछाण धाय, मिथ्यात्व असंयमनो
जेथी त्रास आवे, ते उपगार श्रीवीरप्रभुना शासननो छे, ते
श्रीवीरनांज आगम छे ॥ ३ ॥

जिनसेवनथी ज्ञानता,
लहे हिताहित चोघो जी ॥
अहित त्याग हित आदरे,
संयम तपनी शोघो जी ॥ चो० ॥ ४ ॥

अर्थः—ए जिनसेवनानुं फल श्रीविशेषावश्यकने अनु-
सारें कहीयें छैयें. जे श्रीवृत्तरागनां उपदेश्यां सूत्रने सांभल-
वाथी जाणपणुं बंधे, ते ज्ञानथी हित अहितनो बोध थाय, पछी
अहितनो त्याग करे, तथा हितने आदरे तेहथी संयम तपनी
शोध केतां शुद्धता थाय ॥ ४ ॥

अभिनव कर्म अग्रहणता,

जीर्णकर्म अभावो जी ॥

निः कर्मीने अबाधता,

अवेदन अनाकुल भावो जी ॥ चो० ॥ ५ ॥

अर्थ—संयम तपनी शुद्धता थवाथी नवां कर्मनी अग्र-
हणता थाय. एटले नवां कर्म न बांधे, अने जीर्ण केतां जूनां
कर्मनो अभाव थाय, एटले पूर्वबंध सत्तागत कर्म निर्जरे अने
नवानो बंध नहीं थाय, तथा मूनां सत्तागत क्षय जाय ते
वारें आत्मा निःकर्मी केतां सर्वकर्मरहित थाय, अबाधता केतां
बाधा रहित थाय, जे बाधा ते आत्मप्रदेशें पुद्गलना संगनी छे,
पुद्गलसंग टले, बाधा मटी गइ, तेवारें आत्मा अवेदन अना-
कुलपणुं पाभ्यो ने आकुलता परोपाधिनी हती ते गइ, ते सर्व
प्रभुभक्तिनो उपगार जाणवो, ते माटे चोवीशे जिनने स्तवीएँ
एहीज सार छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

भावरोगना विगमथी

अचल अक्षय निराबाधो जी ॥

पूर्णानंददशा लही,

विलसे सिद्ध समाधो जी ॥ चो० ॥ ६ ॥

अर्थः—पछी भावरोग जें परानुयायीपणुं तेहनो विगम
केतां सर्वथी टलवे करीने अचल केतां चपळता रहित, अक्षय

केतां अविनाशीपणु, निराबाध केतां अव्याबाध पद प्रगटे, ते सर्वनुं मूल कारण जिनराज श्री वीतराग देवनी सेवना भाव रुची, द्रव्य तथा भावर्था प्रगटे, माटे सेवना करवी एहीज हित छे, पूर्णानंद परमानंद अनंत गुणना भोगरूप स्वसिद्धता दशालही केतां पामीने विलसे केतां अनुभवे, सिद्धनिष्पन्न परिनिष्ठितार्थ आत्मिक समाधि, ज्ञानदर्शन समाधि, अव्याबाधानंद-समाधि भोगवे, पामे, ए श्री जिनेश्वरना सेवननुं फल एहीज परम निर्वाणपदनी प्राप्ति छे, तेणें सर्व विकल्प कल्पना निवारिने, सर्वज्ञ सर्वदर्शी शुद्धतर्ची परमेश्वर निर्विकारी देवनु सेवन करो. एहीज परमसुखनुं पुष्ट कारण छे ॥ ६ ॥

श्रीजिनचंद्रनी सेवना,

प्रगटे पुण्य प्रधानो जी ॥

सुमति सागर अति उल्लसे,

साधु रग प्रभु ध्यानो जी ॥ चो० ॥ ७ ॥

अर्थ--श्री जिनचंद्र अरिहंत देव तेहनी सेवना करतां पुण्य प्रधान प्रगटे अने श्रेष्ठ सुमति जे परमानंद साधकमति ते उल्लसे केतां उल्लास पामे, अने प्रभुने ध्याने साधु केतां मलो रंग थाय. बीजो अर्थ श्रीजिनचंद्रस्वरि भट्टारक श्री खरतर गच्छाधीश्वर तेहना शिष्य श्रीपुण्यप्रधानोपाध्याय, तेहना शिष्य श्रीसुमति सागरोपाध्याय, तेहना शिष्य श्रीसाधुरंगवाचक, ए स्तुति कर्चानी परंपरामा बहुश्रुत थया, तेहनां नाम कहा ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

सुविहित खरतर गच्छवरू,

राजसार उवज्झायो जी ॥

ज्ञानधर्म पाठक तणो,

शिष्य सुजस सुजस सुखदायो जी ॥ चो० ॥ ८ ॥

अर्थ—सुविहित कहेतां पंचांगी प्रमाण रत्नत्रयीनी हेतु केतां कारण एहवी जेहनी सभाचारी, एहवी जे खरतरगच्छ ते मध्ये वर केतां प्रधान सर्व शास्त्र निपुण, मरुस्थळ विषे अनेक जिनचैत्यप्रतिष्ठा कारक, आवश्यकोद्वार प्रमुख ग्रंथोना कर्ता एवा महोपाध्याय, श्रीराजसारजी थया, तेहना शिष्य श्रीज्ञानधर्म उपाध्याय, न्यायादिक ग्रंथाध्यापक, जेणे साठ वर्ष पर्यंत जिव्हाना रस तजी शाक जाति तजी, ने संवेगवृत्ति धरी, तेमना शिष्य रूडा यशना धणी, सुखना देवावाला एहवा ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

दीपचंद्र पाठक तणो,

शिष्य स्तवे जिनराजो जी ॥

देवचंद्र पद सेवतां,

पूर्णानंद समाजो जी ॥ चो० ॥ ६ ॥

अर्थ—तथा जेणे श्री शत्रुंजय तीर्थ उपर शिवासोमजी कृत चोमुखनी अनेक बिंब प्रतिष्ठा करी, तथा पांच पांडवना बिंबनी प्रतिष्ठा करी, तथा समोसरण चैत्य तथा श्रीकुंथुनाथ चैत्य प्रतिष्ठा करी; श्रीराजनगरे सहस्रफणापार्श्वप्रभुनी प्रतिष्ठा करी एहवा उपाध्याय श्रीदीपचंद्रजी, तेहना शिष्य पंडित देवचंद्रगणि, तेणे ए चोवीश प्रभुनी स्तवना भक्तिवशे करी, पोतानी भक्ति परिणति महानंद हेतु छे, एहवा गुणना नाथ देवचंद्र पद पूर्णानंद जे सिद्ध अव्याबाध आनंदनो समाज केतां समुदाय ते पामे, ए जिनभक्ति ते मोक्षनो परमोपाय छे ॥ ६ ॥ इति श्री चोवीश जिनस्तुतिनो बालावबोध संपूर्ण ॥
॥ इति श्री देवचंद्रजी महाराजकृत बालावबोध सहित चतुर्विंशतिजिन स्तवनानि संपूर्णानि ॥

अथ श्री देवचंद्रजीकृत विंशति विहर- मानजिन स्तवनानि ॥

॥ तत्र प्रथम श्रीसीमंधरजिन स्तवनं ॥

॥ सिद्धचक्रपद वदो ॥ ए देशी ॥

॥ श्री सीमंधर जिनवर स्वामी, विनतडी अवधारो ॥ शुद्धधर्म प्रगट्यो जे तुमचो, प्रगटो तेह अम्हारो रे स्वामी, विनवीर्ये मनरंगे ॥ १ ॥ जे परिणामिक धर्म तुमारो, तेहवो अमचो धर्म ॥ श्रद्धामामन रमण वियोगे, चलग्यो विभाव अर्धम रे, स्वामी ॥ वि० ॥ २ ॥ वस्तु स्वभाव स्वजाति तेहनो, मूल अभाव न थाय ॥ परविभाव अनुगत परिणतिथी, कर्मे ते अवराय रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ३ ॥ जे विभाव ते पण नैमित्तिक, संतति भाव अनादि ॥ परनिमित्त ते विषय संगादिक, ते संयोगे सादि रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ४ ॥ अशुद्ध निमित्त ए संसरता, अत्ता कत्ता परनो ॥ शुद्ध निमित्त रमे जव चिदूघन, कर्त्ता भोक्ता घरनो रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ५ ॥ जेहना धर्म अनंता प्रगट्या, जे निजपरिणति वरीयो ॥ परमात्म जिनदेव अमोही, ज्ञानादिक गुणदरीयो रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ६ ॥ अवलंबन उपदेशक रीते, श्री सीमंधर देव ॥ मजीये शुद्ध निमित्त अनोपम, तजीये भवभय देव रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ७ ॥ शुद्धदेव अवलंबन करता, परहरीये परभाव ॥ आत्मधर्म रमण अनुभवता, प्रगटे आत्म भाव रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ८ ॥ आत्मगुण निर्मल नीपजता, ध्यान समाधि

सेवो ध्यावो एहने, देवचंद्र सुखकार ॥ प्र० ॥ ११ ॥ वा० -
इति ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थ श्रीसुवाहुजिन स्तवनं ॥

ढाल ॥ माहरो वालो ब्रह्मचारी ॥ ए देशी ॥ श्रीसुवाहु-
जिन अंतरजामी, मुझ मननो विशरामी रे ॥ प्रभु अंतरजामी ॥
आतमधर्मतणो आरामी, परपरिणति निःकामी रे ॥ प्र० ॥
॥ १ ॥ केवल ज्ञान अनंत प्रकाशी, भविजन कमल विकासी
रे ॥ प्र० ॥ चिदानंद धन तत्वविलासी, शुद्धस्वरूप निवासी
रे ॥ प्र० ॥ २ ॥ यद्यपि हुं मोहादिकें छलीयो, पर परिणतिशुं
भलीयो रे ॥ प्र० ॥ हवे तुज सम मुज साहिव मळीयो, तिणें
सवि भवमय टलीयो रे ॥ प्र० ॥ ३ ॥ ध्येय स्वभावे प्रभु
अवधारी, दुर्ध्याता परिणति वारी रे ॥ प्र० ॥ भासन वीर्य ए-
कताकारी, ध्यान सहज संभारी रे ॥ प्र० ॥ ४ ॥ ध्याता ध्येय
समाधि अभेदे, परपरिणति विच्छेदे रे ॥ प्र० ॥ ध्याता साधक
भाव उच्छेदे, ध्येय सिद्धता वेदे रे ॥ प्र० ॥ ५ ॥ द्रव्य क्रिया
साधन विधि याची, जे जिन आगम वाची रे ॥ प्र० ॥
परिणति वृत्ति विभावे राची, तिणे नवि थाये साची रे ॥
प्र० ॥ ६ ॥ पण नवि भय जिनराज पसाये, तत्त्वरसायण
पाये रे ॥ प्र० ॥ प्रभुभगते निज चित्त वसाये, भावरोग मिट
जाये रे ॥ प्र० ॥ ७ ॥ जिनवर वचन अमृत अनुसरीये, तत्त्व
रमण आदरिये रे ॥ प्र० ॥ द्रव्यभाव आस्रव परिहरीये, देव-
चंद्र पद वरीये रे ॥ प्र० ॥ ८ ॥ इति चतुर्थ श्री सुवाहुजिन
स्तवनं ॥ ४ ॥

॥ अथ पंचम श्रीसुजातजिन स्तवनं ॥

॥ देहं देह नखद हठीली ॥ ए देशी ॥ स्वामी सुजात
सुहाया, दीठा आणंद उपाया रे ॥ मनमोहना जिनराया ॥
जिणें पूरण तच्च निपाया, द्रव्यास्तिक नय ठहराया रे ॥ म० ॥
॥ १ ॥ पर्यायास्तिक नयराया, ते मूलस्वभाव समाया रे ॥
॥ म० ॥ ज्ञानादिक स्व परजाया, निजकार्य करण वरताया-
रे ॥ म० ॥ २ ॥ अंशनय मार्ग कहाया, ते विकल्पभाव सुणा-
या रे ॥ म० ॥ नय चार ते द्रव्य थपाया, शब्दादिक भाव
कहाया रे ॥ म० ॥ ३ ॥ दुर्नय ते सुनय चलाया, एकत्व
अभेदें ध्याया रे ॥ म० ॥ ते सविपरमार्थ समाया, तसु वर्तन
भेद गमाया रे ॥ म० ॥ ४ ॥ स्याद्वादीवस्तु कहिजें, तसु धर्म
अनंत लहीजें रे ॥ म० ॥ सामान्य विशेषणुं धाम, ते द्रव्या-
स्तिक परिणाम रे ॥ म० ॥ ५ ॥ जिनरूप अनत गणीजें, ते
दिव्यज्ञान जाणीजें रे ॥ म० ॥ श्रुतज्ञानें नयपथ लीजें, अणु-
भव आस्वादन कीजें रे ॥ म० ॥ ६ ॥ प्रभुशक्ति व्यक्ति एक-
भावे, गुण सर्व रक्षा समभावे रे ॥ म० ॥ माहरे सत्ता प्रभु
सरखी, जिनचन पसार्ये परखी रे ॥ म० ॥ ७ ॥ तुंतो निज
सपत्ति मोगी, हुंतो परपरिणतिनो योगी रे ॥ म० ॥ तिणे
तुम्ह प्रभु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुझ गुणग्रामी रे ॥ म० ॥
॥ ८ ॥ ए संबंधें चित्त समवाय, मुझ सिद्धिनुं कारण थाय रे ॥
॥ म० ॥ जिनराजनी सेवना करवी, ध्येय ध्यान धारणा धरवी-
रे ॥ म० ॥ ९ ॥ तुं पूरण ब्रह्म अरूपी, तुं ज्ञानानंद स्वरूपी
रे ॥ म० ॥ इम तत्त्वालंबन करीयें, तो देवचंद्रपद वरीयें रे ॥
॥ म० ॥ १० ॥ इति सुजातजिनस्तवनं ॥

॥ अथ षष्ठ श्री स्वयंप्रभजिन स्तवनं ॥

॥ मोमनडोहेडाउहोमिसरीठाकुरो महदरो ॥ ए देशी ॥
 स्वामी स्वयंप्रभने हो जाउ भामणे, हरखें वार हजार ॥ वस्तु-
 धर्म पूरण जसु नीपनो, भाव कृपा किरतार ॥ १ ॥ स्वा० ॥
 द्रव्यधर्म ते हो जोग समारवा, विषयादिक परिहार ॥ आतम-
 शक्ति स्वभाव सुधर्मनो, साधनहेतु उदार ॥ २ ॥ स्वा० ॥
 उपशम भावें हो मिश्र क्षायिकपणें, जे निज गुण प्राग्भाव
 ॥ पूर्णावस्थानें नीपजावतो, साधन धर्म स्वभाव ॥ ३ ॥ स्वा० ॥
 समकित गुणथी हो शैलेशी लर्गे, आतम अनुगतभाव ॥ संवर
 निर्जरा हो उपादान हेतुता, साध्यालंबन दाव ॥ ४ ॥ स्वा० ॥
 सकलप्रदेशें हो कर्म अभावता, पूर्णानंद स्वरूप ॥ आतम गु-
 णनी हो जे संपूर्णता, सिद्ध स्वभाव अनुप ॥ स्वा० ॥ ५ ॥ अचल
 अवाधित हो जे निस्संगता, परमातम चिद्रुप ॥ आतमभोगी
 हो रमता निज पदें, सिद्धरमण ए रूप ॥ ६ ॥ स्वा० ॥ एहवो
 धर्म हो प्रभुने नीपन्यो, भांख्यो तेहवो धर्म ॥ जे आदरतां हो
 भवियण शुचि हूवे, त्रिविध विदारी कर्म ॥ ७ ॥ स्वा० ॥
 नामधर्म हो ठवण धर्म तथा, द्रव्यक्षेत्र तिम काल ॥ भावधर्मना
 हो हेतुपणें भला, भाव विना सहू आल ॥ ८ ॥ स्वा० ॥ श्रद्धा
 भासन हो तत्त्व रमणपणें, करतां तन्मय भाव ॥ देवचंद्र जिन-
 वर पद सेवतां, प्रगटे वस्तुस्वभाव ॥ ९ ॥ स्वा० ॥ इति षष्ठ
 श्री स्वयंप्रभजिन स्तवनं संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तम श्रीऋषभाननजिन स्तवनं

॥ वारी हुं गोडी पासने ॥ ए देशी ॥ श्रीऋषभानन
 वंदियें अचल अनंत गुणवास ॥ जिनवर ॥ क्षायिक चारित्र

मोगयी, ज्ञानानंद विलास ॥ जि० ॥ १ ॥ श्री० ॥ जे प्रसन्न
 प्रभु मुख ग्रहे, तेहीज नयन प्रधान ॥ जि० ॥ जिनचरणें
 जे नामीयें, मस्तक तेह प्रमाण ॥ जि० ॥ २ ॥ श्री० ॥
 अरिहापदकज अरचियें, स लहिजें ते हत्थ ॥ जि० ॥ प्रभु-
 गुण चिंतनमें रमे, तेहज मन सुकयत्थ ॥ जि० ॥ ३ ॥ श्री०
 जाणो छो सहु जीवनी, साधक बाधक भांत ॥ जि० ॥ पण
 श्रीमुखयी सांभळी, मन पामे नीरांत ॥ जि० ॥ ४ ॥ श्री० ॥
 तीन काल जाणंग भणी, शुं कहीयें वारंवार ॥ जि० ॥
 पूर्णानंदी प्रभु तणुं, ध्यान ते परम आधार ॥ जि० ॥ ५ ॥
 श्री० ॥ कारणयी कारज हुवे, ए श्रीजिनमुख वाण ॥ जि० ॥
 पुष्टहेतु मुज सिद्धिना, जाणी किध प्रमाण ॥ जि० ॥ ६ ॥
 श्री० ॥ शुद्ध तत्त्व निज संपदा, ज्यां लगे पूर्ण न थाय
 ॥ जि० ॥ त्यां लगे जग गुरु देवना, सेवुं चरण सदाय
 ॥ जि० ॥ ७ ॥ श्री० ॥ कारज पूर्ण कर्या विना, कारण
 केम मुकाय ॥ जि० ॥ कारज रुचि कारणतणा, सेवे शुद्ध
 उपाय ॥ जि० ॥ ८ ॥ श्री० ॥ ज्ञान चरण संपूर्णता, अव्या-
 बाध अमाय ॥ जि० ॥ देवचंद्र पद पामीयें, श्री जिनराज
 पसाय ॥ जि० ॥ ९ ॥ श्री० ॥ इति श्री ऋषमाननजिन स्तवनं ॥

॥ अथ अष्टम श्री अनंतवीर्यजिन स्तवनं ॥

॥ चर्याली चामुंडा रण चडे ॥ ऐ देशी० ॥ अनंत-
 वीरज जिनराजनो, शुचि वीरज परम अनंत रे ॥ निज आत्म
 भावें परिणम्यो, गुणवृत्ति वर्त्तनावंत रे ॥ १ ॥ मन मोह्युं
 अम्हारुं प्रभुगुणें ॥ ए आंकणी ॥ यद्यपि जीव सहु सदा,
 वीर्यगुण सत्तावंत रे ॥ पण कर्म आवृतचल तथा, बाल बाधक

लहंत रे ॥ २ ॥ म० ॥ अल्पवीर्य क्षयोपशम अछे, अविभाग
 वर्गणा रूप रे ॥ षड्गुण एम असंख्यथी, थाये योग स्थान
 स्वरूप रे ॥ ३ ॥ म० ॥ सुहम निगोदी जीवथी, जावसन्नीवर
 पज्जत रे ॥ योगनां ठाण असंख्य छे, तरतम मोहे परायत्त रे
 ॥ ४ ॥ म० ॥ संयमने योगे वीर्य ते, तुम्हे कीधो पंडित दत्त
 रे ॥ साध्य रसी साधक पणें, अभिसंधि रम्यो निज लक्ष रे ॥
 ५ ॥ म० ॥ अभिसंधि अबंधक नीपने, अनभिसंधि अबंधय
 थाय रे ॥ स्थिर एक तत्त्वता वरततो, ते क्षायिक शक्ति समाय
 रे ॥ ६ ॥ म० ॥ चक्रभ्रमणन्याय सयोगता, तजी कीध अयो-
 गी धाम रे ॥ अकरण वीर्य अनंतता, निजसहकार अकाम रे ॥
 ७ ॥ म० ॥ शुद्ध अचल नीजवीर्यनी, निरुपाधिक शक्ति अनंत
 रे ॥ ते प्रगटी में जाणी सही, तिणें तुमहीज देव महंत रे
 ॥ ८ ॥ म० ॥ तुम्ह ज्ञानें चेतना अनुगमी, मुम्ह वीर्य स्वरूप
 समाय रे ॥ पंडित क्षायिकता पामशे, ए पूरणसिद्धि उपाय रे
 ॥ ९ ॥ म० ॥ नायक तारक तूं धरणी, सेवनथी आत्म सिद्धि
 रे ॥ देवचंद्र पद संपजे, वर परमाणंद समृद्धि रे ॥ १० ॥ म० ॥

॥ अथ नवम श्रीसूरप्रभजिन स्तवनम् ॥

॥ देशी कडखानी ॥ सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति
 शूरता, तेणें चिरकालनो मोह जीत्यो ॥ भाव स्याद्वादता शुद्ध
 परकाश करि, नीपनो परम पद जग वदीतो ॥ १ ॥ सू० ॥
 प्रथममिथ्यात्व हंणि शुद्ध दंसण निपुण, प्रगट करि जेणें अ-
 विरति पणासी ॥ शुद्ध चारित्र गत वीर्य एकत्वथी, परिणति
 क्लुषता मवि विणाशी ॥ २ ॥ सू० ॥ वारि परभावनी कवृता
 मूलथी, आत्मपरिणाम कर्तृत्व धारी ॥ श्रेणि आरोहतां वेद

हास्यादिनी, संगर्भा चेतना प्रभु निवारी ॥ ३ ॥ सू० ॥ भेद-
ज्ञाने यथा वस्तुता ओलसी, द्रव्य पर्यायमें थइ अभेदी ॥ भाव
सविकल्पता छेदि केवल सकल, ज्ञान अनंतता स्वामि वेदी ॥
४ ॥ सू० ॥ वीर्यचायिक बलें चपलता योगनी, रोधि चेतन
कर्यो शुचि अलेशी ॥ भाव शैलेशीमें परम अक्रिय थइ, चय
करी चार तनु कर्मशेपी ॥ ५ ॥ सू० ॥ वर्ण रस गघ विनु
फरस संस्थान विनु, योगतनुं संग विनु जिन अरूपी ॥ परम
आनंद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्त्वतन्मय सदा चित्स्वरूपी
॥ ६ ॥ सू० ॥ ताहरी शूरता धीरता तीक्ष्णता, देखी सेवक-
तणो चित्त राच्यो ॥ राग सुप्रशस्तथी गुणी आश्चर्यता, गुणी
अद्भुतपणे जीव माच्यो ॥ ७ ॥ सू० ॥ आत्मगुण रुचि थये
तत्त्व साधन रसी, तत्त्व निष्पत्ति निर्वाण थावे ॥ देवचंद्र शुद्ध
परमात्म सेवनथकी, परम आत्मिक आनंद पावे ॥ ८ ॥ सू० ॥
इति नवम सूरप्रभाजिन स्तवनम् ॥ ९ ॥

॥ अथ दशम श्रीविशालजिन स्तवनं ॥

॥ प्रार्थी वाणी जिनतणी ॥ ए देशी ॥ देव विशाल
जिखंदनी, तमें ध्यावो तत्त्व समाधि रे ॥ चिदानंद रस अनु-
भवी, सहज अकृत निरुपाधि रे ॥ १ ॥ स० ॥ अरिहत पद
वंदीयें गुणवंत रे ॥ गुणवत अनंत महंत स्त्वो, भवतारणो
भगवंत रे ॥ ए आंऊणी ॥ भव उपाधि गद टालवा, प्रभुजी
छो वैद्य अमोघ रे ॥ रत्नत्रायि औपध करी, तमें तार्या भवि-
जन औध रे ॥ २ ॥ त० ॥ अ० ॥ भव समुद्र जल तारवा,
निर्यामक सम जिनराज रे ॥ चरण झहार्जे पामीयें, अचय शि-
वनगरनुं राज रे ॥ ३ ॥ अ० ॥ अ० ॥ भव अटवी अति

गहनथी, पारग प्रभुजी सत्थवाह रे ॥ शुद्ध मार्ग दर्शकपणे,
 योग क्षेमंकर नाह रे ॥ ४ ॥ यो० ॥ अ० ॥ रत्नक जिन छ-
 कायना, वली मोहनिवारक स्वामी रे ॥ श्रमण संघ रत्नक सदा
 तेणें गोप ईश अभिराम रे ॥ ५ ॥ ते० ॥ अ० ॥ भाव
 अहिंसक पूर्णता, माहणता उपदेश रे ॥ धर्म अहिंसक नीपनो,
 माहण जगदीश विशेष रे ॥ ६ ॥ मा० ॥ अ० ॥ पुष्ट कारण
 अरिहंतजी, तारक ज्ञायक मुनिचंद रे ॥ मोचक सर्व विभावथी,
 झीपावे मोह अरिंद रे ॥ ७ ॥ भी० ॥ अ० ॥ कामकुंभ सुर-
 मणि परें, सहेजें उपगारी थाय रे ॥ देवचंद्र सुखकर प्रभु, गुण
 गेह अमोह अमाय रे ॥ ८ ॥ गु० ॥ अ० ॥ इति श्री विशाल-
 जिन स्तवनम् ॥

॥ अथ एकादश श्री वज्रंधरजिन स्तवनं ॥

॥ नदी यमुनाके तीर ॥ ए देशी ॥ विहरमान भगवान,
 सुणो मुज विनति ॥ जगतारक जगनाथ, अछो त्रिभुवन पति ॥
 भासक लोकालोक, तिर्ये जाणो छती ॥ तो पण वितक वात,
 कहुं छुं तुज प्रति ॥ १ ॥ हूं सरूप निज छोडि, रम्यो पर
 पुद्गलें ॥ भील्यो उलट आणी, विषय तृष्णाजलें ॥ आश्रव
 बंधविभाव, करुं रुचि आपणी ॥ भूल्यो मिथ्यावास, दोष छुं
 परभणी ॥ २ ॥ अवगुण टांकण काज, करुं जिनमत क्रिया ॥
 न तजुं अवगुण चाल, अनादिनी जे प्रिया ॥ दष्टिरागनो
 पोष, तेह समकित गणुं ॥ स्याद्वादनी रीत, न देखुं निजपणुं
 ॥ ३ ॥ मन तनु चपल स्वभाव, वचन एकांतता ॥ वस्तु अनंत
 स्वभाव, न भासे जे छता ॥ जे लोकोत्तर देव, नमुं लौकि-
 कथी ॥ दुर्लभ सिद्ध स्वभाव, प्रभो तहकीकथी ॥ ४ ॥ महा-

विदेह मजार के, तारक जिनवरु ॥ श्रीवज्रंधर अरिहंत, अनंत
गुणाकरु ॥ ते निर्यामक श्रेष्ठ, सही मुज तारशे ॥ महावैद्य गु-
णयोग, रोग भव वारशे । ५ ॥ प्रभुमुख भव्य स्वभाव, सुखुं
जो माहरो, तो पामे प्रमोद, एह चेतन खरो ॥ थाये शिवपद
आश राशि सुखवृदनी ॥ सहज स्वतंत्र स्वरूप, खाण आणंद-
नी ॥ ६ ॥ बलग्या जे प्रभुनाम, धाम ते गुण तणा ॥ धारो
चेतन राम, एह थिरगामना ॥ देवचंद्र जिनचंद्र, हृदय
स्थिर थापजो ॥ जिन आणायुक्त भक्ति, शक्ति मुज आपजो
॥ ७ ॥ इति एकादश श्रीवज्रंधरजिन स्तवनं ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादश श्री चंद्राननजिन स्तवनम् ॥

॥ वीरा चंदला ॥ ए देशी ॥ चंद्राननजिन, सांभलीएं
अरदास रे ॥ मुझ सेवक भणी, छे प्रभुनो विश्वामो रे ॥ १ ॥
चं० ॥ भरतक्षेत्र मानवपणो रे, लाघो दुःपम काल ॥ जिनपुर-
वधर विरहथी रे, दुलहो साधन चालो रे ॥ २ ॥ चं० ॥ द्रव्य
क्रिया रुचि जीवडा रे, भाय धर्मरुचिहीन ॥ उपदेशक पण
तेहवा रे, शुं करे जीव नवीन रे ॥ ३ ॥ चं० ॥ तत्त्वागम जा-
खंग तजी रे, बहुजन संमत जेह ॥ मूढ हठी जन आदर्यो रे,
सुगुरु कहावे तेह रे ॥ ४ ॥ चं० ॥ आणा साध्य विना क्रिया
रे, लोकें मान्यो रे धर्म ॥ दंसण नाण चरित्तनो रे, मूल न
जाण्यो ममे रे ॥ ५ ॥ चं० ॥ गच्छ कदाग्रह साचवे रे, माने
धर्म प्रसिद्ध ॥ आतम गुण अकपायता रे, धर्म न जाणो शुद्ध
रे ॥ ६ ॥ चं० ॥ तत्परसिक जन थोडला रे, बहुलो जन सं-
वाद ॥ जाणो छो जिनराजजी रे, सधलो एह विवाद रे, ॥
७ ॥ चं० ॥ नाथ चरण वंदन तणो रे, मनमां घणो उमंग ॥

पुण्य विना किम पामीर्ये रे, प्रभुसेवननो रंग रे ॥ ८ ॥ चं० ॥
जगतारक प्रभु वांदीए रे, महाविदेह मझार ॥ वस्तुधर्म स्या-
द्वादता रे, सुणि करिये निर्धार रे ॥ ९ ॥ चं० ॥ तुभ करुणा
सहु उपरे रे, सरखी छे महाराय ॥ पण अविराधक जीवने रे,
कारण सफलुं थाय रे ॥ १० ॥ चं० ॥ एहवा पण भवि जी-
वने रे, देव भक्ति आधार ॥ प्रभुसमरणथी पामीर्ये रे, देवचंद्र
पद सार रे ॥ ११ ॥ चं० ॥ इति ॥

॥ अथ त्रयोदश श्री चंद्रबाहुजिन स्तवनम् ॥

श्री अरनाथ उपासना ॥ ए देशी ॥ चंद्रबाहुजिन
सेवना, भवनाशिनी तेह ॥ परपरिणतिना पासने, निष्कासन
रेह ॥ १ ॥ चं० ॥ पुद्गल भाव आशंसना, उद्धासन केतु ॥
सम्यग्दर्शन वासना, भासनचरण समेत ॥ २ ॥ चं० ॥ त्रिक-
रण योग प्रशंसना, गुणस्तवना रंग ॥ वंदन पूजन भावना,
निजपावना अंग ॥ ३ ॥ चं० ॥ परमात्म पद कामना, काम-
नाशन एह ॥ सत्ताधर्म प्रकाशना, करवा गुणगेह ॥ ४ ॥
चं० ॥ परमेश्वर आलंबना, राच्या जेह जीव ॥ निर्मळ
साध्यनी साधना, साधे तेह सदीव ॥ ५ ॥ चं० ॥ परमानंद
उपायवा, प्रभु पुष्ट उपाय ॥ तुझ सम तारक सेवतां, परसेव
न थाय ॥ ६ ॥ चं० ॥ शुद्धात्म संपत्ति तणा, तुम्हे कारण
सार ॥ देवचंद्र अरिहंतनी, सेवा सुखकार ॥ ७ ॥ चं० ॥
इति चंद्रबाहुजिन स्तवनं ॥

॥ अथ चतुर्दश श्रीभुजंगस्वामी स्तवनम् ॥

॥ देशी लूअरनी ॥ पुष्कलावह विजयें हो, के विचरे तीर्थपति ॥ प्रभुचरणने सेवे हो, के सुर नर असुरपति । जसु गुण प्रगट्या हो, के सर्व प्रदेशमां ॥ आतम गुणनी हो, के विकसी अनंत रमा ॥ १ ॥ सामान्य स्वभावनी हो, के परिणति असहाह ॥ धर्मविशेषनी हो, के गुणने अनुजाह ॥ गुण सकल प्रदेशें हो, के निजनिज कार्य करे ॥ समुदाय प्रवर्त्ते हो, के कर्त्ता भाव घरे ॥ २ ॥ जड द्रव्य चतुष्के हो, के करताभाव नहीं ॥ सर्व प्रदेशें हो, के वृत्ति विभिन्न कठी ॥ चेतन द्रव्यने हो, के सकल प्रदेश मिले ॥ गुणवर्त्तना वर्ते हो, के वस्तुने सहज बलें ॥ ३ ॥ शंकर सहकारी हो, के सहजें गुण वरते ॥ द्रव्यादिक परिणति हो, के भावें अनुमरते ॥ दानादिक लब्धि हो, के न हुवे सहाय विना ॥ सहकार अकंपे हो, के गुणनी वृत्ति घना ॥ ४ ॥ पर्याय अनंता हो, के जे एक कार्यपर्यें ॥ वरते तेहने हो, के जिनवर गुण पभणे ॥ ज्ञानादिक गुणनी हो, के वर्तना जीव प्रते ॥ धर्मादिक द्रव्यने हो, के सहकारें करते ॥ ५ ॥ ग्राहक व्यापकता हो, के प्रभुतम धर्म रमी ॥ आतम अनुभवथी हो, के परिणति अन्य वमी ॥ तुल्य शक्ति अनंती हो, के गाताने ध्यातां ॥ मुल्ल शक्ति विकासन हो, के थाये गुण रमतां ॥ ६ ॥ इम निज गुणभोगी हो, के स्वामि भुजंग मृदा ॥ जे नित्य बंदे हो, के ते नर धन्य सदा ॥ देवचंद्र प्रभुनी हो, के पुण्यें भक्ति सधे ॥ आतम अनुभवनी हो, के नित्य नित्यशक्ति वधे ॥ ७ ॥ इति ॥ १४ ॥

॥ अथ पंचदश श्री ईश्वरदेवजिन स्तवनम् ॥

॥ काल अनंतानंत ॥ ए देशी ॥ सेवो ईश्वरदेव, जिणें ईश्वरता हो निज अद्भुत वरी ॥ तिरोभावनी शक्ति, आविर्भावें हो सहू प्रगट करी ॥ १ ॥ अस्तित्वादिक धर्म, निर्मल भावें हो सहूने सर्वदा ॥ नित्यत्वादि स्वभाव, ते परिणामी हो जडचेतन सदा ॥ २ ॥ कर्ता भोक्ता भाव, कारक ग्राहक हो ज्ञान चारित्रता ॥ गुणपर्याय अनंत, पाम्या तुमचा हो पूर्ण पवित्रता ॥ ३ ॥ पूर्णानंद स्वरूप, भोगी अयोगी हो उपयोगी सदा ॥ शक्ति सकल स्वाधीन, वरते प्रभुनी हो जे न चले कदा ॥ ४ ॥ दास विभाव अनंत, नासे प्रभुजी हो तुम्ह अवलंबने ॥ ज्ञानानंद महंत, तुझ सेवाथी हो सेवकने बने ॥ ५ ॥ धन्य धन्य ते जीव प्रभुपद बंदी हो जे देशन सुणे ॥ ज्ञानक्रिया करे शुद्ध, अनुभव योगें हो निज साधकपणे ॥ ६ ॥ वारंवार जिनराज, तुम्ह पद सेवा हो होजो निर्मली ॥ तुम्ह शासन अनुजाइ, वासन भासन हो तत्त्वरमण वली ॥ ७ ॥ शुद्धात्मनिज धर्म, रुचि अनुभवथी हो साधन सत्यता ॥ देवचंद्र जिनचंद्र भक्ति पसार्ये हो होशे व्यक्तता ॥ ८ ॥ इति पंचदश श्री ईश्वरनामाजिन स्तवनं ॥ १५ ॥

॥ अथ षोडश श्री नमिप्रभजिन स्तवनम् ॥

॥ अरज अरज सुणोने रूडा राजीया होजी ॥ एदेशी ॥ नमिप्रभ नमिप्रभ प्रभुजी वीनवुं हो जी, पामीवर प्रस्ताव ॥ जाणोछो जाणोछो विण विनवे हो जी, तो पण दासस्वभाव ॥ १ ॥ न० ॥ हुं करता हुं करता पर भावनो हो जी, भोक्ता

गलरूप ॥ ग्राहक ग्राहक व्यापक एहनो हो जी, राच्यो जड भव भूप ॥ २ ॥ न० ॥ आतम आतम धर्म विसारीयो हो जी, सेव्यो मिथ्यामाग ॥ आश्रव आश्रव बंधपणुं कर्तुं हो जी, संवरनिर्जर त्याग ॥ ३ ॥ न० ॥ जडचल जडचल कर्म जे देहने हो जी, जाण्युं आतम तत्व ॥ बहिरातम बहिरातमतामें ग्रही हो जी, चतुरंगे एकत्व ॥ ४ ॥ न० ॥ केवल केवल ज्ञानमहोदधि हो जी, केवल दसण बुद्ध ॥ वीरज वीरज अनंत स्वभावनो हो जी, चारित्र चायिक शुद्ध ॥ ५ ॥ न० ॥ विश्रामि विश्रामि निजभावना हो जी, स्याद्वादी अप्रमाद ॥ परमातम परमातम प्रभु देखता हो जी, भागि आंति अनाद ॥ ६ ॥ न० ॥ जिनसम जिनसम सत्ता ओलखी हो जी, तसु प्राग्भावनी इह ॥ अंतर अंतर आतमता लही हो जी, परपरिणति निरीह ॥ ७ ॥ न० ॥ प्रतिच्छंदे प्रतिच्छंदे जिनराजनें हो जी, करतां याधक भाव ॥ देवचंद्र देवचंद्र पद अनुभव हो जी, शुद्धातम प्रागभाज ॥ ८ ॥ न० ॥ इति षोडश नमिप्रभजिन स्तवनं ॥

॥ अथ सप्तदश श्री वीरसेनजिन स्तवनम् ॥

॥ लाळलदे मात मन्हार ॥ ए देशी ॥ वीरसेन जगदीश, ताहरी परम जगीश, आज हो दीमे रे वीरजता त्रिभूवनधी घणी जी ॥ १ ॥ अणहारी अशरीर, अक्षय अजय अतिधीर, आज हो अविनाशी अलेशी ध्रुव प्रभुता बणी जी ॥ २ ॥ अर्तीन्द्रिय गत कोह, विगतमाय मय लोह, आज हो सोहे रे मोहे जगजनता भणी जी ॥ ३ ॥ अमर असंखंड अरूप, पूर्णानंद स्वरूप, आज हो चिहुपें दीपे धिर समता घणी जी ॥ ४ ॥ वेदरहित अकपाय, शुद्ध सिद्ध असहाय; आज हो व्यायकें

नायकने ध्येयपदें ग्रह्यो जी ॥ ५ ॥ दानलाभ निज भोग, शुद्ध
स्वगुण उपभोग, आज हो अजोगी करता भोक्ता प्रभु लह्यो
जी ॥ ६ ॥ दरिसण ज्ञान चारित्र, सकल प्रदेश पवित्र, आज
हो निर्मल निःसंगी अरिहा वंदीयें जी ॥ ७ ॥ देवचंद्र जिन-
चंद्र, पूर्णानंदनो वृंद, आज हो जिनवरसेवाथी, चिर आनं-
दीयें जी ॥ ८ ॥ इति ॥

॥ अथ अष्टादश श्री महाभद्रजिन स्तवनम् ॥

॥ तट यमुनानुं रे, अति रलीयामणुं रे ॥ ए देशी ॥
महाभद्र जिनराज, राजविराजे हो आज तुमारडो जी ॥
क्षायिकवीर्य अनंत, धर्म अभंगें हो तुं साहिव वडो जी ॥ १ ॥
हुं बलिहारी रे श्री जिनवरतणी रे ॥ कर्त्ता भोक्ता भाव,
कारक कारण हो तुं स्वामी छतो जी ॥ ज्ञानानंद प्रधान
सर्व वस्तुनो हो धर्म प्रकाशतो जी ॥ २ ॥ हुं० ॥ सम्यग्-
दर्शन मित्त, स्थिरनिर्घारे रे अविसंवादता जी ॥ अव्याबाधि
समाधि, कोश अनश्वरें रे. निज आनंदता जी ॥ ३ ॥ हुं० ॥ देश
असंख्य प्रदेश, निजनिज रीतें रे गुण संपत्ति भर्या जी ॥ चारित्र
दुर्ग अभंग, आतम शक्तें हो परजय संचर्या जी ॥ ४ ॥ हुं० ॥
धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुता हो तुम्ह बल आकरो
जी ॥ तत्त्व सकल प्राग्भाव, सादि अनंती रे रीतें प्रभु धर्यो
जी ॥ ५ ॥ हुं० ॥ द्रव्य भाव अरिलेश, सकल निवारी रे
साहिव अवतर्यो जी ॥ सहज स्वभाव विलास, भोगी उपयोगी
रे ज्ञान गुणें भर्यो जी ॥ ६ ॥ हुं० ॥ आचारिज उवकाय,
साधक मुनिवर हो देश विरत धरु जी ॥ आतम सिद्ध अनंत,
कारणरूपैरे योगक्षेमकरु जी ॥ ७ ॥ हुं० ॥ सम्यग्दृष्टि जीव

आणारागी हो सहु जिनराजना जी ॥ आतम साधन काज,
सेवे पदकज हो श्री महाराजनां जी ॥ ८ ॥ हुं० ॥ देवचंद्र
जिनचंद्र, भगते राचो हो भवि आतम रुचि जी ॥ अव्यय
अचय शुद्ध, संपत्ति प्रगटे हो सत्तागत शुचि जी ॥ ९ ॥ हुं० ॥



॥ अथ एकोनविंश श्री देवजसाजिन स्तवनम् ॥

॥ महाविदेह चेत्र सोहामणुं ॥ ए देशी ॥ देवसजा दरि-
सण करो, विघटे मोह विभाव लाल रे ॥ प्रगटे शुद्ध स्वभा-
वता, आनंद लहरी दाव लाल रे ॥ १ ॥ दे० ॥ स्वामी वसो
पुष्कर वरें, जंबूभरते दास लाल रे ॥ चेत्र विभेद घणो पढ्यो,
किम पोहोंचे उच्चास लाल रे ॥ २ ॥ दे० ॥ होवत जो तनु
पांखडी, आवत नाथ हजूर लाल रे ॥ जो होती चित्त आ-
खडी, देखत नित्य प्रभु नूर लाल रे ॥ ३ ॥ दे० ॥ शासन-
भक्त जे सुरवरा, विनवुं शीप नमाय लाल रे ॥ कृपा करो
मुझ उपरें, तो जिनवंदन थाय लाल रे ॥ ४ ॥ दे० ॥ पूछुं
पूर्व विराधना, शी कीधी इणें जीव लाल रे ॥ अविरति मोह
टले नहीं, दीठे आगमदीव लाल रे ॥ ५ ॥ दे० ॥ आतम
शुद्ध स्वभावने, बोधन शोधनकाज लाल रे ॥ रत्नत्रयि प्राप्ति
तणो, हेतु कहो महाराज लाल रे ॥ ६ ॥ दे० ॥ तुझ स-
रिखो साहिब मिन्यो, भाजे भवभ्रम टेव लाल रे ॥ पुष्टालंघन
प्रभु लहि, कोण करे परसेव लाल रे ॥ ७ ॥ दे० ॥ दीन-
दयाल कृपालुओ, नाथ भविक आधार लाल रे ॥ देवचंद्र जिन
सेवना, परमामृत मुखकार लाल रे ॥ ८ ॥ दे० ॥ इति श्री
देवजसाजिन स्तवनं ॥

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवनम् ॥

॥ अजितवीर्यजिन विचरता रे ॥ मनमोहनां रे लाल ॥
 पुष्कर अर्द्धविदेह रे ॥ भविमोहनां रे लाल ॥ जंगम सुरतरु
 सारिखो रे ॥ मन० ॥ सेवे धन्य धन्य तेह रे ॥ भवि० ॥ १ ॥
 जिनगुण अमृत पानथी रे ॥ म० ॥ अमृतक्रिया सुपसाय रे ॥
 ॥ भ० ॥ अमृतक्रिया अनुष्ठानथी रे ॥ म० ॥ आतम अमृत
 थाय रे ॥ भ० ॥ २ ॥ प्रीति भक्ति अनुष्ठानथी ॥ म० ॥
 वचनअसंगी सेव रे ॥ भ० ॥ कर्तातन्मयता लहे रे ॥ म० ॥
 प्रभुभक्ति नित्यमेव रे ॥ भ० ॥ ३ ॥ परमेश्वर अवलंबने रे
 ॥ म० ॥ ध्याता ध्येय अभेद रे ॥ भ० ॥ ध्येय समाप्ति हुवे
 रे ॥ म० ॥ साध्यसिद्धि अविच्छेद रे ॥ भ० ॥ ४ ॥ जिन-
 गुण राग परागथी रे ॥ म० ॥ वासित मुझ परिणाम रे ॥
 ॥ भ० ॥ तजशे दुष्टविभावता रे ॥ म० ॥ सरशे आतम काम
 रे ॥ भ० ॥ ५ ॥ जिनभक्तिरत चित्तने रे ॥ म० ॥ वेधकरस
 गुण प्रेम रे ॥ भ० ॥ सेवक जिनपद पामशो रे ॥ म० ॥ रस-
 वेधित अय जेम रे ॥ भ० ॥ ६ ॥ नाथ भक्तिरस भावथी रे ॥
 ॥ म० ॥ तृण जाणुं परदेव रे ॥ भ० ॥ चिन्तामणि सुरतरु
 थकी रे ॥ म० ॥ अधिक्ती अरिहंत सेव रे ॥ भ० ॥ ७ ॥
 परमातम गुण स्मृतिथकी रे ॥ म० ॥ फरशयो आतमराम रे ॥
 ॥ भ० ॥ नियमाकंचनता लहे रे ॥ म० ॥ लोह ज्युं पारस
 पाम रे ॥ भ० ॥ ८ ॥ निर्मल तत्वरुचि थइ रे ॥ म० ॥ करजो
 जिनपति भक्ति रे ॥ भ० ॥ देवचंद्र पद पामशो रे ॥ म० ॥
 परम महोदय युक्ति रे ॥ भ० ॥ ९ ॥ इति ॥ २० ॥

॥ कलश ॥ राग धन्याश्री ॥

॥ वंदो वंदो रे जिनवर विचरंता वंदो ॥ कीर्त्तन स्तवन
 नमन अनुसरता, पूर्वपाप निकंदो रे ॥ जिनवर विचरंता वंदो
 ॥ १ ॥ जंबू द्वीपे चार जिनेश्वर, घातकी आठ आणंदो ॥
 पुष्कर अर्धे आठ महामुनि, सेवे चोसठ इंदो रे ॥ जि० ॥ २ ॥
 केवली गणधर साधु साधवी, श्रावक श्राविका वृंदो ॥ जिन-
 मुख धर्मअमृत अनुभवतां, पामे मन आणंदो रे ॥ जि० ॥ ३ ॥
 सिद्धाचल चौमास रहीने, गायो जिनगुण छंदो ॥ जिनपति
 मक्ति मुगतिनो मारग, अनुपम शिवसुखकंदो रे ॥ जि० ॥
 ॥ ४ ॥ खरतर गच्छ जिनचंद सरिवर, पुण्यप्रधान
 मुण्डो ॥ सुमति सागर साधु रंग सुवाचक, पीधो श्रुतम
 करंदो रे ॥ जि० ॥ ५ ॥ राजसार पाठक उपगारी, ज्ञानधर्म
 दिणंदो ॥ दीपचद सद्गुरु गुणवंता, पाठक धीर गयंदो रे ॥
 ॥ जि० ॥ ६ ॥ देवचंद्र गणि आतम हेतें, गाया वीश जिणंदो ॥
 ऋद्धि वृद्धि सुखसंपत्ति प्रगटे, सुजस महोदय वृंदो रे ॥ जि० ॥
 इति पढितश्री देवचंद्रजीकृत विंशति विहरमान जिनस्तवनानि
 संपूर्यानि ॥

जे कारण कारज भावे,
वरते पर्याय प्रभावे ॥
प्रति समये व्यय उत्पादि,
ज्ञेयादिक अनुगत सादि ॥ सु० ४ ॥

अविभागी पर्यय जेह,
समवार्थी कार्यना गेह ॥
जे नित्य त्रिकाली अनंत,
तसु ज्ञायक ज्ञान महंत ॥ सु० ५ ॥

जे नित्य अनित्य स्वभाव,
ते देखे दर्शन भाव ॥
सामान्य विशेषनो पिंड,
द्रव्यार्थिक वस्तु प्रचंड ॥ सु० ६ ॥

ईम केवल दर्शन नाण,
सामान्य विशेषनो भाण ॥
द्विगुण आतम श्रद्धाए,
चरणादिक तसु व्यवसाए ॥ सु० ७ ॥

द्रव्य जेह विशेष परिणामी,
ते कहीए पज्जव नामी ॥
छती सामर्थ्य दुभेदे,
पर्याय विशेष निवेदे ॥ सु० ८ ॥

तसु रमणे भोगनो वृंद,
अप्रयासी पूर्णानंद ॥
प्रगटी जस शक्ति अनंती,
निज कारज वृत्ति स्वतंती ॥ सु० ॥ ९ ॥

गुण द्रव्य सामान्य स्वभावी,
तीरथपती त्यक्त विभावी ।
प्रभु आणा भक्ते लीन,
तिथे देवचंद्र पद कीन ॥ सु० ॥ १० ॥

॥ अथ चतुर्थ श्री महाजस जिन स्तवन ॥

आतम प्रदेश रंगथल अनुपम,
सम्यकदर्शन रंगरे, निज सुखके सधैया ॥
तुं तो निज गुण खेल वसंतरे ॥ निज० ॥
पर परिणति चिंता तजी निजमें,
ज्ञान सखाके सगरे ॥ नि० ॥ १ ॥

वास वरास सुरुचि केशर घन,
छांटो परम प्रमोदरे ॥ नि० ॥
आतम रमण गुलालकी लाली,
साधक शक्ति विनोदरे ॥ निज० ॥ २ ॥

ध्यान सुधारस पान मगनता,
भोजन सहज स्वभोगरे ॥ निज० ॥
रिझ एकत्वता तानमें वाजे,
वाजिंत्र सनमुख योगरे ॥ निज० ॥ ३ ॥

शुक्रध्यान होरीकी ज्वाला,
जाले कर्म कठोररे ॥ निज० ॥
शेष प्रकृति दल खिरण निर्झरा,
भस खेल अति जोररे ॥ निज० ॥ ४ ॥

जे कारण कारज भावे,
 वरते पर्याय प्रभावे ॥
 प्रति समये व्यय उत्पादि,
 ज्ञेयादिक अनुगत सादि ॥ सु० ४ ॥

अविभागी पर्यय जेह,
 समवारी कार्यना गेह ॥
 जे नित्य त्रिकाली अनंत,
 तसु ज्ञायक ज्ञान महंत ॥ सु० ५ ॥

जे नित्य अनित्य स्वभाव,
 ते देखे दर्शन भाव ॥
 सामान्य विशेषनो पिंड,
 द्रव्यार्थिक वस्तु प्रचंड ॥ सु० ६ ॥

ईम केवल दरशन नाण,
 सामान्य विशेषनो भाण ॥
 द्विगुण आतम श्रद्धाए,
 चरणादिक तसु व्यवसाए ॥ सु० ७ ॥

द्रव्य जेह विशेष परिणामी,
 ते कहीए पञ्जव नामी ॥
 छती सामर्थ्य दुभेदे,
 पर्याय विशेष निवेदे ॥ सु० ८ ॥

तसु रमणे भोगनो वृंद,
 अप्रयासी पूर्णानंद ॥
 प्रगटी जस शक्ति अनंती,
 निज कारज वृत्ति स्वतंती ॥ सु० ॥ ९ ॥

गुण द्रव्य सामान्य स्वभावी,
तीरथपती त्यक्त विभावी ।
प्रभु आणा भक्ते लीन,
तिणे देवचद्र पद कीन ॥ सु० ॥ १० ॥

॥ अथ चतुर्थ श्री महाजस जिन स्तवन ॥

आतम प्रदेश रंगथल अनुपम,
सम्यकदर्शन रंगरे, निज सुखके सधैया ॥
तुं तो निज गुण खेल वसंतरे ॥ निज० ॥
पर परिणति चिंता तजी निजमें,
ज्ञान सखाके संगरे ॥ नि० ॥ १ ॥

वास वरास सुरुचि केशर घन,
छांटो परम प्रमोदरे ॥ नि० ॥
आतम रमण गुलालकी लाली,
साधक शक्ति विनोदरे ॥ निज० ॥ २ ॥

ध्यान सुधारस पान भगनता,
भोजन सहज स्वभोगरे ॥ निज० ॥
रिह एकत्वता तानमें वाजे,
वार्जित्र सनमुख योगरे ॥ निज० ॥ ३ ॥

शुक्रध्यान होरीकी ज्वाला,
जाले कर्म कठोररे ॥ निज० ॥
शेष प्रकृति दल खिरण निर्झरा,
भस खेल अति जोररे ॥ निज० ॥ ४ ॥

देव महाजस गुण अवलंबन,
निर्भय परिणति व्यक्तिरे ॥ निज० ॥
ज्ञाने ध्याने अति बहुमाने,
साधे मुनि निज शक्तिरे ॥ निज० ॥ ५ ॥

सकल अजोग अलेश असंगत,
नाहि होवे सिद्धरे ॥ निज० ॥
देवचंद्र आणामें खेले,
उत्तम युंहीं प्रसिद्ध रे ॥ निज० ॥ ६ ॥

॥ अथ पंचम श्री विमलजिन स्तवन ॥

॥ राग—कडखो ॥

धन्य ! तुं धन्य तुं ! धन्य जिनराज तुं,
धन्य ! तुज शक्ति व्यक्ति सनूरी ॥
कार्य कारण दशा सहज उपगारता,
शुद्ध कर्तृत्व परिणाम पूरी ॥ धन्य० ॥ १ ॥

आत्म प्रभाव प्रतिभास कारज दशा,
ज्ञान अविभाग परजय प्रवृत्ते ॥
एम गुण सर्व निज कार्य साधे प्रगट,
ज्ञेय दृश्यादि कारण निमित्ते ॥ धन्य० ॥ २ ॥

दास बहु मान भासन रमण एकता,
प्रभु गुणालंबथी शुद्ध थाये ॥
बंधना हेतु रागादि तुज गुण रसी,
तेह साधक अवस्था उपाये ॥ धन्य तुं० ॥ ३ ॥

कर्म जंजाल युंजनकरण योग जे,
स्वाभी भक्ति रम्या धिर समाधि ॥
दान तप शील व्रत नाथ आखा विना,
थईय चाधक करे भव उपाधि ॥ घन्य० ॥ ४ ॥

सकल परदेश समकाल सवि कार्यता,
करण सहकार कर्तृत्व भागो ॥
द्रव्य परदेश पर्याय आगमपणे,
अचल असहाय अक्रिय दावो ॥ घन्य० ॥ ५ ॥

उत्पत्ति नाश ध्रुव सर्वदा सर्वनी,
पट्गुणी हानिवृद्धि अन्यूनो ॥
अस्ति नास्तित्व सत्ता अनादि थको,
परिणमन भावथी नही अजूनो ॥ घन्य० ॥ ६ ॥

ईणी परे विमल जिनराजनी विमलता,
ध्यान मन मदिरे जेह व्यावे ॥
ध्यान पृथक्त्व सविकल्पता रंगथी,
व्यान एकत्व अविकल्प आवे ॥ ७ ॥

वीतरागी असंगी अनंगी प्रभु,
नाण अप्रयास अविनाश धारी ॥
देवचंद्र शुद्ध सत्ता रसी सेवता,
संपदा आत्म शोभा वधारी ॥ घन्य० ॥ ८ ॥



॥ अथ षष्ठम श्री सर्वानुभूति जिन स्तवनं ॥

॥ जगजीवन जगवाल हो ॥ ए. देशी ॥

जग तारक प्रभु वीनबुं,
विनतडी अवधार रे ॥
तुज दरशन विण हुं भम्यो,
काल अनंत अपार रे ॥ जग० ॥ १ ॥

सुहम निगोद भवे वस्यो,
पुद्गल परिअट्ट अनंत रे ॥
अव्यवहारपणे भम्यो,
लुल्लक भव अत्यंतरे ॥ जग० ॥ २ ॥

व्यवहारे पण तिरिय गते,
ईग वण खंड असन्नी रे ॥
असंख्य परावर्त्तन थयां,
भमियो जीव अधन्नेरे ॥ जग० ॥ ३ ॥

सूक्ष्म थावर चारमें,
कालह चक्र असंख्यरे ॥
जन्म मरण बहुलां कर्यां,
पुद्गल भोगनी कंखरे ॥ जग० ॥ ४ ॥

ओधे बादर भोंवेंम,
बादर तरु पण ईमरे ॥
पुद्गल अढी लागट वस्यो,
नाम निमोदे प्रेमरे ॥ जग० ॥ ५ ॥

स्थावर धूल परितमै,
 सीत्तर कोडाकोडीरे ॥
 आयर भम्यो प्रभु नवि मिल्था,
 मिथ्या अविरती जोडिरे ॥ जग० ॥ ६ ॥
 विगलपणे लागट वस्यो,
 सखिज वास हजाररे ॥
 बादर पञ्ज वणस्सई,
 भू जल वायु मझाररे ॥ जग० ॥ ७ ॥
 अनल विगल पञ्जतमै,
 तस भव आयु प्रमाण रे ॥
 शुद्ध तत्त्व प्राप्ति विना,
 मटक्यो नव नव ठाणरे ॥ जग० ॥ ८ ॥
 साधिक सागर महम दो,
 भोगवीधो तम भावेरे ॥
 एक सहस साधिक दधी,
 पंचेंद्रि पद दावेरे ॥ जग० ॥ ९ ॥
 पर परिणति रागीपणे,
 पर रस रंगे रक्करे ॥
 पर ग्राहक रक्षकपणे,
 पर भोगे आशक्तरे ॥ जग० ॥ १० ॥
 शुद्ध स्वजाति तत्त्वने,
 बहुमाने तल्लीनरे ।
 ते विजाती रसता तजी,
 स्वस्वरूप रस पीनरे ॥ जग० ॥ ११ ॥

॥ अथ अष्टम श्रीदत्तप्रभु स्तवन ॥

॥ राग धमाल ॥

जिन सेवनथें पाईये हो,
शुद्धातम मकरंद ॥ ए आंकणी ॥

तस्त्र प्रतीत वसंत ऋतु प्रगटी,
गई सिसिर कुप्रतीत ॥ ललना ॥
दुरमती रजनी लघु भई हो,
सदबोध दिवस वदीत ॥ ललना ॥ जिन० ॥ १ ॥

साध्य रुचि सुसखा मिलीहो,
निज गुण चरचा खेल ॥ ललना०
बाधक भावथी नंदना हो,
बुध मुख गारिको मेल ॥ ललना० ॥ जि० ॥ २ ॥

प्रभु गुण गान सुछंदशुं हो,
वाजित्र अतिशय तान ॥ ललना०
शुद्ध तस्त्र बहुमानता हो,
खेलत प्रभु गुण ध्यान ॥ ललना० ॥ जि० ॥ ३ ॥

गुण बहुमान गुलालसो हो,
लाल भए भवि जीव ॥ ललना०
राग प्रशस्तकी धूममें हो,
विभाव विडारे अतीव ॥ ललना० ॥ जिन० ॥ ४ ॥

जिन गुण खेलमें खेलते हो,
प्रगट्यो जिन गुण खेल ॥ ललना० ॥

आतम घर आतम रमे हो,
 समता सुमति के मेल* ॥ ललना० ॥ जि० ॥ ५ ॥
 तच्च प्रतित प्याले भरे हो,
 जिन वाणी रसपान ॥ ललना० ॥
 निर्मल भक्ति लाली जगी हो,
 रिझे एकत्वता तान ॥ ललना० ॥ जिन० ॥ ६ ॥
 भव वैराग अत्रिशुं हो,
 चरण रमण सुमहत ॥ ललना० ॥
 समिति गुपति वनिता रमे हो,
 खेले हो शुद्ध वसंत ॥ ललना० ॥ जि० ॥ ७ ॥
 चाचर गुण रसिया लिये हो,
 निज साधक परिणाम ॥ ललना० ॥
 कर्म प्रकृति अराति गई हो,
 उलसीत अमित उदाम ॥ ललना० ॥ जि० ॥ ८ ॥
 थिर उपयोग साधन मुखे हो,
 पिचकारीकी धार ॥ ललना० ॥
 उपशम रस भरी छांटतां हो,
 गई तताई अपार ॥ ललना० ॥ जि० ॥ ९ ॥
 गुण पर्याय विचारतां हो,
 शक्ति व्यक्ति अनुभूति ॥ ललना० ॥
 द्रव्यास्तिक अवलबतां हो,
 ध्यान एकत्व प्रसूति ॥ ललना० ॥ जि० ॥ १० ॥
 राग प्रशस्त प्रभावनाहो,
 निमित्त करण उपभेद ॥ ललना० ॥

निरविकल्प सुसमाधिमें हो,
 भये हे त्रिगुण अभेद ॥ ललना० ॥ जि० ॥ ११ ॥
 ईर्म श्रीदत्त प्रभु गुणे हो,
 फाग रमे मतिमंत ॥ ललना० ॥
 पर परिणति रज धोयके हो,
 निरमल सिद्धि वसंत ॥ ललना० ॥ जि० ॥ १२ ॥
 कारणर्थे कारज सधे हो,
 एह अनादिकी चाल ॥ ललना० ॥
 देवचंद्र पद पार्श्वे हो,
 करत निज भाव संभाल ॥ ललना० ॥ जि० ॥ १३ ॥

॥ अथ नवम श्री दामोदर जिन स्तवन ॥

॥ मोरा साहेव हो श्री शीतलनाथ के ॥ ए देशी ॥

सुप्रतीते हो करि थिर उपपोग के,
 दामोदर जिन वंदीये ।
 अनादिनी हो जे परिणति दुष्ट के,
 टाली थिरता साधीए ।
 कषायनी हो कसमलता कापी के,
 वर समता आराधीए ॥ १ ॥
 जंबूने हो भरते जिनराज के,
 नवमा अतित चोवीशीये ॥
 जस नामे हो प्रगटे गुण राशि के,
 ध्याने शिव सुख विलसीये ॥

अपराधी हो जे तुजयी दूर के,
 भूरि भ्रमण दुःखना घरी ॥
 ते माटे हो तुज सेवा रंग के,
 होजो ए इच्छा घरी ॥ २ ॥
 मरुघरमें हो जिम सुरतरु लुनके,
 मागरमें प्रग्रहण समो ॥
 भत्र भमता हो भविजन आधार के,
 प्रष्टु दरशन सुख अनुपमो ॥
 आतमनी हो जे शक्ति अनतके,
 तेह स्वरूप पदे घर्या ॥
 पारिणामिक हो ज्ञानादिक धर्म के,
 स्व स्वकार्यपणे चर्या ॥ ३ ॥
 अविनाशी हो जे आत्मानंद के,
 पूर्ण अखंड स्वभावनो ॥
 निज गुणनो हो जे वर्त्तन धर्म के,
 सहज विलासी दामनो ॥
 तस भोगी हो तु जिनवर देव के,
 त्यागी सर्व विभावनो ॥
 श्रुतज्ञानी हो न कही शके सर्व के,
 महिमा तूज प्रभावनो ॥ ४ ॥
 निःकामी हो निकपाई नाथ के,
 साथ होजो नित तुम तणो ॥
 तुम आणा हो आराधना शुद्धके,
 साधुं हूं साधकपणो ॥

वीतरागथी हो जे राग विशुद्धके,
 तेहीज भवभय वारणो ॥
 जिनचंद्रनी हो जे भक्ति एकत्वके,
 देवचंद्र पद कारणो ॥ ५ ॥

॥ अथ दशम श्री सुतेज जिन स्तवन ॥

अति रुडीरे अति रुडी जिनराजनी थिरता
 अति रुडी ॥ ए आंकणी ॥
 सकल प्रदेश अनंती,
 गुण पर्याय शक्ति महंती लाल ॥ अ० :
 तसु रमणे अनुभववती,
 पर रमणे जे न रमंती लाल ॥ अति० ॥ १ ॥
 उत्पाद व्यये पलटंती,
 ध्रुव शक्ति त्रिपदी संती लाल ॥ अ० ॥
 उत्पादे उत्पतमंती,
 पूरव परिणति व्ययपंती लाल ॥ अ० ॥ २ ॥
 नव नव उपयोगे नवली,
 गुण छतिथी ते नित अचली लाल ॥ अ० ॥
 परद्रव्ये जे नवि गमणी,
 क्षेत्रांतरमांहि न रमणी लाल ॥ अ० ॥ ३ ॥
 अतिशय योगे नवि दीपे,
 परभाव भणी नवि छीपे लाल ॥ अ० ॥
 निज तस्व रसे जे लीनी,
 बीजे किणही नवि कीनी लाल ॥ अ० ॥ ४ ॥

मंग्रह नयथी जे अनादि,
 पण एवंभूते सादि लाल ॥ अ० ॥
 जेहने बहुमाने प्राणी,
 पामे निज गुण सहनाणी लाल ॥ अ० ॥ ५ ॥
 थिरताथी थीरता वाधे,
 साधक निज प्रभुता साधे ॥ लाल ॥ अ० ॥
 प्रभु गुणने रगे रमता,
 ते पामे अविचल समता । लाल ॥ अ० ॥ ६ ॥
 निज तेजे जेह सुतेजा,
 जे सेवे धरि बहु हेजा लाल ॥ अ० ॥
 शुद्धालवन जे प्रभु ध्यावे,
 ते देवचंद्र पद पावे लाल । अ० ॥ ७ ॥

॥ अथ एकादशम श्री स्वामीप्रभजिन स्तवन ॥

रहो रहो रहो रहो वालहा ॥ ए देशी ॥

नमि नमि नमि नमि वीनबुं,
 दुगुण स्वामी जिणद नाथरे ॥
 जेय सकल जाणग तुमे,
 प्रभुजी ज्ञान दिणद नाथरे ॥ नमि० ॥ १ ॥
 वर्त्तमान ए जीवनी,
 एहवी परिणति केम नाथरे ॥
 जाणु हेय प्रिभावने,
 पिण नवि छूटे प्रेम नाथरे ॥ नमि० ॥ २ ॥

पर परिणति रम रंगता,
 पर ग्राहकता भाव नाथरे ॥
 पर करता परभोगता,
 श्यो थयो एह स्वभाव नाथरे ॥ नमि० ॥ ३ ॥

विषय कषाय अशुद्धता,
 न घटे ए निरधार नाथरे ॥
 तो पण वंछुं तेहने,
 किम, तरिये संसार नाथरे ॥ नमि० ॥ ४ ॥

मिथ्या अविरति प्रमुखने,
 नियमा जाणुं दोष नाथरे ॥
 नंदू गरहूं वली वली,
 पण ते पामे संतोष नाथरे ॥ नमि० ॥ ५ ॥

अंतरंग पर रमणता,
 टलश्ये किश्ये उपाय नाथरे ॥
 आणा आराधन विना,
 किम गुण सिद्धि थाय नाथरे ॥ नमि० ॥ ६ ॥

हवे जिन वचन प्रसंगथी,
 जाणी साधक नीति नाथरे ॥
 शुद्ध साध्य रुचिपण्ये,
 करिए साधन रीति नाथ रे ॥ न० ॥ ७ ॥

भावन रमण प्रभु गुण्ये,
 योग गुणी आधीन नाथ रे ॥
 राग ते जिन गुण रंगमें,
 प्रभु दीठां रति पीन नाथरे ॥ नमि० ॥ ८ ॥

हेतु पलटारी सने,
जोड्या गुणि गुण भक्ति नाथरे ॥

तेह प्रशस्तपणे रम्या,
साधे आतम शक्ति नाथरे ॥ नमि० ॥ ९

घन तनु मन वचना सने,
जोड्या स्वामी पाय नाथरे ॥

बाधक कारण वारतां,
साधन कारण थाय नाथरे ॥ न० ॥ १० ॥

आतमता पलटावतां,
प्रगटे संवर रूप नाथरे ॥

स्वस्वरूप रसी करे,
पुरणानंद अनूप नाथरे ॥ नमि० ॥ ११ ॥

विषय कपाय जहर टले,
अमृत थाये एम नाथरे ॥

जे परमिद्ध रुचि हुवे,
तो प्रभु सेवा धरी प्रेम नाथरे ॥ नमि० ॥ १२ ॥

कारण रंगी कार्यने,
साधे अवसर पामि नाथरे ॥

देवचंद्र जिनराजनी,
सेवा शिष्यसुख धाम नाथरे ॥ नमि० ॥ १३ ॥

॥ अथ द्वादशम मुनिसुव्रत जिन स्तवन ॥

॥ नमणी खमणी ने मन गमणी ॥ ए देशी ॥

दिठो दरिशण श्री प्रभुजीनो,
साचे रागे मनसुं भीनो ॥
जसु रागे निरागी थाये,
तेहनी भक्ति कोने न सुहाये ॥ १ ॥

पुद्गल आशा रांगी अनेरा,
तसु पासे कुण खाये फेरा ॥
जसु भगते निर्भय पद लहिए,
तेहनी सेवामां थिर रहिये ॥ २ ॥

रागी सेवकथी जे राचे,
बाह्य भक्ति देखीने माचे ॥
जसु गुण दाझे तृष्णा आंचे,
तेहनो सुजस चतुर किम वाचे ॥ ३ ॥

पूरण ब्रह्मने पूर्णानंदी,
दर्शन ज्ञान चरण रस कंदी ॥
सकल विभाव प्रसंग अफंदी,
तेह देव समरस मकरंदी ॥ ४ ॥

तेहनी भक्ति भवभय भाजे,
निगुण पिण गुण शक्ति गाजे
दास भाव प्रभुताने आपे,
अंतरंग कलिमल सवि कापे ॥ ५ ॥

अध्यातम सुख कारण पूरो,
स्वस्वभाव अनुभूति सनुरो ।

तसु गुण वलगी चेतना कीजे,
परम महोदय शुद्ध लहीजे ॥ ६ ॥

मुनिसुव्रत प्रभु प्रभुता लीना,
आतम संपत्ति भासन पीना ॥
आणा रगे चित्त घरीजे,
देवचंद्र पद शीघ्र परीजे ॥ ७ ॥

॥ अथ त्रयोदशम श्री सुमतिजिन स्तवन ॥

॥ कन्हैयालाल ए देशी ॥

प्रभुस्यु हस्युं विनवुरे लाल,
मुज विभाव दुःख रीतरे साहबिया लाल ।
तिन कालना ज्ञेयनीरे लाल,
जाणो छो सहु नीतिरे साहबिया लाल ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
ज्ञेय ज्ञानस्युं नवि मिलेरे लाल,
ज्ञान न जाये तथ्यरे ॥ सा० ॥
प्राप्त अप्राप्तमेयनेरे लाल,
जाणो जे जिम जथ्यरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
छति परजाय जे ज्ञाननारे लाल,
ते तो नवि पलटायरे ॥ सा० ॥
ज्ञेयनी नवनवि वर्त्तनारे ला न,
मवि जाणो असहायरे ॥ मा० ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
धर्मादिक सहु द्रव्यनारे लाल,
प्राप्त भयी सहकाररे ॥ साहि० ॥

रसनादिक गुण वर्ततारे लाल,
 निज क्षेत्रे ते धाररे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥
 जाणंग अभिलापी नहिरे लाल,
 नवि प्रतिविंवे ज्ञेयरे ॥ सा० ॥
 कारक शक्ते जाणवुंरे लाल,
 भाव अनंत अमेयरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ ५ ॥
 तेह ज्ञान सत्ता थकरे लाल,
 न जणाये निज तत्त्वरे ॥ सा० ॥
 रुचि पण तेहवि नवि वधेरे लाल,
 ए अम मोह महत्वरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ ६ ॥
 मुज ज्ञायकता पर रसीरे लाल,
 पर तृष्णाए तप्तरे ॥ सा० ॥
 ते समता रस अनुभवेरे लाल,
 सुमति सेवन व्याप्तरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ ७ ॥
 बाधकता पलटाववारे लाल,
 नाथ भक्ति आधाररे ॥ सा० ॥
 प्रभु गुण रंगी चेतनारे लाल,
 एहीज जीवन साररे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ८ ॥
 अमृतानुष्ठाने रक्षारे लाल,
 अमृत क्रियाने उपायरे ॥ सा० ॥
 देवचंद्र रंगे रमेरे लाल,
 ते सुमति देव पसायरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ९ ॥

अथ चउदशम श्री शिवगति जिन स्तवनम् ॥

॥ यारा मेहेला उपर मेह झबुके वीझली हो लाल ॥ ए देशी ॥

शिवगति जिनवर देव सेव आ

दोहिली हो लाल ॥ मे० ॥

पर परिणति परित्याग करे तसु

मोहिली हो लाल ॥ करे० ॥

आश्रव सर्व निवारि जेह

संवर धरे हो लाल ॥ जेह० ॥

जे जिन आणा लीन पीन

मेवन करे हो लाल ॥ पीन० ॥ १ ॥

धीतगग गुण राग भाक्ति रुचि

नैगमे हो लाल ॥ भ० ॥

यथाप्रवृत्ति भव्य जीव

नय सग्रह रमे हो लाल० ॥ नय० ॥

अमृत क्रिया विवि युक्त वचन

आचारथी हो लाल ॥ वचन० ॥

मोक्षार्थी जिन भक्ति करे

व्यवहारथी हो लाल० करे० ॥ २ ॥

गुण प्राग्भावी कार्यतये

कारणपये हो लाल ॥ तये० ॥

रत्नत्रयी परिणाम ते ऋजुसूत्रे

भये हो लाल ॥ ते ऋजु० ॥

जे गुण प्रगट थयो निज निज

कारज करे हो लाल के ॥ निज० ॥

साधक भावे युक्त शब्दनये

ते धरे हो लाल ॥ शब्द० ॥ ३ ॥

पोते गुण पर्याय प्रगटपणे

कार्यता हो लाल ॥ प्र० ॥

उणे थाए जाव ताव

संभिरूढता हो लाल ॥ ताव० ॥

संपूरण निज भाव स्वकारय

कीजते हो लाल ॥ स्व० ॥

शुद्धातम निजरूप तणे

रस लीजते हो लाल ॥ त० ॥ ४ ॥

उत्सर्गे एवंभूत ते

फलने नीपने हो लाल ॥ ते० ॥

निसंगी परमातम रंगथी

ते बने हो लाल के ॥ रं० ॥

सहज अनंत अत्यंत महंत

सुखे भरचा हो लाल ॥ म० ॥

अविनाशी अविकार अपार गुणे

वरचा हो लाल ॥ अ० ॥ ५ ॥

जे प्रवृत्ति भव मूल छेद

उपाय जे हो लाल ॥ छे० ॥

प्रभु गुण रागे रक्त थाय

शिवदाय ते हो लाल ॥ था० ॥

अंश थकी सरवंश विशुद्धपणुं

ठवे हो लाल ॥ वि० ॥

शुकल बीज शशि रेह तेह
 पूरण हुवे हो लाल ॥ तेह० ॥ ६ ॥

तिम प्रभुशी शुचि राग करे
 वीतरागता हो लाल ॥ करे० ॥

गुण एकत्रे थाय स्वगुण
 प्राग्भावता हो लाल ॥ स्वगुण० ॥

देवचंद्र जिनचंद्र सेवा माहि
 रहो हो लाल ॥ सेवा० ॥

अध्याबाध अगाध आतम सुख
 मग्रहो हो लाल ॥ आ० ॥ ७ ॥

॥ अथ पंचदशम श्री आस्तागजिन स्तवन.

॥ मन मोह्यु अमारु प्रभु गुणे ॥ ए देशी ॥

करो साचो रंग जिनेश्वरु,
 संसार विरग सहू अन्यरे ॥

सुरपति नरपति संपदा,
 ते तो दुरगधी कदन्नरे ॥ करो० ॥ १ ॥

जिन आस्ताग गुण रस रमी,
 चल विषय विकार विरूपरे ॥

विण समकित मते अभिलखे,
 जिणे चारुयो शुद्ध स्वरूपरे ॥ क० ॥ २ ॥

निज गुण चितन जल रम्या,
 तसु क्रोध अनलनो ताप रे ॥

नवि व्यापे कापे भवस्थिति,

जिम शीतने अर्क प्रतापरे ॥ क० ॥ ३ ॥

जिन गुण रंगी चेतना,

नवि बांधे अभिनव कर्मरे ॥

गुण रमणे निज गुण उल्लसे,

ते आस्वादे निज धर्मरे ॥ क० ॥ ४ ॥

पर त्यागी गुण एकतत्त्वता,

रमता ज्ञानादिक भावरे ॥

स्वस्वरूप ध्याता थई,

पामे शुचि क्षायिक भावरे ॥ करो० ॥ ५ ॥

गुण करणे नव गुण प्रगटता,

सत्तागत रस थीती छेद रे ॥

संक्रमण उदय प्रदेशथी,

करे निर्भरा टाले खेद रे ॥ करो० ॥ ६ ॥

सहज स्वरूप प्रकाशथी,

थाए पूर्णानंद विलासरे ॥

देवचंद्र जिनराजनी,

करज्यो सेवा सुख वासरे ॥ करो० ॥ ७ ॥

॥ अथ षोडशम श्री नमिश्चर स्वामी जिन स्तवन ॥

॥ हो पीउ पंखीडा ॥ ए देशी ॥

जगत दिवाकर श्री नमिश्चर स्वामजो,

तुज मुख दीठे नाठी भूल अनादिनीरे लो ॥

जाग्यो सम्यग् ज्ञान सुधारम धामजो,

छांडी दुर्जय मिथ्यानींद प्रमादनीरे लो ॥ज०॥१

सहजे प्रगट्यो निज पर भाव विवेक जो,

अंतर आतिम ठहर्यो साधन साधवेरे लो ॥

साध्यालवी थई क्षायकता छेक जो,

निजपरिणति थिर निज धर्म रसे ठवेरे लो ॥ज०॥२॥

त्यागीने सवि पर परिणति रस रीझ जो,

जागी छे निजआत्म अनुभव इष्टतारे लो ॥

महजे छूटी आश्रव भावनी चालजो,

जालम ए प्रगटी संवर शिष्टतारे लो ॥ज०॥३॥

बंधना हेतु जे छे पापस्थानजो,

ते तुज भगते पाय्या पुष्ट प्रगस्ततारे लो ॥

ध्येय गुणो बलग्यो परण उपयोग जो,

तेहथी पामे ध्याता ध्येय समस्ततारे लो ॥ज०॥४॥

जे अति दुस्तर जलधि समो संसारजो,

ते गोपद सम कीधो प्रभु अवलंननेरे लो ॥

जाण्यो पूर्णानंद ते आतम पास जो,

अवलव्यो निर्विकल्प परमातम तत्त्वनेरे लो ॥ज०॥५॥

स्याद्वादी निज प्रभुताने एकत्वजो,

चायिक भावे थाए निज रत्नत्रयीरे लो ॥

प्रत्याहार करी धारे धारण शुद्ध जो,

तत्त्वानंदी पूर्ण समाधि लय मईरे लो ॥ज०॥६॥

अव्याबाध स्वगुणनी पूरण रीत जो,

कर्ता भोक्ता भावे रमणपणे घरेरे लो ॥

सहज अकृत्रिम निर्मल ज्ञानानंदजो,
देवचंद्र एकत्वे सेवनथी वरेरे लो ॥ ज० ॥ ७ ॥

॥ अथ सप्तदशम श्री अनीलजिन स्तवन ॥

॥ देखो गति दैवनी रे ॥ ए देशी ॥

स्वार्थ विणु उपगारता रे,
अद्भुत अतिशय रिद्धि ॥
आत्म स्वरूप प्रकाशता रे,
पूरण सहज समृद्धि ॥
अनील जिन सेवीणरे,
नाथ तुमारी जोडि न को त्रिहुं लोकमेंरे ॥
प्रभुजी परम आधार अछो भवि थोकनेरे ॥१॥

परकारज करता नहिरे,
सेव्या पार न हेत ॥
जे सेवे तनमय थईरे,
ते लहे शिव संकेत ॥ अ० ॥ २ ॥

करता निज गुण वृत्तितारे,
गुण परिणति उपभोग ॥
निप्रयास गुण वर्त्तितारे,
नित्य सकल उपयोग ॥ अनील० ॥ ३ ॥
सेव भक्ति भोगी नहीं रे,
न करे परनो सहाय ॥
तुज गुण रंगी भक्तनारे,
सहजे कारज थाय ॥ अनील० ॥ ४ ॥

किरिया कारण कार्यतारे,
 एरु समय स्वाधीन ॥
 वर्त्ते प्रति गुण सर्जदारे,
 नसु अनुभव लयलीन ॥ अनील० ॥ ५ ॥
 ज्ञायक लोकालोकनारे,
 अनील प्रभु जिनगय ॥
 नित्यानद मयी सदारे,
 देवचंद्र सुखदाय ॥ अनील० ॥ ६ ॥

॥ अथ अष्टादशम श्री यशोधर जिन स्तवन ॥

॥ राग मारू ॥

वदन पर वारिहो जशोधर वदन पर वारिहो ॥
 मोह रहित मोहन जयाको उपशम रस क्यारिहो ॥
 अहो उपशम रस क्यारिहो ॥ व० ॥ १ ॥
 मोही जीव लोहको कंचन,
 करवे पारम भारि हो ॥
 समकित सुरतरु उपवन गिंचन,
 वर पुष्कर जलधारि हो ॥ अहो० ॥ व० ॥ २ ॥
 सर्व प्रदेश प्रगट सम गुणधी,
 प्रवृत्ति अनंत अपहारी हो ॥
 परम गुणी सेवनये मेवक,
 अप्रशस्तता चारी हो ॥ अहो० ॥ व० ॥ ३ ॥
 पर परिणति रुचि रमण ग्रहणता,
 दोष अनादि निवारी हो ॥

देवचंद्र प्रभु सेवन ध्याने,

आतम शक्ति समारी हो ॥ अहो० ॥ व० ॥ ४ ॥

॥ अथ एकोनविंशतितम कृतार्थ जिन स्तवन ॥

॥ अधिका ताहरो हुं अपराधि ॥ ए देशी ॥

सेवा सारज्यो जिननी मन साचे,

पण मत मागो भाई ॥

महेनतनो फल मागी लेतां,

दास भाव सवि जाई ॥ से० ॥ १ ॥

भक्ति नहि ते तो भाडायत,

जे सेवा फल जाचे ॥

दास तिके जे घन भरि निरखी,

कैकीनी परे माचे ॥ सेवा० ॥ २ ॥

सारी विधि सेवा सारंतां,

आण न कांइ भाजे ॥

हूकम हाजर खिजमति करतां,

सहजे नाथ निवाजे ॥ सेवा० ॥ ३ ॥

साहिब जाणो छो सहु वाते,

शुं कहीए तुम आगे ॥

साहिब सनमुख अमे मागणनी,

वात कारमी लागे ॥ से० ॥ ४ ॥

स्वामि कृतार्थ तो पण तुमथी,

आश सहुको राखे ॥

नाथ विना सेवकनी चिंता,
कोण करे विणु दाखे ॥ सेवा० ॥ ५ ॥

तुज सेवा फल माग्यो देतां,
देवपणो थाये काचो ॥

विण माग्यां वंछित फल आपे,
तिणो देवचंद्र पद साचो ॥ से० ॥ ६ ॥

॥ अथ विंशतितम श्री धर्मीश्वर जिन स्तवन ॥

अस्वीया हरखन लागी हमारी अस्वीया ॥ ए देशी ॥

॥ राग प्रभाती ॥

हु तो प्रभु वारि छु तुम मुखनी,
हुं तो जिन बलिहारी तुम मुखनी ॥

समता अमृतमय सुप्रसननी,
त्रेय नही राग रूखनी ॥ हु० ॥ १ ॥

अमर अघर शिप धनु हर कमल दल,
कीर हीर पुनम शशीनी ॥

शोभा तुछ प्रभु देखत याकी,
कायर हाथे जिम अस्तिनी ॥ हुं० ॥ २ ॥

मन मोहन तुम सनमुख निरखत,
आंख न तृपति अम्हची ॥

मोह तिमिर रवि हरख चंद्र छनी,
मुरत ए उपशमची ॥ हुं० ॥ ३ ॥

मननी चिंता मटी प्रभु घ्यावत,
मुख देखत तुम जिनजी ॥

इंद्रि वृषा गई जिनेश्वर सेवतां,
गुण गातां वचननी ॥ हुं० ॥ ४ ॥

मीन चकोर मोर मतंगज,
जल शशी घन नीचनथी ॥
तिम मो प्रति साहिव सुरतथी,
और न चाहूं मनथी ॥ हुं० ॥ ५ ॥

ज्ञानानंदन जाया नंदन,
आस दास नीयतनी ॥
देवचंद्र सेवनमें अहनिश,
रमज्यो परिणति चित्तनी ॥ हुं० ॥ ६ ॥

॥ अथ एकविंशतितम श्री शुद्धमति जिन स्तवन ॥

श्री जिन प्रतिमा हो जिन सरखी कही ॥ ए देशी ॥

श्री शुद्धमति हो जिनवर पूरवो,
एह मनोरथ माल ॥
सेवक जाणी हो महेरबानी करी,
भव संकटथी टाल ॥ श्री० ॥ १ ॥

पतित उद्धारण हो तारण वच्छलुं,
करे अपणायत एह ॥
नित्य निरागी हो निस्पृह ज्ञाननी,
शुद्ध अवस्था देह ॥ श्री० ॥ २ ॥

परमानंदी हो तुं परमात्मा,
अविनाशी तुज रीत ॥

ए गुण जाणी हो तुम वाणी थकी,
 ठहराणी मुज प्रीत ॥ श्री० ॥ २ ॥
 शुद्ध स्वरूपी हो ज्ञानानदनो,
 अव्याबाध स्वरूप ॥
 भवजल निधि हो तारक जिनेश्वरु,
 परम महोदय भूप ॥ श्री० ॥ ४ ॥
 निरमम निसर्गी हो निरभय आविकारता,
 निरमल सहज समृद्धि ॥
 अष्ट करम हो वन दाहथी,
 प्रगटी अन्वय रिद्धि ॥ श्री० ॥ ५ ॥
 आज अनादिनी हो अनत अक्षता,
 अक्षर अनक्षर रूप ॥
 अचल अकल हो अमल अगमनुं,
 चिदानद चिद्रूप ॥ श्री० ॥ ६ ॥
 अनत ज्ञानी हो अनंत दर्शनी,
 अनाकारी अविरुद्ध ॥
 लोकालोक हो ज्ञायक मुहकरु,
 अनाहारी स्वय बुद्ध ॥ श्री० ॥ ७ ॥
 जे निज पासे हो ते श्रु मागीए,
 देवचंद्र जिनराय ॥
 तो पण मुजने हो शिवपुर साधतां,
 होजो सदा सुसहाय ॥ श्री० ॥ ८ ॥



आवती चोवीशीना प्रथम जिनेश्वर पद्मनाभ
स्वामीनुं स्तवन. ॥



॥ पंथडो नीहाळुं रे ॥ ए देशी ॥

वाटडी वीलोकुरे भावी जिन तणी रे, पद्मनाभ जसु नाम;

दूसम दोषीरे भरत कृपाकरुरे, उपशम अमृत धाम ॥

वाटडी० ॥ १ ॥

वीर निमित्ते श्रेणीकने भवेरे, तुमे वांध्युं जिन नाम;

कन्याणक अतिशय उपगारतारे, वीर समान सभाव ॥

वाटडी० ॥ २ ॥

सुदि असाढे छठीने दिनेरे, उपजशो जगनाथ,

चैत्र धवल तेरस प्रभु जनमशोरे, थाशे मेरु सनाथ ॥

वाटडी० ॥ ३ ॥

मागसीर वदी दसमी दीक्षा ग्रहीरे, वरशो चरण उदार;

झुदी वैशाख दसमे केवलीरे चौविह संघ आधार ॥

वाटडी० ॥ ४ ॥

समवसरण सीहासन बेसिनेरे, प्रभु करशो व्याख्यान;

आतम धर्म सुणी ते अवसरेरे, धरतो प्रभु गुण ध्यान ॥

वाटडी० ॥ ५ ॥

संमुख त्रिपदी पामी गणधरारे रचशे द्वादश अंग;

ते वेला हुं प्रभु चरणे रहुंरे, जिनधरमे दृढरंग ॥

वाटडी० ॥ ६ ॥

दीवाळी दिन शिवपद पामशोरे सुद्धातम मकरंद;

देवचंद्र साहेवनी सेवनारे, करतां परमानंद ॥

वाटडी० ॥ ७ ॥



